परम पूज्य श्री महेन्द्र बाबा

'गुरुचरणाश्रित'

की

पुण्य स्मृति मे

सप्रेम

सादर

समपण

श्री हैड़ियाखण्डी

ग्रन्थ पुष्पाञ्जलि

१ नाम साधन

२ पुण्य स्मृति

३ आवश्यक कम

४ आशीर्वाद और आदेश

५ श्री हैड़ियाखण्डी नाम महिमा

६ श्री दिव्य कथामृत

७ श्री हैड़ियाखण्डी सप्तशती

८ श्री सदगुरुवदना

९ आशीर्वाद

१० अनुपम कृपा

ॐ

॥ श्री सद्गुरवे नम ॥

भूमिका

यह अतीव महत्व एव हर्ष का विषय है कि सवश्री १००८ श्रीमद्योगाचार्य श्रीमन्महामुनीन्द्र सद्गुरुदेव की आज्ञानुसार आठ पुष्पों से गूथी गई 'भगवान् श्री हैडियाखण्डी ग्रन्थपुष्पाञ्जलि साधक वन्द की सेवा मे प्रस्तुत की जा रही है। इस पुष्पाञ्जलि के पुष्प है

(१) नाम साधन,
(२) पुण्य स्मृति,
(३) आवश्यक कम,
(४) आर्शीवाद और आदेश
(५) श्री "हैडियाखण्डी" नाम महिमा
(६) श्री दिव्य कथामृत (मूल)
(७) श्री हैडियाखण्डी सप्तशती (मूल)
(८) श्री सद्गुरुवन्दना
(९) आशीर्वाद
(१०) अनुपम कृपा

सभी पुष्प परम पूज्य स्वनामधन्य श्री गुरुदेव समर्थ ब्रह्मचारी बाबा श्री महेन्द्र महराज जी की परमोत्कृष्ठ भावो से ओत प्रोत अमूल्य कृतियां हैं जिनकी रचना उन्होने श्री सद्गुरुदेव के प्राकट्य से पूव प्राणिमात्र के कल्याणार्थ और उनके माग दर्शन के लिए की थी। इन पुष्पों में दिये गये सूक्त, स्तव, स्त्रोत और भजनो का सकलन भी अतिशय मनोहारी है तथा उनमे से अनेक में साधकों की भावनाऐं और उनके भक्त हृदय का सुन्दर एव अद्वितीय चित्रण बन पडा है।

यद्यपि श्री गुरुदेव ब्रह्मचारी बाबा जो श्री 'चरणाश्रित' देव के नाम से भी हमारे मानस मन्दिर में बसे हुए हैं, अब अपने पाँच भौतिक शरीर के साथ, जिसका उन्होंने २३ जून, १६६६ को सवरण कर लिया, विद्यमान नही है, तथापि उनकी अनुपमेय गुरूनिष्ठा, प्रकाड विद्वता उनके ओजस्वी यक्तित्व तथा उनकी असीमित एव अपार कृपा क य पुष्प विशिष्टरूपेण परिचायक हैं।

श्री प्रभु भगवान् हैडियाखण्डी के साधना स्थल भारतवष के उत्तराखड एव कूर्माचल प्रदेश तथा तिब्बत एव नपाल रहे है। आपके अनेक आश्रमो मे हलद्वानी मे "कटघरिया" शीतलाखेत में "सिद्धाश्रम", हैडाखान मे "शिवालय", तिब्बत में "लासा आश्रम", तेजम मे 'श्री ब्रह्मचारी आश्रम', हिमालय के परम निजन वन मे "नीलम क्षेत्राय आश्रम" तथा नपाल में बागमती नदी के तट पर एव राजधानी के समीप श्री तपस्वी बाबा आश्रम" उल्लेखनीय हैं। श्री सद्गुरुदेव की शक्तियाँ आध्यात्मिक जगत मे अनेक प्रकार से गतिशील हैं। भावुक हृदयो की मान्यता है कि श्री सिद्धसिद्धेश्वर Spiritual Adepts की Trans Himalayan Brotherhood के स्तम्भ है तथा theosophy (ब्रह्म विद्या मे वर्णित महाचौहान पद भी आप ही ने सुशोभित किया है। आगामी दशको मे धम समन्वय के हेतु श्री बाबा पुन प्रकट हुए है। आपके सम्बन्ध में श्री गुरुदेव महेन्द्र महराज ने "श्री दिव्य कथामृत' म जो शब्द चित्र उपस्थित किया है तथा भाव विभोर होकर जो प्राथना की है वह कितनी मार्मिक एव माननीय है। उसी की कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं —

दया दृष्टि करि देहु चरण रति।
आन उपाय न, पाऊँ विमल मति॥
चरण सनेह शीतल मधु शुचि है।
जीव मात्र की थिर अभिरुचि है॥

स्नेह सलिल सिंचित हिय थल हो।
बोध वृक्ष की छाँह सघन हो॥
सुस्थिर छाह सघन हो अविचल।
त्रिविध ताप को करै सुशीतल॥
सद्गुण सुमन सुगन्ध बढ़ावै।
मैल मानसिक तुरत हटावै॥
शाति सरित की ध्वनि हो कलकल।
प्रीति प्रवाह बहै नित छलछल॥
सघन विपिन वन मग है डोलत।
मधुर स्वरो म पक्षी बोलत॥
छत्र चँवर युत सेवहिं लोका।
पाइ दरस सब होहि विशोका॥
ज्ञान वृद्ध तप वृद्ध मुनीन्द्रवर।
है आसीन अजिन आसन पर॥
यही ध्यान रम रहै मत्त मन।
सदानन्द शिवधाम रूप हर॥
मगल भुवन अमङ्गल हारी रे।
प्रभु तव चरण कमल बलिहारी रे॥
तुम परम पुरुष अविकारी रे।
श्री सद्गुरु जाउँ बलिहारी रे॥

अन्यत्र श्री गुरुदेव ब्रह्मचारी बाबा कहते हैं 'लोक प्रसिद्ध एकान्त वासी मुनि, प्रकृति निर्मित गिरि कन्दरा को ही अपना आवास मानने वाले तपस्वी, पृथ्वीमाता के दिये हुए अयाचित कन्दमूलादि से ही जीवन निर्वाह करने वाले महा ओजस्वी सिद्ध ब्रह्मचारी, जिनकी चरणधूलि धारण करने मात्र से ही त्रिविध एषणा, लौकिक—पारलौकिक समस्त वासनायें नष्ट हो जाती हैं, ऐसे मेरे पतितपावन, मनस्वी, मेधावी, देशकाल से सर्वथा परे, पचकोष एव सप्तचक्र के विज्ञान तथा उत्थापन

जिनकी कृपा से अनायास ही हो जाता है, उसी प्रसिद्ध श्री सद्गुरुमाला की एक उज्जवल मणिका है श्री हैडाखान वाले बाबा।" श्री सद्-गुरुदेव का सक्षिप्त परिचय भी श्री महेन्द्र बाबा ने "पुण्यस्मृति" मे देकर हम सबको कृपान्वित किया है। इसके साथ ही "आशीर्वाद और आदेश" के परिशिष्ट मे भी श्री प्रभु के सम्बन्ध में एक परिचयात्मक लेख दिया गया है।

श्री सद्गुरुदेव का उपदेश मुख्यत 'नाम जप' करने पर रहा है। सत्य, सरलता प्रेम के साथ नाम जप का ही श्री प्रभु अब भी आदेश देते है। "पुण्य स्मृति" मे श्री 'चरणाश्रित' गुरुदेव ने भी इस वरद आशीर्वाद का विवेचन किया है। उनकी 'वाणी' स्पष्टत कह रही है —

"मनसा फलेगी"

नाम जपो मानस शुद्ध होगा।
नाम जपो मानस सशक्त होगा॥

नाम जपो हमारे हृदयासन पर श्री भगवान् का चिरस्थायी प्राकट्य होगा। श्री "दिव्य कथामृत" म भी श्री गुरुदेव विशेष रूप से आदेश दे रहे है —

(क) सबहि स्वधम श्रेय कर दाता।
द्वेष घृणा नहि धम कहाता॥
प्रेम सरलता सतयुत आता।
यहै धम मानब सुख दाता॥
नाम भजो हिय शोधो भाई।
प्रभु अभ्यन्तर बैठ्यो आई॥
अन्तर हृदय शुद्ध शिव वासा।
पहिचानहु तजि अन्न दुराशा॥

(ख) तैसेहिं ईश भजौ नरनारी।
मानव बनो न बन व्यापारी ।।

क्षुद्र सहायक जे जग माही।
तिन कर ध्यान रहत मन माही ।।

सकल जगत के आश्रय प्यारे।
कस न भजो नर साधु सकारे ।।

भोर निशा जिमि प्रतिदिन होवै।
दुख सुख युत नित आयु खोवै ।।

पर अभाग्य की यह बलिहारी।
नाम भजत नहिं नाह निहारी ।।

(ग) नाम रटौ रटु होहु अशका।
कृषक बीज बोवे सोव निसङ्का ।।

क्षेत्र बीज सम्बध अनोखा।
आपहिं आप बढत अति चोखा ।।

गुरु प्रदत्त श्री नाम जो साधा।
सो साधक सुख लहै अगाधा ।।

बार बार विनवौं सब काहूँ।
भजौ नाम हिय राखि सुनाहूँ ।।

इसी प्रसग मे नाम जप' की महत्ता के सम्बन्ध में ज्ञान की अमृत निर्झरिणी श्रीमद्भगवद्गीता मे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री कृष्ण द्वारा जो उपदेश दिया गया है उससे सम्बद्ध निम्नलिखित श्लोकभ अनुशीलन करने योग्य है —

(१) महर्षीणा भगुरह गिरामस्म्यकमक्षरम् ।
यज्ञाना जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणा हिमालय ॥अ० १० श्लाक२५॥

हे अर्जुन ! मैं महर्षियों म भृगु और वचनो में एक अक्षर अर्थात् ओङ्कार हूँ तथा सब प्रकार के यज्ञो मे जप यज्ञ और स्थिर रहनेवालो मे हिमालय पर्वत हूँ।

(२) सवभूतस्थित यो मा भजत्येकत्वमास्थित ।
सवथा वत मानाऽपि स यागी मयि वत ते ॥अ० ६, श्लोक३१॥

इस प्रकार जो पुरुष एकीभाव मे स्थित हुआ सम्पूण भूतों मे आत्म रूप से स्थित मुझ सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मदेव को भजता है, वह यागी सब प्रकार से बतता हुआ भी मेरे मे ही बतता है क्योंकि उसके अनुभव मे मेरे सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं ।

(३) यागिनामपि सर्वेषा मग्दतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मा स मे युक्ततमा मत ॥अ० ६, श्लाक४७॥

सम्पूण योगियो मे भी जो श्रद्धावान् योगी मुझ मे लगे हुए अन्तरात्मा से मुझको निरन्तर भजता है,वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्यहै।

(४) येषा त्वन्तगत पाप जनाना पुण्यकमणाम ।
ते द्वन्द्वमोहनिमुक्ता भजन्ते मा दृढव्रता ॥अ०, श्लोक २८॥

परन्तु निष्कामभाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करनेवाले जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है, वे रागद्वेषादि द्वन्द्वरूप मोह से मुक्त हुए और दृढनिश्चयवाले पुरुष मेरे को सब प्रकार से भजते हैं ।

(५) महात्मानस्तु मां पाथ दैवी प्रकृतिमाश्रिता
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम ॥आ०६, श्लोक १३॥

हे कुन्ती पुत्र ! दैवी प्रकृति के आश्रित हुए जो महात्माजन हैं, वे तो मेरे को सब भूतो का सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जान कर अनन्य मन से युक्त हुए निरन्तर भजते हैं ।

(६) समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्
॥अ०९ श्लोक २९॥

यद्यपि मैं सब भूतो मे समभाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है, परन्तु जो भक्त मेरे को प्रेम से भजते हैं, वे मेरे मे और मैं भी उनमे प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।

(७) अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हि स अ०९, श्लोक ३०॥

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त हुआ मेरे को निरन्तर भजता है, वह साधु ही मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है, अर्थात् उसने भली प्रकार निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।

(८) तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते
॥अ० १०, श्लोक १०॥

उन निरन्तर मेरे ध्यान मे लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तों को, मैं वह तत्वज्ञानरूप योग देता हूँ कि जिससे वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

(९) तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तम ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥अ०१०,श्लोक११॥

और हे अर्जुन ! उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिये ही, मैं स्वयं उनके अन्त करण मे एकीभाव से स्थित हुआ, अज्ञान से उत्पन्न हुए अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपक द्वारा नष्ट करता हूँ।

अन्तत , श्री सद्गुरुदेव ही जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से नि सृतनिम्न धर्ममयी अमृतोपम वाणी को प्रतिध्वनित करते हुए प्रतीत होते हैं —

(१०) तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामैष्यस्यशयम् ॥अ ८, श्लोक ७॥

इसलिये हे अर्जुन ! तू सब समय मे निरन्तर मेरा स्मरण कर— नि सन्देह, नाम जप द्वारा—और जीवन की विषम परिस्थितियो से युद्ध भी कर। इसमे तनिक भी स न्देह नही कि मेरे म अर्पित मन और बुद्धि से युक्त हुआ तू मेरे को ही प्राप्त होगा।

(११) पुरूष स पर पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्त स्थानि भूतानि येन सर्वमिदम् ततम् ॥
अ० ८ श्लोक २२॥

हे गुडाकेश ! जिस परमात्मा के अन्तगत सर्वभूत है और जिस सच्चिदान न्दघन परमात्मा से यह सब जगत् परिपूर्ण है, यह सनातन अ यक्त परमपुरुष अन य भक्ति से ही प्राप्त होने योग्य है।

अत , श्री सद्‌गुरुदेव की अनुपम कृपा, उनका आशीर्वाद तथा उनके द्वारा निर्दिष्ट माग ही हमारे ऐहिक एव पारलौकिक कल्याण का एक मात्र आधार बने तथा यही विनीत याचना है कि श्री प्रभु के चरणार विन्दो मे हमारी निष्ठा एव भक्ति उत्तरोत्तर दृढ़ हो और इस ग्रन्थ पुष्पाञ्जलि का नियमित स्वाध्याय एव मनन इस उद्देश्य की पूर्ति में सब का अभिन्न सहायक हो।

॥ ॐ नम शिवाय—ॐ नम शिवाय—ॐ नम शिवाय ॥

॥ ओउम् शान्ति ३ ॥

श्रीसद्‌गुरुदेव का विनीत एव कृपान्वित,

वेदप्रकाश महेश्वरी

॥ श्री सद्गुरवे नम ॥

'भगवान् श्री हैडियाखण्डी ग्रन्थ पुष्पाञ्जलि'

की

अनुक्रमणिका

भूमिका ७ १२

प्रथम पुष्प—"नाम साधन"

क्रमाङ्क	विवरण	पृष्ठ
१	प्रणवेदम् सवम्	३
२	भगवान् सदाशिव का जापक स्वरूप	१५
३	जप की कुछ और बात	२२
४	भाव और क्रिया	२७
५	कनग आरती	३०
६	इनका लक्ष्य क्या ?	३१
७	अतिम निवेदन	३२
८	नाम सम्बन्धी प्रश्नोत्तर	४०
९	श्री सद्गुरु सन्देश	५०
१०	भजन—'श्री सद्गुरु शरण'	५३
११	'नाम जप सुषमा	५३

द्वितीय पुष्प—"पुण्य स्मृति"

१	सद्गुरु माला की एक उज्ज्वल मणिका	५८
२	सन्त समागम का लक्ष्य	५९
३	सक्षिप्त परिचय	६०
४	प्रसग वर्णन	६३

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ
५	श्री गुरुस्तव (तन्त्रोक्त)	७४
६	श्री मुनी द्र सूक्त	७५
७	श्री मुनी द्र स्तव	७६
८	श्री मुनीन्द्र स्तुति सुधा	७८
९	श्री मुनी द्र विनय	८७
१०	हाँ हाँ रे तू योगी	८८
११	हिमगिरि के एक तुग शिखर पर	८९
१२	दयामय दया करी तू आज	८९
१३	ॐ श्री सद्गुरु	९०
१४	चलो चलें आज हैडाखान	९२
१५	तेरी शरण मे आया	९३
१६	दोहावली	९४
१७	श्री शिवाष्टक	९५
१८	श्री राधाष्टक	९६
१९	श्री अम्बाष्टक	९८
२०	अनुभवाष्टक	१००
२१	श्री गीतोक्त स्तुति	१०४
२२	सद्गुरु पुष्पाञ्जलि	१०५
२३	मैंने नाम रतन धन पायो	१०७
२४	श्रोत्रिय दीक्षान्त भाषण	१०८
२५	शान्तिपाठ	१०९
२६	उपदेश	१०९
२७	श्री सद्गुरु सन्देश	११०
२८	श्री मुनी द्र आरती	११३
२९	परा पूजा	११४

क्रमाङ्क	विवरण	पृष्ठ
३०	अनुपम दया	११५
३१	आरार्ति गीतिका	११७

तृतीय पुष्प—आवश्यक कर्म"

१	कर्म की आवश्यकता	१२१
२	श्री भगवान की आज्ञा	१२३
३	यज्ञ	१२५
४	दान	१३२
५	तप	१४०
६	पाठकों से निवेदन	१४३
७	सकटो से सुरक्षा के उपाय	१४७
८	सार्वभौम शुभाशीर्वाद	१४९

चतुर्थ पुष्प—"आशीर्वाद और आदेश"

१	शरीर और सृष्टि	१५३
२	समन्वय	१५५
३	विरोधी तत्त्वो का आगमन	१६२
४	स्वस्थता पर कुप्रभाव	१६४
५	मनसा योग	१६७
६	आओ ! आओ !	१७४
	परिशिष्ट—	
७	विनीत निवेदन	१८०
८	भगवान् श्री हैडाखानवाले बाबा	१८३
९	सिद्धाश्रम	१९१

ॐ

श्री सिद्धसिद्धेश्वर श्रीमद्योगाचार्य सर्व श्री समलङ्कृत
श्रीकैलाश गुहाविहारी महामुनीन्द्राय नम



श्री हैडाखण्डवाले बाबा
(जप–भावना)

ॐ

श्री सिद्धसिद्धेश्वर श्रीमद्योगाचार्य सर्वश्री समलङ्कृत

श्रीकैलाश गुहाविहारी महामुनीन्द्राय नम



श्री हुडाखण्डवाले बाबा

शशि भुजग भूषित नित, हे शिव सत्य ललाम।
करुणामय समरथ श्री सदगुरु, बारम्बार प्रणाम ॥

ॐ

नाम साधन

लेखक

"श्री गुरुचरणाश्रित'

"'सोई ज्ञानी गुणवंता
जा को रहे नाम की चिंता"

प्रथम सस्करण, महाशिवरात्रि, स० २००८ वि.
द्वितीय ,, ,, स० २०२५ वि
तृतीय ,, ,, स० २०३० वि

ॐ

प्रणवेद ँ सर्व

यह सम्पूर्ण विश्व प्रणव रूप है।

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"—ऋक ॥

उसी एक पराशक्ति को ब्रह्मर्षिगण अनेक नाम रूपों से भजते हैं।

नाम और नामी अभिन्न हैं। जापक भी जैसे जैसे वैखरी से ऊपर उठ कर क्रमशः मध्यमा, पश्यन्ती तथा परा का अकृत्रिम स्पन्दन का बोध करने लगता है, उस समय जापक भी नाममय हो जाता है। नाम, नामी और जापक—तीनों एक ही हो जाते हैं। मन और मन्त्र भिन्न नहीं हैं। यदि मन नानाविध संकल्पों को त्यागकर एक नामनिष्ठ हो जाता है तो उस समय नाम और मन की भिन्नता नष्ट हो जाती है। जैसे त्रिपुटी विलय के पश्चात् निर्विशेष शुद्ध तत्त्व ही शेष रह जाता है। साधक, साधन तथा साध्य तीनों एक रूप होकर ही अभीष्ट पद प्राप्त कर सकते हैं।

जिस प्रकार गंगा, यमुना और सरस्वती अपना रूप, रंग, गुण और स्वभाव सब त्याग कर एक जलरूप ही शेष रह जाती हैं उसी प्रकार ध्याता, ध्येय और ध्यान में ऐक्य करने की अमोघ शक्ति है, इस नामजाप में।

ब्रह्म, जीव और प्रकृति—इन तीनों का शुद्ध परिज्ञान कराने में महासामर्थ्यवान हैं श्री नाम भगवान्।

हमारे सभी शास्त्रों में श्रुतियों से लेकर संत वाणियों तक

मे, आध्यात्मिक साधनाओ मे श्री नामसाधन का अत्युच्च स्थान है। सुप्रसिद्ध चार योगो मे एक मत्र योग भी है और इन योगशास्त्रो का एक मात्र उद्देश्य आध्यात्मिक साधनाओ का विवेचन करना ही है। अब एतद्विषयक कुछ शास्त्र प्रमाण यहाँ दिये जाते हैं। वास्तविक गुण प्रभाव तो साधन करने पर ही मालूम होगा। सर्वसाधारण जिज्ञासुओ के हृदय मे रुचि उत्पन्न हो, श्रीनामजापक साधको मे और भी अधिक निष्ठा बढे इसी विचार से कुछ आप्त वाक्य उद्धृत किये जाते हैं। सब से प्राचीन है 'वेद'। उसमे देखिए, नाम के विषय मे कितने महान प्रभाव का वर्णन किया गया है। कठोपनिषद् की द्वितीय वल्ली मे लिखा है —

एतद्ध्येवाक्षर ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षर पर।
एतद्ध्येवाक्षर ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत ।।

एतदालम्बन श्रेष्ठमेतदालम्बन परम।
एतदालम्बन ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।।

अर्थात् यह अक्षर (नाम) ही ब्रह्म है। यह अक्षर ही पर ब्रह्म है। इस अक्षर का ही ज्ञान हो जाने पर प्राणी पूर्णकाम हो जाता है। यह अक्षर ही सर्वोत्कृष्ट साधन (आश्रय) है। यही श्रेष्ठ अवलम्बन है। जिसको इस आश्रय का ज्ञान होता है, उसकी ब्रह्मलोक मे भी महिमा है।

अब 'दर्शन' देखिए। महर्षि पतञ्जलि प्रणीत प्रसिद्ध योग-दर्शन में लिखा है

"तस्य वाचक प्रणव"

उस अनामी अरूपी ब्रह्म का नाम है ॐ। जो व्यक्ति श्री

भगवान् के साकार विग्रह, अवतार आदि को नही मानते, वे भी नाम को मानते ही है। उस नामजप का फल महर्षि बतलाते हैं —साधन कालीन सपूर्ण विघ्नो का नाश।

साधन तो यह है ही, परन्तु अ य साधनाओ की रक्षा के लिए अन्य सहायक साधन की आवश्यकता पडती है। जैसे यज्ञादि वा अ य कमउपासनादि साधनो मे। परन्तु इस नामजप साधन मे तो सवत्र स्वतत्र श्री नाम महाराज स्वत कृपा कर अपनी पूण शक्ति सहित नामजापक के सामने उपस्थित रहते हैं। वहाँ विघ्न को स्थान कहाँ ?

पुराणो मे तो वणन है, जो काम भगवान् से नहीं हुआ, वह उनके 'नाम' से अनायास पूरा हो गया। 'महतो महीयान' महान् से महान् सर्वेश्वर भी अपने नाम की महिमा पूण रूप से नही र ह सकते

"राम न सकहिं नाम गुन गाई।"

गीता मे देखिए। इस ग्र थ मे देखा जाय तो यज्ञ का ही विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है। प्रत्येक काय यज्ञ ही है। सभी कतव्य कर्मों को यज्ञ समझकर ही करना चाहिए। चाहे वे काम व्यावहारिक हो अथवा पारलौकिक नि श्रेयस का साधन। कममात्र सदोष है, यदि यज्ञाथ भावना से कम नही किया जायगा तो वह कम ब धन कारक होगा। यदि यज्ञार्थ वा भगवदथ भावना से कम नही किया जायगा तो कोई भी कर्मानुष्ठान मुक्ति कारणभूत चित्त निमलता नही प्रदान कर सकता। भीषण हिंसापूण युद्ध को यज्ञ ही कहा गया है।

यज्ञ के अनेको रूप हमारे शास्त्रो मे बताये गये हैं। उन यज्ञो की अपनी अपनी विभि न पद्धतिया हैं। पृथक पृथक नाम हैं। यहाँ केवल जप यज्ञ के विषय मे ही कहना है।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं

"तस्मात सवगत ब्रह्म नित्य यज्ञे प्रतिष्ठितम ।"

वह सवव्यापी ब्रह्म—पर अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ मे प्रतिष्ठित है। श्री भागवतकार ने उस यज्ञ पुरुष को भगवान का ही स्वरूप बतलाया है। जैसे लिखा है

'भगवान यज्ञ पुरुष ।"

अथववेद मे तो पृथ्वी को धारण करने वाले 'यज्ञ भगवान ही हैं। 'यज्ञा पृथ्वी धारयन्ति'। इ्न्ही निगमागम निर्देशित परम पुरुष यज्ञ को श्री कृष्ण भगवान अपना स्वरूप बतलाते है। जहाँ पर गीता मे विराट रूप की विराट विभूतियो का वणन आया है, वहाँ पर श्रीमुख से यही कहा गया है—सभी यज्ञो मे मैं 'जप यज्ञ' हूँ।

"यज्ञाना जप यज्ञोऽस्मि ।"

भावाथ इसका यह है कि सम्पूर्ण साधनाओ मे उत्तम यज्ञ और समस्त यज्ञो मे श्रेष्ठतम यज्ञ है—जपयज्ञ। इतना ही कहकर भगवान् स तुष्ट नही हुए प्रत्युत जपयाज्ञिको को सकल कामना-पूर्ति का आश्वासन प्रतिज्ञापूवक दे गये। यथा

"अनन्याश्चिन्तय तो मा ये जना पयु पासते।
तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्ष`म वहाम्यहम ॥"

अर्थात् अनन्य परायण भक्तजन मुझ महेश्वर को निरन्तर चि तन करते हुए, निष्काम भाव से भजते हैं, उस नित्य एकी भाव से मेरे मे मन लगाने वाले पुरुषो का योगक्ष`म मैं स्वय प्राप्त कर देता हूँ।

तत्रशास्त्र को भी देखिए। श्री शकर भगवान् श्री माताजी से कहते हैं

"जपात सिद्धिजपात सिद्धिवरानने ।"

हे सुमुखी ! जपसे ही सिद्धि, जपसे ही सिद्धि, निश्चय समझो एक मात्र जपसे ही सिद्धि प्राप्त होती है। भगवान शिव ने श्री 'उमा' को श्रेष्ठ मुख वाली इसीलिए कहा है कि 'मा' जो आद्या हैं तथा सबके गुरु हैं, वे नित्य नियम पूर्वक जप—नामस्मरण करती हैं। पुराणो मे कथा है। 'मा' हम नाम विमुख एव इसकी अपार महिमा से अनभिज्ञ जीवो को स्वाचरण द्वारा शिक्षा देने के लिए नित्य सहस्रनाम का पाठ करती है।

अब इससे अधिक क्या कहा जाय। यह तो अटल त्रिकाला-बाधित महासत्य है। एक गुरूपदिष्ट मन्त्रजप से ही सभी वस्तुओ की प्राप्ति, अध्यात्मिक निगूढ़ातिनिगूढ तत्त्वो का स्पष्टीकरण तथा द्वैताद्वैत को बहु विवादास्पद शकाएँ स्वयम बिना प्रयास के ही सुलझ जाती है। लोक शिक्षण के लिए भगवान् आशुतोष शकर स्वय भी जप किया करते हैं।

अहा ! उनके जप की क्रिया कितनी सुन्दर है। एक आदमी कच्चे ही गेहूँ चबा लेता है। दूसरा उसे कूट-पीसकर घी शक्कर आदि का सयोग देकर सुस्वादिष्ट पकवान बनाता है। आप को अवश्य ही उसके स्वाद एव तुष्टि मे विलक्षण भेद दीखेगा। उसी प्रकार श्री नाम भगवान् को भी यदि हमने जब कभी जैसे तैसे कह दिया तो वह उतना कल्याणकारी तथा आनन्ददायक सिद्ध नही होता है। सवसमर्थ श्री नाम भगवान की सेवा मे सत्य, सरलता तथा प्रेम आदि भगवदीय गुणो को बठा दिया जाय तो अपने विशुद्ध आत्मीय परिकरो को प्राप्त कर, वे नाम प्रभु अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। जब साधक को यह स्पष्ट भान होने लगे कि अनिच्छया भी नामस्मरण हो रहा है, तभी समझना चाहिए कि पतित पावन, दयामय श्री नाम भगवान् हमारे ऊपर

कृपा कर रहे हैं। और उनकी कृपा प्राप्त कर फिर चिन्ता किसकी ?

"रहत सनेह मगन मन अपने।
नाम प्रसाद सोच नहीं सपने ॥"

प्राय लोग प्रश्न करेंगे कि अध्यात्मिक अनन्त साधनो को छोड कर इस नामसाधन को ही तुमने प्रधानता क्यो दी ? तो उनसे निवेदन है कि ऐसा सहज साधन अन्य नही है। सहज का अर्थ केवल सरल नही—स्वाभाविक भी है।

कोई भी साधन हो, स्मृति की आवश्यकता सर्वत्र है। बिना स्मृति से ज्ञान, योग, कर्म, उपासना—कोई भी साधन सुसम्पन्न नही हो सकता। अब स्मृति का और नाम का परस्पर कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, विचार कीजिए। किसी से आपका प्रथम परिचय होता है तो सर्वप्रथम नाम से ही बोध कराया जाता है। विश्व का कोई भी पदार्थ नाम ज्ञानशून्य होने के कारण व्यर्थ सा ही प्रतीत होता है। अपने इष्टमित्रादि की भी और वस्तुओ का उतना स्मरण नही रहता है जितना नाम का। कोई महाप्रकाण्ड पण्डित होगा तो उसे किसी नाम विशेष से ही सबोधित करेंगे। सर्वदा उसकी उपाधियो की व्याख्या नही होगी। कोई करोडपति है, तो उसे भी किसी नाम विशेष से ही पुकारेंगे। बार बार करोडपति जी कहना अनुचित ही होगा।

अत जो साधन इतने थोडे समय मे ऐसी सुलभ रीति से बिना किसी कठिन प्रयास के तथा बिना द्रव्यादि अन्य साधनो के सुसम्पादन हो जाय, तो बन्धु ! उसी साधन की शरण मे क्यो न चलो ? साधन-साधन तो एक है। साधन किसी साधक का अभीष्ट नही होना चाहिए। उसका सर्वस्व तो साध्य है। मार्ग के मोह मे पडकर गगा के शीतल एव पावन जल को त्याग

कर देना अनुचित ही होगा। श्री इष्टप्राप्ति के जितने भी साधन हैं, सब एक से एक उत्तम हैं। परन्तु श्री गुरु कृपा से जैसा आशुफलप्रद तथा निर्भय श्रेयस्कर साधन—श्री नामस्मरण हृदय में प्रस्फुरित हुआ, तदनुरूप साधक समाज में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है।

प्रसिद्ध सत श्री तुलसीदास जी कहते हैं —

"बदऊँ बाल रूप सोइ रामू।
सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू ।।"

जिसके नाम जपने से सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। सफलता का नाम ही सिद्धि है।

"आत्मानस्तु कामाय सव प्रिय भवति।"

कोई कार्यारभ तभी है जब उस काय मे प्राणी की अभि-रुचि होती है। अपनी रुचि के अनुकूल पदाथ की प्राप्ति ही सफल है। यही सिद्धि है। यहा सिद्धि का साधन भी कितना सुलभ ! 'जपत जिसु नामू'। जिसका नामजप करने मात्र से। जप-नाम-स्मरण वास्तव मे अति सरल साधन है, जो जीव इससे वञ्चित हैं वे अवश्य दुर्भाग्यशाली है। चैतन्य शिक्षाष्टक मे भी इस दुर्भाग्य का उल्लेख है

"नाम्नामकारी बहुधा निजसर्वशक्ति
स्तत्रार्पिता नियमित स्मरणेन काल।
एतादशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृश मिहा जानिनानुराग ।।"

अर्थात दयामय प्रभु के अनन्त नाम हैं। प्रत्येक नाम मे प्रभु ने अपनी पूर्ण शक्ति स्थापित कर दी है, स्मरण का भी कोई विधि-निषेध नही। फिर भी हे भगवन् ! हमारी कसी दुर्भाग्यता

है कि ऐसे सुलभ साधन के प्रति भी हृदय मे अनुराग नही होता है।

नाम जपने मे देश, काल, पात्र, द्रव्य, गुण तथा स्वभाव कुछ नही चाहिए। सब मगलप्रद नाम सदैव मगलकारक है।

भाव कुभाव अनख आलसहू।
नाम जपत मगल दिसि दसहू ॥

जब इसका नाम ही सहज साधन है तो कहाँ तक इसका सुलभता का वणन किया जाय। जैसे पहले लिखा गया है कि प्राय साधनाएँ जितनी है सब परतत्र हैं। यदि किसी साधक को अपनी इच्छानुसार साधन पूर्ति का साधन प्राप्त नही हो सका तो वह साधक मानसिक अपूण मनोरथो के पश्चात्ताप के अतिरिक्त और प्रगति नही कर सकता है। उस साधक का निष्क्रिय चिन्तन सवथा निष्प्रयोजन है। "चित्रकार करहीन यथा स्वारथ बिनु चित्र बनावे।" परन्तु साधको ! के सब बाधाएँ नामसाधना में नाम मात्र को भी नही हैं। नामजापक तो वीर साधक है। वह सर्वदा सर्वत्र सुखी है। प्रेम पहाड से स्मरण स्रोत सतत निर्झरित होता रहता है। वह जापक अपना साधन अपूर्ति जन्य विषाद से अत्यन्त दूर रहता है।

मम गुनग्राम सुनाम रत गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानइ परानद सन्दोह ॥

यहाँ सुनाम से लक्ष्य है श्री गुरु प्रदत्त इष्टनाम। साधक के लिए स्मरणीय, श्रेयस्कर—श्री इष्टनाम ही है।

इस साधन मे एक अन्य सुलभता भी ध्यात देने योग्य है। अन्य साधनाओ के लिए नितान्त एकान्त की आवश्यकता होती है। जैसे हठ योगादि के दुरूह आसन, मुद्रा तथा प्राणायामादि एव तन्त्र के लोक निषिद्ध साधन प्रणालिकादि। परन्तु श्री नामजपयोगी

तो चौराहे पर बठकर भी श्री नाम भगवान का मधुर आनद कारी सान्निध्य का सुख लेता रहेगा। वह तो महायोगी है, ससार मे रहता हुआ भी सब से पृथक है 'नाम जीह जपि जागहि जोगी'। वह तो सवथा स्मृति 'माँ की सुखद गोद प्राप्त कर महाचतन्य हो गया। शन शन तीनो अवस्थाओ को त्याग कर तुर्यातीत हो गया। परम दुलभ तत्त्व बहुत सुलभ हो गया। भगवान श्रीकृष्ण कहते है—तस्याह सुलभ' मैं उसके लिए सुलभ हूँ। 'यो मा स्मरति नित्यश' जो जन मेरा स्मरण करता जब कभी नही—नित्यश। गीता के मूल पाठ मे भी स्मरण ही आया है। इससे स्मरण की महा महिमा स्वत प्रकट होती है। जो सबका आराध्य है, अनेको चान्द्रायणादि क्लिष्ट व्रतो के करने से, अनेको यज्ञादि के करने से, अनेक शास्त्रो के पारगामी विद्वान् होने तथा सुवक्ता एव सुश्रोता होने से भी जिसकी प्राप्ति अनिश्चित है

"नाय आत्मा प्रवचनेन लभ्य न मेधया न बहुना श्रुतेन।"

वह ही सर्वेश्वर सब सुगम एव सब साधारण के कल्याणाथ निष्कण्टक माग दिखा गया। स्पष्ट आदेश दे गया। छिपा कर नही, देवासुर सग्राम के बीच, द्वद्वपूण मानव जीवन के प्रतीक स्वरूप, कौरव पाण्डवो का महा भीषणतम युद्ध घोष के मध्य मे ही हृषीकेश ने कहा

"अनन्यचेता सतत यो मां स्मरति नित्यश।
तस्याह सुलभ पाथ नित्य युक्तस्य योगिन ॥"

भगवान के सुलभ होने पर फिर दुलभ ही क्या? पाठको! हमको चाहिए कि प्रति श्वास नही हो सके तो कुछ समय नियमित रूप से नित्य यदि हो सके तो नियत स्थान पर तथा नियत

समय पर श्री इष्टनामस्मरण अवश्य करना चाहिए। जीवन मे इस जपयज्ञ को सभी व्यवहार की अपेक्षा प्राथमिकता देनी चाहिए। यह अत्यावश्यक मानसिक खाद्य है। साधक का प्रारम्भिक जीवन दो भागो मे बटा रहता है। एक साधन जगत और दूसरा व्यवहार जगत। मैं इसी सिद्धात का पक्षपाती हूँ कि साधक का नित्य व्यवहार भी साधन स्वरूप ही हो। उसका सम्पूण व्यवहार साधन ही है वा वह साधन के लिए ही व्यवहार करता है। पर न्तु सुनने मे जितना सहज मालूम पडता है वैसा करने मे नवीन साधक को सहज नही पडता है। यदि साधन काल मे व्यवहार की अपेक्षा साधन को श्रेष्ठता नही दी जायेगी तो बहुत सभव है कि नमक और मिश्री का-सा सम्मिश्रण हो जाय।

अतएव साधको ! नित्यप्रति आवश्यक व्यावहारिक कार्य समाप्त कर तत्परतापूवक श्री इष्ट तथा गुरु के चरणो मे दृढ निष्ठा रख अपनी साधन वेलि की रक्षा करो। समय बडा अमूल्य है। महाकृपण बनकर इसका सदुपयोग करो।

"विषय भोग निद्रा हँसी, जगतप्रीति बहु बात।
'नारायण' हरि भजन मे ये पाँचों न सुहात॥"

विद्वान, वृद्ध तथा विरक्त लोग भी व्यर्थ बात करते देखे जाते हैं। यह एक प्रकार का महादुव्यसन है। अपने इष्ट से प्राथना कर अन्या न्य दुव्यसनो का भी त्याग करो। अपने साधन बेलि का सदाचार के जल से नित्य सिञ्चक करो। सुसग की बाड उगाकर दुष्ट जीवो एव दुर्विचारो से बचाते रहो। समय पाकर यही तुम्हारी साघन वेलि पल्लवित एव पुष्पित होकर व्यवहार वृक्ष को ढँक लेगी। तुम्हारा व्यवहार वृक्ष अदृश्य हो जायगा। सु न्दर साधन वेलि सव दृष्टि गोचर होने लगेगी, उस समय

साधन और ससार एक हो जायगा। उस समय साधक को प्रत्यक्ष अनुभव होगा कि मेरी एक श्वास भी साधन हीन नही है।

जैसे दुबल शरीर से शारीरिक काय सुचारु रूपेण सम्पादन नही होता है, वैसे ही साधन क्षीण एव अशक्त मन से भी कोई शुभ कम वा श्रेयात्मक मनन चि तनादि होना कठिन है। इसके ज्वल त उदाहरण थे, महामना प० मालवीय जी तथा महात्मा गाधी जी, जो इतने महान् कमठ होते हुए भी उच्चकोटि के नामनिष्ठ थे। इस समय स्वत त्र राष्ट्र मे यह एक राष्ट्रीय परम पावन कत्तव्य समझा जाय कि अनिवाय रूप से सवत्र प्रार्थना का प्रचार हो जो नामसाधन की प्रथम श्रणी है। चिकित्सा-लय मे विशेष रूप से हो तो अच्छा प्राथना द्वारा एक दिव्य वातावरण का निर्माण होता है, उससे अ त शरीर के साथ-साथ हमारा बाह्य शरीर भी स्वस्थ होता है।

पाठक प्राय कहेगे कि तुम जप—नामस्मरण के स्थान मे प्राथना की महिमा गाने लगे। वास्तव मे एसा नही है। श्री नामसाधन के कई अग हैं। प्राथना मे भी उ ही का नाम है। सब से आदि ससार प्रसिद्ध मत्रराज श्री गायत्रीम त्र मे भी नाम है। प्राथना मे कीर्ति, नाम तथा मनोरथादि ही तो होते है। अत जो व्यक्ति अनिवाय रूप से प्राथना करेंगे, वे ब धु जपयज्ञ वा नामसाधन की आशिक अनुष्ठान अनायास ही कर लेंगे। यज्ञ से बचा हुआ अ न जो खाता है, वह सब पापो से मुक्त हो जाता है। इसीलिए हमारे शास्त्रो मे पचयज्ञ का विधान है। परतु आज पञ्चयज्ञ करने वाले बहुत ही कम है। उसकी क्रिया भी सबको विदित नही, मन्त्रोच्चारण भी सब नही कर सकते है। इन्ही कारणो से श्रुति प्रतिपाद्य पञ्च महायज्ञ लुप्त-सा ही हो गया।

अतएव पूण स्वतन्त्र श्री नामजप-यज्ञसाधन की सुलभता एव श्रेष्ठता बलात् साधक हृदय को अपनी ओर खीच लेती है।

"कोई काम कीजिए, मुख से नाम लीजिए।"

जिस मन से आप अन्य विषय चिन्तन करते हुए स्वकाय-सम्पादन निर्विघ्नतया करते हैं, वसे ही श्री नाम-स्मरण चिन्तन करते हुए भी अपना कतव्य पूणरूपेण निभा सकते हैं। एक विद्वान सन्त कहा करते थे

राम कहा कर कामकिया कर, क्या काहू का डर है।
परदेशी का हाट लगत है, क्या काहू का घर है॥

इस ससाररूपी धमशाला मे पडे पडे भी यदि हम श्री नाम स्मरण कर लें, तो सवथा निश्चिन्त एव निभय हो जायें, यह निश्चय है।

महर्षि वेदव्यास जी कहते हैं—"पृथ्वी मे एक नारायण का नाम प्रसिद्ध चोर है। अनन्त जन्मार्जित सचित कमफलो को एक साथ ही हरण कर लेता है।" 'हरन्त्यशेष' अवशेष कुछ नही छोडता। वह अद्वितीय डाकू है। उसके नाम-स्मरण मात्र से ही वह स्मरणकर्ता का क्रियमाण सचित तथा प्रारब्ध फलो को बलात् हर लेता है। यही तक नही। महर्षि का दयान्वित हृदय नामस्मरण विमुख जीवो को देखकर दु खी होता है। मानव जीवन के अमूल्य एव अलभ्य समय को निरर्थक निश्चेष्ट ही बितानेवाले के प्रति चिन्तातुर हो कहते हैं—'अरे! किस सुख सम्पादन मे व्यस्त है? किस सम्पत्ति के सचय मे उन्मत्त है? किस के मोह मे मस्त हो परम माधुयरस को भूल बैठा? अब भी चेत जा, अच्छी तरह सुन! मैं सम्पूण निगमागमो का प्रणेता—समस्त शास्त्रो का महाप्रतिष्ठालब्ध प्रवक्ता के सम्बन्ध से कहता हूँ

"सा हानिस्तन्महाच्छिद्र साचान्ध अविवेकता ।
य मुहूत क्षण वापि वासुदेव न चितयेत् ॥"

वास्तव मे सभी दु खो से छूटने का उपाय चि तन ही है । परन्तु असस्कृत तथा सामान्य मानव चिन्तन न कर उसी चि तन का एक विकृत—निकृष्ट स्वरूप चि ता को अपने मन मे स्थान देता है । अब जप की प्रक्रिया पर विचार कीजिए । सविधि तथा गुरुप्रदत्त नामचि तन ही जप है ।

भगवान् सदाशिव का जापक स्वरूप ।

श्री भोलानाथ शकर की अभिन्नहृदया 'माँ' उमा कहती हैं । त्रिभुवनगुरु श्री सदाशिव की स्थिति का वणन उन्ही के सम्मुख करती है । वह दशा उस समय की है जब शिव नामजप करते है । पाठको ! केवल पढकर ही न छोड दे । अपने दैनिक जीवन मे यथाशक्ति तथा यथासमय कुछ न कुछ आचरण मे लाने का भी प्रयत्न करें । 'मा कहती हैं —

"पुनि तुम राम राम दिन राती ।
सादर जपहु अनगआराती ।"

प्रथम तो माता जी यही आश्चय से कहती है कि 'पुनि तुम' फिर तुम ! तुम महा महेश्वर हो, योगियो और विदेहावस्था को प्राप्त विज्ञानियो के भी परम गुरु हो, फिर तुम विज्ञानियो के शब्दो मे यह नाम जपरूपी बारहखडी कसे पढते हो ? वह भी जब कभी नही, रात दिन वही धुन, राम राम ।

श्री माता जी सवसाधारण जैसा ही प्रश्न पूछती हैं, जिससे अन्य जीवो का सशय दूर हो जाय । जिसे इष्ट नाम—भगवन्नाम मे अनुराग नही है, वह कमयोगी नही है । विशुद्ध कमठ वा गीतोक्त अनासक्त कमयोगी प्रत्येक काय मे भगवान् का ही हाथ

देखता है। वह तो अपने को निमित्त मात्र ही समझना है। स्व-कर्तव्य कर्म सम्पादन करते हुए भी उसकी सतत दृष्टि उसी शक्ति से सम्मिलित रहती है। इस प्रकार कह सकते है, सिद्ध कर्मयोगी के लिए कि उसके हृदय का स्पदन ही स्मरण का रूप धारण कर लेता है। वसे ही जिसे 'नाम' मे अनुराग नही है, वह ज्ञानी नही है। अन्य प्रपञ्चपूर्ण कामो मे तो रात दिन बका करता है परन्तु 'नाम' स्मरण के समय ब्रह्म बन बठता है। अहा ! कितने दु ख की बात है जिसका त्याग करना था उसे तो अच्छी तरह से अपनाया और प्रतिक्षण ग्रहण करने योग्य अमूल्य एव अनुपमेय सार तत्त्व को हेय समझ कर त्याग दिया। परतु खेद है।

काम न छोडा क्रोध न छोडा।

राम भजन क्यो छोड दिया॥

सच्चा ज्ञानी तो महान् भक्त है। 'ज्ञानीत्वात्मव मे मतम्' भगवान् के मत मे ज्ञानी भक्त उनकी आत्मा ही है क्योकि वह भक्त श्रीभगवान् के लिए ही समस्त कर्म तथा उपासना करता है।

एक साधारण उदाहरण से विचार कीजिए। दो व्यक्ति है। दोनो किसी महापुरुष के दर्शन के लिए गये। वे महापुरुष मञ्च पर उपस्थित है परन्तु जिसने उन महापुरुष को पहले नही देखा है, जिनको उनका ज्ञान वा परिचय नही है, वह व्यक्ति इधर उधर असन्तुष्ट होकर देखता है, प्रतीक्षा करता है। इसके विपरीत दूसरा जिसने उन महापुरुष का दर्शन वा परिचय पहले प्राप्त कर लिया है, वह निश्चिन्त हो अपने आसन पर बैठा शान्त एव असन्दिग्ध दृष्टि से अपने ध्येय दृश्य का दर्शन कर रहा है। कोई विघ्न विक्षेप भी आवे, चाहे वे स्वबुद्धिजन्य हो वा अन्य अज्ञातत तो भी उसे इष्ट दर्शन से विचलित नही कर सकता, वह ज्ञानी

है, अपना लक्ष्यज्ञान उसे पूर्ण है। फिर उसमें संशय कैसा ! दूसरा जो अज्ञानी है, अपने लक्ष्य का गुणज्ञान, स्वरूपज्ञान तथा स्वभावज्ञान जिसको नही है, उसको प्रत्यक्ष दर्शन होते हुए भी, दर्शनजन्य आनन्द प्राप्त नहीं है। उसे शंका है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। जब तक हृदय मे संशय है तब तक पूर्ण निष्ठा उत्पन्न नही होगी। 'संशयात्मा विनश्यति'। निष्ठाहीन साधको मे भक्ति, ज्ञान कुछ नही टिक सकता है। निष्ठा, ज्ञान और भक्ति दोनो ही की आधारभूमि है। इस लघु विवेचन का तात्पर्य यह है, जो एक प्रकार की भ्रान्ति वाचक ज्ञानी तथा अभावुक विद्वानो के समाज मे फैली हुई है कि नाम जप तो केवल भक्त को ही करना चाहिए। यह नामजप तो अबोध साधको की प्रथमावस्था है। यह दुर्बुद्धिजन्य विनाशकारी भाव दूर हो और दयामय की दया से इन जीवो मे भी महासुलभ एवं महाश्रेष्ठ साधन नामजप के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो।

इसका सप्रमाण विवेचन पहले ही किया गया है कि नाम तथा नामजप की क्या वर्णनातीत महिमा है। अब संक्षेप मे इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि जगद्गुरु भगवान शंकर से हमको श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए जिससे उनकी कृपा का आधार लेकर ही इस शिवमार्ग पर कोई साधक चल सकता है। किसी वस्तु का ज्ञान वह वस्तु हमे नही करा सकती है। मोटर के पास रात दिन पड़े रहने पर भी हमे मोटर चलाने का ज्ञान नहीं होगा जब तक उस कला का ज्ञाता हमें नही बतावेगा। इसी प्रकार सभी कलाएँ तथा विद्याएं है। यहाँ नामजप का प्रसंग है। अतः यह साधन भी श्री गुरुसंग तथा साधुसंग से ही सुचारु रूपेण सम्पादित हो सकता है। सुप्रसिद्ध महात्मा श्री उड़िया बाबा जी महाराज का उपदेश भी इसी प्रकार है।

गुरु का अंग, साधु का संग, नाम का रङ्ग,
विवेक का अङ्ग और प्रभु का विश्वास होना चाहिए।

अत भावना कीजिए, आदिगुरु हमे जप सिखा रहे है। जब माता जी ने कहा 'पुनि तुम' तब भगवान् ने मौन मुद्रा से ही समझा दिया कि अपने प्रिय अनुयायियों को सुनाने के लिए उच्चस्वर से 'राम राम' कह कर जप करता हूँ। सर्वतापहारी परम शान्तकारी मुनिजनमनविहारी तथा अखिल भुवन मोहन भगवान् की माधुरी को विस्मृत करा देने वाला सुरस—प्रसिद्ध नामरस ही तो है। इसी दिव्यातिदिव्य परम दुर्लभ नामरसास्वादन के निमित्त ही सच्चे ज्ञानी ब्रह्मर्षिगण ध्यान त्याग कर श्री भगवच्चरित्र सुनते हैं। साधको को भी वही शास्त्र श्रवण करना चाहिए जिसमे श्री इष्टनाम हो। यदि नाम शून्य कथा प्रवचन हो तो साधको को नहीं सुनना चाहिए। अन्य विद्वानो की तो बात ही क्या ? यदि 'ब्रह्मा स्वय वदेत्' इस चौपाई का एक-एक शब्द ध्यान देने योग्य है। 'राम राम' से भगवान का आदेश यह है कि निरन्तर अभ्यास करो। यह नही, जब अवकाश मिला तो नाम ले लिया। मन बडा चंचल है। एक अभ्यास से ही शान्त हो सकता है। एक काम को बार-बार करने का नाम अभ्यास है। अतएव हम लोगो को केवल जप ही नहीं, समस्त शुभ कर्मों को बारम्बार करते रहना चाहिए। जब तक वे नियम पूर्णरूपेण स्वभाव मे परिणत न हो जाय। फिर 'दिन राती' से भगवान् यह आदेश करते है। 'श्वास श्वास पर नाम जप'—'तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धय च' जब तक ऐसा सौभाग्य जिन मनुष्यो को प्राप्त नहीं है, प्रत्येक श्वास पर नाम-स्मरण नही कर सकते हैं, वे बन्धु अभी से ऐसा प्रयास करें। विशुद्ध सात्त्विक शास्त्र सम्मत जीवन

व्यतीत करते हुए अपने इष्टदेव से प्राथना करें कि वह समय शीघ्र कृपा कर दो, जब कि दिनरात तुम्हारी स्मृति बनी रहे। हृत्तन्त्री सदैव ही आप के मधुर नामनाद से झकृत रहे। अहा! यह प्राथना साधको के लिए कितनी सुन्दर है —

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाती।
सब तजि भजन करउ दिन राती ।।

'सादर'

अब दूसरे चरण पर ध्यान दीजिए। आदर से। एक सामान्य व्यक्ति को भी निरादर प्रिय नही तो सवशक्तिसम्पन्न प्रभु हमारा निरादर वा अहकार कसे सहन करेंगे। श्रद्धा माता के ही स्मृति और वोय दोनो पुत्री और पुत्र हैं। जसी जिसकी श्रद्धा वसी ही उसकी सफलता। मनुष्य श्रद्धामय है। अभीष्ट सम्प्राप्ति की जो एक नैसर्गिक अज्ञात तथा अचूक यंत्रिका है उसी को श्रद्धा कहते हैं। "सा श्रद्धा कथिता सद्भियया वस्तूपलभ्यते।" श्रद्धा और आदर मे नाम का ही भेद है। भाव दोनो का एक ही है। लोक भाषा मे जिसे आदर करते है उसे साधक श्रद्धा कहते हैं। तत्पश्चात् 'जपहु' शब्द आता है अर्थात् 'जप' करते रहो। वस्तु का महत्त्व समझने मात्र से ही लाभ नहीं होगा। एक बडा आयुर्वेदाचाय चिकित्सक बीमार पडा है, वह औषधि का प्रभाव भी जानता है, उपचार मे भी बडा दक्ष है, परन्तु औषधि नही खाता है। कहिए, आप क्या कहेगे ? अवश्य औषधि सेवन की सम्मति देंगे। आप का हृदय यही कहेगा—बिना भोजन के भूख कैसे मिट सकती है! इसी प्रकार नाम भगवान का ज्ञान एव उनके प्रति निष्क्रिय वाचिक सम्मान सब उपरोक्त उदाहरणवत् व्यथ है। श्रद्धाभाव तथा किसी के प्रति किसी प्रकार का आदर तभी समझना चाहिए, जब तक उसकी स्मृति

बनी रहे। सभी साधकों के लिए यह रचनात्मक निष्ठा परमावश्यक है। अमुक ज्ञानी है, अमुक भक्त है तथा अमुक कर्मकांडी। ऐसा प्राय लोग कहा करते हैं। मेरे विचार में पूर्णत्व में सब है। ये सब साधनाएँ महासर्वांगपूर्ण साधनादेवी के अंग प्रत्यंग हैं। बिना कर्म के ज्ञान निरर्थक होगा। बिना ज्ञान के कर्म हानिकारक होगा। आध्यात्मिक बात अलग रखिए। आप तलवार चलाना नहीं जानते, चलाने जाइए कट जायेंगे। निदान का ज्ञान नहीं है, उपचार कीजिए, असफल रहेंगे। भाव यह है कि जब सांसारिक सामान्य कर्म भी बिना ज्ञान के सिद्ध नहीं होता है तो जिससे बढ़कर शक्तिमान् ज्ञानवान् सौन्दर्यवान् तथा श्रीमान अन्य कोई नहीं है उसकी प्राप्ति तथा सेवा अज्ञानियों के द्वारा विधिवत् होना अनिश्चित ही है।

प्रेम भक्ति के बिना तो कोई कार्य आरम्भ ही नहीं होता है। कोरे कर्मकाण्ड, ज्ञानशून्य भक्ति तथा शुष्क ज्ञान (उपासना रहित ज्ञान) साधक को तृप्त करने में असमर्थ हैं। कर्म, उपासना और ज्ञान, तीनों का समन्वय कर रस्सी बना लो फिर तुम्हारा प्रियतम आप ही बँध जायेगा। सदाचार तो मुख्य है ही। 'नाविरतो दुश्चरितात्' जो वैराग्यवान् नहीं है, चरित्रवान् नहीं हैं, उन्हें 'प्रज्ञा' स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

यदि हमारे हृदय में उसके श्रेष्ठत्व का भान हो जायेगा, तो बिना उसके स्मरण किये शान्ति मिल ही नहीं सकती है। उसको तो हमने बहुत दूर का सारहीन, अवकाश कालीन कालविक्षेपण का सुलभ साधन समझ रक्खा है। अरे! अभी क्या है? मेरी अवस्था ही क्या है? केवल ईश्वर सम्बन्धी कार्य के अतिरिक्त अन्य सभी कार्य होते रहते हैं। जो सर्वथा अविस्मरणीय परमावश्यक कार्य था, जिसकी प्रतिज्ञा गर्भवास में ही विश्वास से कर आया था, उसको बुढ़ापे अर्थात् चौथेपन

के लिए छोड देते हैं। अमुक समाज नि द्य काम मत करो। इतना विलासी जीवन मत व्यतीत करो। इत्यादि प्रश्नो का उत्तर अविलम्ब हम दे डालते हैं। अरे मित्र ! कल को किसने देखा है। यदि यो ही प्राण निकल गये तो ! जो भोग भोगना है भोग लेने दो। कितनी अज्ञानता है। सभी वस्तुओ का आनन्द, तो जितना शीघ्र हो ले लो, कल का ठिकाना नही है। परन्तु अपने परम प्रभु से प्रतिज्ञा किया हुआ काय अनावश्यक समभ्क कर भविष्य के लिए छोड दो। जसे लोभी कमचारी उसके काम। को सब से पीछे टाल देता है, जिससे उसे कुछ मिलने की आशा नही रहती है। जो व्यक्ति ऐसा विचार करते हैं 'खाओ पीओ आराम करो, उनको अच्छी तरह समभ्कना चाहिए कि पाप ग्रसित मन धोखा दे रहा है। कुछ व्यक्ति ऊपर से तो बडी बडी ज्ञान की बातें करते है। परन्तु कम करते है सवथा इसके विपरीत। साधारण सासारिक पदार्थों से लेकर मुक्ति पयन्त यावत वस्तु विघ्नरूप खडी है, उसी से प्रीति जोडते है। विपर्यय ज्ञान होने के कारण मित्र शत्रु प्रतीत हो रहा है। तमसाच्छन्न बुद्धि होने के कारण, तात्कालिक सुखसम्पादन ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य बना रक्खा है। सत्कम तथा असत्कम दोनो एक दूसरे से उलटे है। अशुभ एव अविद्याजन्य कम प्रथम में सुखरूप भासता है। शुभ कम निश्रेयम का साधन प्रथम विषरूप मालूम पडता है परन्तु परिणाम तो अमृत सा है। यदि जीव वास्तविक सुख चाहे तो यही सर्वोत्तम उपाय है, यही सभी सत्कर्मों का प्राण है कि भजन स्मरण अवश्य करें।

राम भजन बिनु सुनहु खगेशा।
मिट न जीवन केर कलेशा॥

"मच्चित्त सवदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि"

भगवान् हमको आश्वासन देते है। "मुझमे अपना चित्त लगाओ, मेरी कृपा से सब सकटो से उद्धार हो जायेगा।"

जप की कुछ और बातें

शास्त्रो मे जप के बहुत प्रकार है। उनमें मुख्यत उपाशु जप और मानसिक जप दो प्रकार के है। उपाशु जप उसे कहते है जिसमे धीमे धीमे शब्द सुनाई पडता है। प्रथम जिज्ञासु को इसी जप से प्रारम्भ करना चाहिए। जिह्वा जो शब्द बोले कान उसको सुनता जाय। उस शब्द का आश्रय लेकर मन शात हो जाता है। दूसरा मानसिक जप है। इसमे साधक को केवल मनन ही करना पडता है। साधक मन से तेजोमय मन्त्राक्षरो की कल्पना करता है। अन्य कई साधक केवल स्वरानुसधान मे ही रहते है। विश्वविख्यात सत श्री रमण महर्षि ने बताया है— "सच्चा जप वा तप यही है कि जहाँ से शब्द उठता है, उसी स्थान (केन्द्र) पर ध्यान देना।" अन्यान्य सतपन्थो में भी इसी प्रकार की जप की पद्धति है। किसी चक्र विशेष में चित्त केन्द्रित कर गुरुप्रदत्त नामचिन्तन करना।

जप की एक सुदर प्रक्रिया यह भी है कि चिन्तन की धारा उलट देनी चाहिए। जिस चित्त से हम अन्य प्रापञ्चिक पदार्थों का चिन्तन करते है उस चित्त से हम इष्टचिन्तन ही करें। जिस घोडे पर चढ़कर हम पश्चिम की ओर जाते है उसका मुख पूर्व की ओर कर दें। घोडा की शक्ति तथा समय जितना पश्चिम की ओर जाने में लगता है, उसी शक्ति से पूर्व की ओर भी जा सकता है। कुमार्ग मे मन जाने पर अत्यधिक शक्ति क्षीण होती है। तथापि मन उधर को बिना प्रयास के ही चला जाता है। सन्मार्ग एवं नामचिन्तन से हमे अपार शक्ति लाभ

होता है। जसे त्वचा का स्पश अग्नि से हो तो अवश्य गरमी लगेगी। क्योकि अग्नि मे उष्णता है। वसे ही जिस समय जापक समाहित चित्त हो श्री नामचिन्तन करता है उस समय प्राकृतिक रीति से जापक मे चिन्त्य—नामी का गुण, स्वभाव तथा साम र्थ्यादि समस्त गुण स्वयमेव आ जाते हैं। तथापि नामस्मरण मे मन सवसाधारण का प्रयत्न करने पर भी नही लगता है। मान सिक चचलता दोष से अधिकाश साधक क्षुब्ध रहते है। इसके अनेको कारण हो सकते हैं। उनमे सब से प्रधान कारण है—भावना की कमी। श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं— 'न चाभावयत शान्ति।" बिना भावना के शान्ति नही। योगदर्शन का एक प्रसिद्ध सूत्र है। जप के लिए तो इससे उत्तम कोई प्रक्रिया ही नही है। महर्षि कहते हैं—"तज्जपस्तदथ भावन वा" भावना का अथ भिन्न भिन्न प्रकार से लोग करते हैं। कोई भावना से ध्यान का अभिप्राय समझते हैं, जिस देव का मन्त्रजप करते हैं उन्ही के स्वरूप का ध्यान भी करते हैं। कतिपय साधक अपने इष्ट के गुणो की भावना करते है। जैसे वह रक्षक है। हमारा माता पिता है। ये सब धारणाएँ अपने अपने विचारा नुसार उचित ही हैं।

श्री गीता मे एक श्लोक है

> भोक्तार यज्ञ तपसा सवलोकमहेश्वरम्।
> सुहृद सर्वभूताना ज्ञात्वा मा शान्तिमृच्छति ॥

प्रत्येक जापक को ऐसा समझना चाहिए कि इष्टदेव ही सम्पूण यज्ञो तथा तपस्याओ का भोगने वाला, सब लोको के ईश्वर का भी ईश्वर तथा प्राणी मात्र पर अकारण हित करने वाला है। ऐसा जानने पर उसे शान्ति प्राप्त होती है।

यह श्रीकृष्ण वाक्यानुसारिणी भावना मुझे विशेष प्रिय लगती है।

"भोक्तार यज्ञ तपसां"

जब हमारे कर्मों का साक्षी वही विभु हैं तो यह परमावश्यक है कि हमारा सब कम उनके योग्य ही हो। इस भावना से कर्मों की पवित्रता का भाव आता है। 'सव लोक महेश्वरम्' से उनकी सवश्रेष्ठता का ज्ञान होता है। इस भावना से प्रपन्नता की प्रेरणा मिलती है। यह स्वाभाविक बात है जो सब से महान् है उन्हीं की शरण सब जाते हैं। 'सुहृद सवभूताना' से प्राणीमात्र पर प्रेम होता है। जब इस प्रकार की भावना आतीहै कि भगवान् सब के हितैषी है तो हमारा भी कतव्य हो जाता है कि हम सब जीवों के सुख-सम्पादन मे यथाशक्ति सहायक बनें। भगवान् राम कहते हैं, "मित्र का दु ख छोटा भी हो तो मुझे पहाड-सा मालूम होता है।" अहा! जब सुहृद भगवान् जीवो के प्रति इतनी दया प्रकट करते हैं तो उनके भक्तो का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि सभी दु खी जीवो के दु ख दूर करने की सक्रिय चेष्टा करें। इसी से शुद्ध भक्तो मे उपकार की भावना नहीं आती है। वे तो अपनी ही आत्मा के अभिन्न स्वरूप समझ सब की सेवा करते हैं। इस प्रकार जापक अपना अभीष्ट नामजप करता हुआ अपने शुद्धाचरण द्वारा यथा शक्ति प्राणी मात्र का हित साधन करता हुआ अपने परात्पर प्रियतम की शरण पहुँच जाता है। वास्तव मे साधन का यही सर्वोत्तम फल है।

सत्य की भावना से हम असत्य को हटा सकते है। दिव्य प्रकाश की भावना से अन्धकार (तमस्) को पार कर सकते हैं तथा अमृतत्व की भावना से हम अमर हो सकते हैं। आज भौतिक वादी विज्ञानी भी भावना शक्ति के उपयोग से असंभव को

सभव कर दिखाते हैं। भावना का प्रत्यक्ष फल हम रात दिन देखते हैं। एक केवल भावना बदल जाने पर कैसे सुस्थिर शाति प्राप्त होती है।

जब लडकी अपने श्वसुर गृह मे आती है, उस समय स्वभावत उसे अपने पितृगृह की याद आती है। परन्तु कालान्तर में जब लडकी के हृदय मे यह भावना बैठ जाती है कि हमारा गृह यही है, हमारे जीवन का, सुख-सम्पादन का के द्र यही है, तो बिना प्रयत्न के ही पूव की स्मति नष्ट हो जाती है। उसे किसी वेदान्ती से पढना नही पडता है कि तुम्हारा पिता का घर असत्य है, माया कल्पित है वा स्वप्न की सृष्टि है। ऐसे ही साधको ! तुम्हारी चचलता स्वत ही नष्ट हो जायेगी। यदि एक बार भी यह दृढ निश्चय हो जाय कि हमारा इष्ट के अतिरिक्त कही अ य आश्रय नही है जहाँ हमे सुख मिले। एकमात्र इष्ट चरण ही हमारा ज मसिद्ध आश्रय है। परिणाम चाहे जैसा हो पर तु मन सुख समझकर ही किसी का आश्रय लेता है। सदा इस सत्य का आदर करो। सिंह जिस जगल मे चला जाता है, वहाँ से क्षुद्र जीव स्वत ही भाग जाते हैं। प्रारभिक अवस्था मे भावना हीन होकर भी नाम महाराज को अपने हृदयासन पर बठाओ। बहुत शीघ्र तुम्हे विदित हो जायेगा कि अनायास ही क्षुद्र वासनाएँ तथा इष्टप्राप्ति मार्ग की सभी बाधाएँ दूर हो रही हैं। विचार करो, कितनी महान नामनिश्ठा है।

तुलसी अपने राम की रीझ भजो चाहे खीझि।
खेत पडे पर उपजि है उलटे सुलटे बीज॥

इस नामजप से एक और भी बडा लाभ है। नाम भगवान् अपने आश्रितो को सब साधनो का चरमफल सत्सग प्राप्त करा देते हैं। जो नामस्मरण से विमुख हैं उ हे शुद्ध सत्सग नही प्राप्त

हो सकता है। ससार की कोई भी ऐसी सामग्री नहीं है जिससे हम निरन्तर नाम परायण सतो का हृदय अपनी ओर खीच सकें जिन महाभाग जापक सतो की दृष्टि मे विश्व के सभी पदार्थ उच्छिष्टवत् है। उनका मन मीन तो सदव नामप्रेमामृत सरोवर मे ही निमग्न रहता है। अत वे मन मीन नाम हीन स्थानो मे वा सगो मे ठहर नही सकते हैं। पर तु जहाँ नाम है वहाँ वे बिना बुलाये ही पहुँच जाते है। परम नाम-रसिक श्री हनुमन्तलाल जी को देखिए। आप नाम की महिमा के पूर्णज्ञाता है। इस नाम के बल से ही परात्पर ब्रह्म श्री राघवेन्द्र को अपने वश कर लिया है।

सुमिरि पवन सुत पावन नामू।
अपने वश करि राखे रामू॥

जिस समय वे 'माँ' सीता के अन्वेषणार्थ लका गये, उस समय की मानसिक परिस्थिति उनकी कसी थी? प्राणाधिक श्री रामचन्द्र भगवान् महशोकाकुल हो रहे थे। अपने प्रिय की व्याकुलता से कौन नही व्याकुल होगा? परन्तु परम नामरसिक सुद्गुरु शिरोमणि श्री मारुति भगवान् की दृष्टि जैसे ही नाम पर पडी वसे ही उनके हृदय मे यही सकल्प आया कि चलो प्रथम इन्ही से मिलें। इससे हमारा कार्य सिद्ध होगा। उस अवर्णनीय शोभा को महावीर त्याग न सके। कोई कलात्मक उपकरणो से सुसज्जित राज प्रासाद नहीं था। वहाँ केवल भगवान् का नाम अकित था। श्री विभीषण जी ऐसे नामानुरागी महाभागवत थे। घर के भीतर को कौन कहे? दुष्ट समाज मे रहते हुए भी अपना इष्टनाम द्वार पर लिख रक्खा था। इस नाम को देखते ही श्री हनुमान जी सब भूल गये और भक्तराज श्री विभीषण जी से प्रगाढ़ भावोन्माद सहित इष्ट चिन्तन मे लग गये। जिस कार्य के लिए आये थे, उसका पूर्ण तो कौन कहे! अभी

पता तक नही मिला है, परन्तु 'पावा अनिर्वाच्य विश्रामा' यद्यपि प्रथम आपने कहा है "रामकाज की हे बिना मोहि कहा बिश्राम।" तथापि मङ्गलमय नाम तथा महामङ्गलप्रद नामोपासक श्री विभीषण जी से मिलते ही उन्हे पूर्ण सन्तोष हो गया। उध्र्व रेता महाजापक श्री महावीर जी की पूर्ण निष्ठा थी कि जहाँ नाम महाराज विराज रहे हैं, वहा अमङ्गल एव अपूर्णत्व का स्थान कहा ? जो उपासक—जापक त्रिभुवन के वैभव को भी ठुकराकर एक क्षण का भी नाम-स्मरण नही त्यागता है, वही श्रेष्ठ भक्त है। ऐसे नामानुरागी महाभगवतो की चरण वन्दना श्रद्धा सहित करनी चाहिए। इनके पावन स्मरण से नामनिष्ठा मे वृद्धि होती है यथा —

"प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक
व्यासाम्बरीष शुक शौनक भीष्म दाल्भ्यान।
रुक्माङ्गदार्जुन वशिष्ठ विभीषणादीन
पुण्यानिमान परम भागवतान नतोऽस्मि॥"

इन पुण्यश्लोक परम भागवतो की जीवनी यदि सम्यक् अनुशीलन किया जाय तो ये सब के सब एक मात्र नामाश्रयी ही थे। नामस्मरण के ही प्रभाव से इस पद पर पहुँचे थे। इनमे प्रथम श्री प्रह्लाद जी का नाम है, जिन्होने शैशवावस्था मे ही एक वृद्धा के उपदेश से श्रीनाम की शरण ली थी और स्मरण-साधन से ही सत शिरोमणि हो गये। एकमात्र नामस्मरण से ही सब विघ्न बाधाओ को सहर्ष सहन करते हुए जीव के परमाश्रय सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्राप्त कर धन्य-धन्य हो गये।

भाव और क्रिया

उपासना मे दो वस्तु प्रधान हैं, भाव और क्रिया—अन्य

सम्प्रदाय की अपेक्षा शाक्त साधको मे प्राय क्रिया की ओर विशेष चेष्टा देखी जाती है। क्रिया की उपेक्षा तो नही करनी चाहिए पर तु प्रधानता भाव की ही रहे। क्रिया गौण हो। क्रिया सान्त है, अमुक कालपयत ही उसका अनुष्ठान हो सकता है पर तु भाव अनन्त है। अ त मे तो सभी क्रियाए तथा ज्ञान की पूर्ति परा-भक्ति मे ही है।

श्री दुर्गा सप्तशती मे कसा सुन्दर लिखा है ! हे 'मां' जो जन तुम्हारा स्मरण भक्तिपूर्वक करता है उसे सिद्धि शीघ्र प्राप्त होती है। हे ईश्वरी ! जो जन तुम्हारा स्मरण करता है उसकी रक्षा तुम करती हो, इसमे सशय नही।

यस्तु भक्त्या स्मृता नून तेषां सिद्धि प्रजायते।
ये त्वा स्मरन्ति देवेशि रक्षसेतान्न सशय ॥

श्रीमद्देवीभागवत तृतीय स्कध मे ऐसा वणन है। जब ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश स्त्रीरूप धारण कर परमाद्या पराम्बा का स्तवन करते है। उस प्राथना मे वे 'मां' से याचना करते हैं, हे 'मां' कृपा कर यह वर दो कि निरन्तर तुम्हारा नाम हमारे मुख में रहे। "नामाऽपि वक्त्र कुहरे सतत तवैव।" पौवात्य तथा पाश्चात्य सभी दाशनिको के परम श्रद्धेय भगवान शकराचार्य भी अपने प्रसिद्ध देव्यापराध क्षमापन स्तोत्र में कहते हैं। हे 'मां' मेरा जन्म आपके नाम स्मरण करते ही व्यतीत हो यही मैं आपसे याचना करता हूँ।

"अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै।
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपत ॥"

जैसे वैष्णव तथा शैव सतो मे उच्चकोटि का नामाश्रय है, वैसे ही निम्न श्रेणी के सकामोपासक साधकों को छोड़कर श्रेष्ठ

शाक्त स तो मे भी नामानुराग पूर्ण रूपेण पाया जाता है। परमहस श्री रामकृष्ण देव के उपदेश तथा जीवन देखिए। वे महाशिशु भावापन्न साधक थे। 'मा' 'माँ' ही उनकी रट थी। वे साधको से कहते थे—जिस साधक को नाम में दृढता हो गयी, उसे कोई अन्य साधन की आवश्यकता नही है। प्रख्यात कौलाचार्य महात्मा वामाक्षेपायही आदेश करते थे, "रो रोकर 'माँ 'मा' कहकर 'माँ' को बुलाओ।" वे स्वय भी उन्मत्त जीवन व्यतीत करते हुए नाद सिद्ध महायोगी अहर्निश 'तारा तारा' का ही रटन करते थे। विशेष क्या लिखना ! जो साधक सर्वमङ्गलप्रदायिनी नारायणी तथा सर्वार्थसाधिका करुणामयी शिवा की शरण एव स्मरण त्याग कर अन्य साधानानुष्ठान मे आसक्त रहता है, उसको शाश्वत सुख की प्राप्ति तथा आत्यन्तिक कष्ट की निवृत्ति होना असम्भव है।

शाक्त, शैव तथा वैष्णव कोई साधक हो, अपना इष्ट नाम-स्मरण से अधिक सुखमय एव निरापद साधन कोई नही है। यदि एतद्विषयक प्रमाणो का सकलन किया जाय तो एक बृहद ग्रन्थ तैयार हो जायेगा। अत सभी साधको को प्रार्थना करनी चाहिए - 'जासु कृपा निरमल मति पावउँ।' नानामार्ग भ्रान्त साधको के लिए यह प्रार्थना बहुत सुन्दर है

"मातस्ते नमस्ते श्रुति पथ गुरु त्र्यक्षर ब्रह्म रूपे।
मिथ्या मोहान्धकारे पतितमनुदिन पाहि मां मन्दहीनम् ॥

जैसे गीता के उपसहार मे भगवान् आज्ञा करते है
सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

वैसे ही सप्तशती मे भी महर्षि राजा को आज्ञा देते हैं कि हे राजन ! उसी परमेश्वरी की शरण जाओ जो दया कर अपने आराधको को सासारिक सुख, दिव्य भोग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं।

"तामुपैहि महाराज शरण परमेश्वरीम् ।
आराधिता सैव नृणा भोग स्वर्गापवर्दा ॥"

अन्यत्र भी देवी भागवत मे लिखा है —

यन्नामकीतनादेव दु खौघो विलय व्रजेत ।
ता स्मृत्वा परमां शक्ति कुरु कार्यमति व्रत ॥

जिनके नाम कीतन से सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं। उन पराशक्ति का स्मरण करते हुए आलस्य रहित होकर कर्तव्य कम करो। अब अ तिम शब्द श्री सद्गुरु शिरोमणि शिव का विशेषण है।

अनग आराती

अर्थात् काम के शत्रु, कामना मात्र को काम कह सकते है। यहाँ पर हम साधन कालोचित ब्रह्मचय साधन से अर्थ लेते है। जिसे अध्यात्म माग से प्रेम है, उसे अवश्य ही ब्रह्मचय रूप व्रतराज का पालन करना चाहिए। गाहस्थ्य जीवन में भी नियमानुसार सयमित जीवन व्यतीत करने वाला सद्गृहस्थी ब्रह्मचारी के समान ही है। शास्त्रो मे मुक्ति मार्ग के सभी प्रशस्त साधनो मे ब्रह्मचर्य को एक विशिष्ट स्थान दिया गया है। सम्पूण उपनिषदो के सारभूत ज्ञान गीता मे कहा गया है

"यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति ।"

आयु, आरोग्य, सुमेधा तथा तेज इन सब की रक्षा ब्रह्मचय से होती है। ब्रह्मचय प्रतिष्ठा के पश्चात् एक प्रकार का ओज बनता है, उस ओज का आधार लेकर ही कोई साधक प्रतिकूल विचारात्मक आ दोलन से दूर रह सकता है। एक सत का उपदेश है। जसे कमरा मे मशाला न होने पर चित्र नही खिच

सकता है, वसे ही जिस साधक मे ब्रह्मचयरूपी मशाला नहीं है, उस साधक के हृदय में भी इष्टस्वरूप की अभिव्यक्ति नही हो सकती है। विचारवान पुरुषो के लिए तो यह बिन्दु प्राण के समान है।

"मरण बिन्दु पातेन जीवन बिन्दुधारणात ॥"

इस ब्रह्मचय रूप तप के करनेवालो को सदा शुद्ध सग करना चाहिए।

सङ्ग सत्सु विधीयताम्।

अन्तर मन से भी सदव आदश चरित्र का ही चि तन करना चाहिए। नाम स्मरण तो सम्पूर्ण अन्तरायो के नाश का अमोघ महौषधि है ही। बाह्य सग जैसे शृगारिक ग्र थ देखना, उत्तेजक दृश्यावलोकन करना, शारीरिक विलास सामग्री मे विशेष ध्यान देना तथा आहार-विहार का अनियमित एव उच्छृङ्खल होना यह सब जापक के लिए हानिकारक है।

इनका लक्ष्य क्या ?

इन सब साधनो का लक्ष्य, 'इष्टचरण अनुराग'।

तैल धारावत अविच्छिन्न श्री इष्ट नाम स्मरण।

श्री चैतन्य महाप्रभु के शब्दो मे अपने इष्ट से ऐसी प्राथना करनी चाहिए

नयन गलदश्रु धारया वदन गदगदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचीत वपु कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति ॥

हे नाथ ! वह समय कब आयेगा, जब मैं आपका नाम लेते-लेते गदगद हो जाऊँगा, शरीर रोमाञ्चित एव पुलकित हो जायेगा, नेत्रो से अश्रुधारा बह चलेगी। सर्वात्मना आपका ही

होकर, सर्व भावेन आपका शरणागत हो कर, मैं समस्त योग-क्षेम के भार से निश्चेष्ट हो आपका अभिन्न स्वरूप श्री मगल नाम का निरन्तर स्मरण करता रहूँगा।

विशेष नही तो नामसाधको को यही सूत्र हृदय मे धारण कर लेना चाहिए

"सोई ज्ञानी गुणवन्ता।
जा को रहे नाम की चिंता॥"

अन्तिम निवेदन

नाम के विषय मे जो कुछ कहा गया है, वह नितान्त स्वल्प एव लघु विवेचन है। नाम के विषय मे पूज्य ऋषिगण तथा सत-गण पर्याप्त लिख गये हैं। वतमान समय के भी सभी सत महा नुभाव इस महासाधन (नाम-साधन) की मुक्तकण्ठ से प्रशसा करते है। भगवान् तथा भगवन्नाम का तुलनात्मक वणन श्री गोस्वामी जी कुशलतापूर्वक सप्रमाण कर गये है। श्री वेदव्यास से लेकर आज के सतो तक यह नाम-साधन की परम्परा अबाध गति से चली आ रही है। सभी समय में नाम का प्रभाव सदा अक्षुण्ण है। मानव अन्त करण मे सतत चारों युग विद्यमान रहते हैं। मानस रामायण मे इसकी सुन्दर मीमासा है। पाठको के लाभार्थ यहाँ लिखा जाता है। वास्तव मे इनका ज्ञान अत्या-वश्यक है। यदि हम 'कलि केवल मलमूल मलीना' से त्रस्त हो गये हैं, कलि कुटिल जीवो के नाना प्रकार की कुचेष्टाओं से भयभीत हो गये हैं तो हम श्री नाम की कृपा से शातिदायक सत्ययुग का निर्माण अपने अन्त करण मे कर सकते हैं और तज्ज-नित सुख प्राप्त कर मानवजन्म सफल कर सकते है। बाधक और साधक दोनो का ज्ञान होना अत्यावश्यक है।

जग सराय मे ठग बहुतेरे बारहि बार ठगाता।
ठग ठाकुर का भेद न समझा व्यर्थहि जन्म गवाता॥

शास्त्रकारो ने सष्टि काल को चार श्रेणियो मे विभक्त कर दिया है। जिसे चार 'युग' कहते हैं। मानस (रामायण) मे चारो युगो का स्वरूप इस प्रकार है —

नित युग धर्म होहिं सब केरे। हृदय राम माया के प्रेरे॥
शुद्ध सत्व समता विज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥
सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब विधि सुख त्रेता कर धर्मा॥
बहुरज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरषमय मानस॥
तामस बहुत रजोगुण थोरा। कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा॥
बुध युग धर्म जानि मनमाहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥
काल धर्म व्यापहिं नहि ताहीं। रघुपति चरण प्रीति अति जाहीं॥
नट कृत विकट कपट खगराया। नट सेवकहिं न व्यापइ माया॥

हरि माया कृत दोष गुण, बिनु हरिभजन न जाहिं।
भजिय राम सब काम तजि, अस विचारि मनमाहिं॥

अर्थात भगवान् की माया की प्रेरणा से नित्य चारो युग प्राणियो मे बरतते रहते है। जब मनुष्य अपने अन्त करण में शुद्ध सत्व, समता, विज्ञान तथा मन प्रसाद का अनुभव करे तो उस समय अपने को सत्ययुग मे समझे। सत्वगुण अधिक हो, रजोगुण थोडा हो, अनेको कर्तव्य कर्मों के अतिरिक्त प्रमादपूर्ण कार्यों मे प्रीति हो तो त्रेतायुग समझना चाहिए। रजोगुण बहुत हो, सत्वगुण थोडा हो, तमोगुण कुछ हो तथा मन मे हर्ष और भय हो तो द्वापरयुग समझना चाहिए। जब तमोगुण बहुत हो, रजो गुण थोडा हो, चारो ओर विरोध हो तो कलियुग समझना चाहिए। ऐसा विद्वान् लोग युग धर्मों के वास्तविक स्वरूप को

जान कर सुखप्रद धर्म से प्रीति करते हैं और दु खप्रद अधर्म का त्याग कर देते हैं। परन्तु जो जीव श्री भगवान् के शरणापन्न हैं, उनके अंत करण में कालधर्म अर्थात युग युग के विचित्र विचित्र धर्म के स्वरूप आते ही नही हैं किन्तु उन्ही प्रपन्न जीवो को यह सौभाग्य प्राप्त है जिनके हृदय में श्री इष्ट एव नाम के प्रति अति प्रीति है। "अति प्रीति की परीक्षा ऐसे करो। अपने चित्त तराजू मे नित्य एक पलडे पर भगवान् की प्रीति रक्खो और दूसरे पर ससार की प्रीति रक्खो फिर ध्यान से देखो कि कौन सा पलडा भारी है! तुम्हे स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि इष्ट चरणो मे कितनी प्रीति है।"

हमे नित्य के जीवन मे एसा ही प्रयत्न करना चाहिए, जिससे हम इष्ट चरणो मे ही अधिकाधिक प्रीति कर सकें। श्रुति 'माँ' पुकार कर कहती हैं

"यद्वै भूमा तत्सुख नाल्पे सुखमस्ति।"

अरे! पूर्णत्व मे ही सुख है, नित्य मे ही सुख है, अनादि मे ही सुख है, अनन्त मे सुख है। जो स्वत अनित्य, सादि, सान्त तथा अपूर्ण है, उसके पास से तुम्हे क्या सुख मिलेगा? अब ग्रन्थकार उदाहरण से बतलाते है। जैसे चेटकी कलाकार की वह असत्य कला क्रीडा उसके निकटस्थ प्रीतिभाजन सेवक को भ्रान्त नही कर सकती है, उसी प्रकार श्री भगवान् की माया कृत जितने भी दोष तथा गुण हैं वे शरणागत जीवो को विमोहित नही कर सकते है। अतएव जब शरणागति 'माँ' मे इतनी अमोघ शक्ति है, तो उसी की शरण मे शीघ्र क्यो न चले? शरणागत का महान व्यापक नित्य शुद्ध स्वरूप है—'**अखड श्री इष्ट स्मरण**'। श्री काकभुशुण्डि जी कहते हैं उच्चकोटि के जापक का लक्षण बतलाते हैं। कैसे '**राम भजिय? सब काम तजि**। वास्तव

मे जब तक अन्य नाम, रूप, गुण आदि का स्मरण हृदय मे है तब तक इष्ट नाम-स्मरण सतत नही हो सकना है। सब नाम रूप हमारे इष्ट के ही हैं। यह दृढ भाव होना चाहिए नही तो प्रभु का आदेश पालन नही होगा। जो आदेश गीता मे है

"सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धच।"

एक साधारण हितैषी की आज्ञा नही मानते हैं तो हम कृतघ्न कहलाते हैं। यदि दयामय प्रभु का आदेश पालन मानव इसी जीवन मे पूर्णरूपेण न कर सका तो कितना महान दु ख एव ग्लानि का विषय है।

आज से ही नही, अभी से प्रारभ कर दो—इस सर्वदु खहारी —दयामय कलिपावनावतार श्री नाम भगवान् का मगलकारी नामस्मरण। नित्य नियमित जितना हो सके शुद्ध, चरित्रवान् एव सात्त्विक जीवन व्यतीत करते हुए विश्वासपूर्वक नामजप करो। कोई भी साधक हो, किसी भी साधना का अनुष्ठान करते हो। स्मरण रहे -श्री नाम महाराज सभी साधनो की आत्मा हैं। सभी साधनाए भिखारिन हैं। सभी साधनाए साधक को कृतार्थ करने मे असमर्थ है यदि उन साधनो मे इष्टनाम का स्थान उच्च नही है। सभी प्रकार के साधको का चिरवाञ्छित फल प्रदान करने वाला यह नाम—नाम ही है। सभी मनोरथो का दाता यह आशुतोष सदाशिव भोलानाथ महादेव 'नाम' हैं।

श्री मानस के बालकाण्ड मे नाम माहात्म्य वर्णन किया गया है। यथा —

राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार ॥
तुलसी भीतर बाहिरेहु जौं चाहसि उजियार ॥

नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपच बियोगी ॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा ॥

जाना चर्हाहि गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहि तेऊ॥
साधक नाम जपहि लयलाएँ। होहि सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥

जपहि नाम जनआरत भारी। मिटहि कुसंकट होहि सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिहु अनघ उदारा॥

चहूँ चतुर कहु नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं बिसेषि पियारा॥
चहुँ युग चहु श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेषि नहीं आनउपाऊ॥

इसका भावार्थ यह है—मुख से निरंतर इष्टनाम लेते रहो, उससे तुम्हे बाहर और भीतर अर्थात् इहलोक तथा परलोक दोनो सुखमय होगा। इसको साधारण साधन मत समझो। इस नामस्मरण रूप साधन की महिमा अपार है। योगी लोग भी उस नाम को ही जपते है जिससे उन्हे परमानन्द का अनुभव होता है। जिस सच्चिदानन्द का न तो कोई एक स्वरूप है और न कोई एक नाम है। जो परमात्मा को तत्त्वत जानना चाहते हैं, वे भी नामजप ही करते है और नाम की कृपा से वह दुर्विज्ञेय तत्त्व अनायास ही बोधगम्य हो जाता है। नश्वर प्रलोभन में पड़े साधक भी नामस्मरण करते हैं और अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त कर प्रसन्न होते है। महादुखी प्राणी भी जब सभी प्रकार से निराश हो 'एकमात्र अब मेरा अवलम्ब यही है' ऐसा समझकर श्रीनाम महाराज की शरण लेता है, तो उसका भी कष्ट दूर होता है। वह भी नाम की कृपा से कृतार्थ होता है। भक्त चार प्रकार के होते हैं। अर्थार्थी—धन की इच्छावाले, आर्त दुखी, जिज्ञासु—परमात्मा का ज्ञान पाने की इच्छावाले, ज्ञानी—सावधानता पूर्वक विचार कर—विवेक वैराग्य की दृष्टि से ब्रह्माण्ड का पूर्ण निरीक्षण कर स्वाभाविक प्रेम से भजन करने वाले। इन चारो मे केवल लक्ष्य का ही पार्थक्य है परन्तु चारो प्रकार के भक्तो की

साधन प्रणालिका एक ही है। चारो ही शुभ कम करने वाले निष्पाप तथा उदार हैं। नाम जापक के हृदय मे समस्त दवी सम्पत्तिया बलात् श्रा बठती हैं, हटाये नही हटती।

इस विषय मे एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। रावण जब सभी प्रयत्न कर विफल हो गया तो वह खि न चित्त हो कुभकण के पास गया और बोला, "भाई! मुझे बडा दु ख है। मनोरथ किसी भी प्रकार सिद्ध होते नही दीखता है। सीता मेरी ओर देखती ही नही।" कुभकण ने कहा—"यह कौन सी बडी बात है। तुम अनेको रूप बना सकते हो। राम का रूप बना लो, काम बन जायेगा।" रावण विषादयुक्त हो बोला, "प्यारे! ऐसा भी कर चुका, परन्तु राम का रूप तो अलग रहा, मुख से राम का उच्चारण करना तो अलग रहा, केवल राम नाम की भावना आते ही हमारा हृदय निष्पाप हो जाता है। दुष्ट वासना नष्ट हो जाती है।" अहा! जब असुर सम्राट आसुरी सम्पत्ति का सवश्रेष्ठ धनी रावण का अपार पापमय कलुषित हृदय भी इस पवित्र शिव-सकल्प मात्र से ही निष्पाप हो जाता है, तो मानव! अरे मानव!! तू तो आज अपनी सस्कृति का गव करने वाला है, तेरा सुसस्कृत हृदय इस नाम से उदार, निष्पाप तथा सत्कमशील क्यो न होगा? श्रद्धा तथा विश्वास से नामस्मरण करने वाले को नाम के अतुल प्रभाव से नामी का सायुज्य प्राप्त हो जाता है।

चारो चतुर को श्री नामजी बडे प्यारे हैं। गोस्वामी जी यहाँ भक्त न कहकर 'चतुर' कहते हैं। देखा जाय तो ससार वा साधन क्षेत्र मे ये भोले भक्त ही सच्चे चतुर है। ये तो तत्त्व माल का ही सचय कर रहे हैं। भक्तो को एक नाम का ही आधार होता है। उनमे शास्त्रज्ञान, विद्या, योग तथा अन्य कला विज्ञान आदि का अभाव होने पर भी नामानुराग उच्च कोटि का होता

है। वे तो विद्वानों को फटकार लगाते हैं। 'जन्म बीत गये पढ़ तहिं गीते' परन्तु दुःख है 'राम भजन से रह गये रीते'। अतएव ये चारों प्रकार के भक्त बड़े चतुर हैं। सब साधन के सार रूप 'नाम' को ही ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार की श्री नाम माहात्म्य के उपसंहार में कहते हैं कि सभी युगों में तथा श्रुतियों में श्री नाम का प्रभाव है। अर्थात् सभी समय में तथा सभी धर्माचार्यों के मत में इस **नाम** के महाव्यापक सामर्थ्य का वर्णन किया गया है परन्तु इस कलिकाल अर्थात आधुनिक काल में तो यह नाम साधन अद्वितीय ही है।

"कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा"

इस काल में नामावतार ही है। हिन्दू भक्तिशास्त्रानुसार श्री सच्चिदानन्द भगवान के चार श्री विग्रह हैं। वे हैं—'नाम, रूप, लीला और धाम'। एक समय भगवान् ने धाम से कहा—धाम! तुम विश्व में ही रहो। जो प्राणी तुम्हारे पास आयेंगे, उन्हें तुम सुख देना। धाम ने प्रभु का वियोग अस्वीकार कर दिया। लीला से भगवान ने कहा—लीला! तुम विश्व में रहो। अपनी आनन्दमयी लीला से प्राणी को कृतार्थ करो। लीला ने भी विनीत शब्दों में यह आज्ञा मानने से अस्वीकृति प्रकट की। रूप से कहा गया—तुम अपने दिव्य आनन्द दायक दर्शन देकर सबको सुखी करो। रूप ने कहा—प्रभो! आपके बिना मेरा अस्तित्व ही क्या? मैं आपका त्याग कर नहीं रह सकता। अंत में प्रभु ने नाम से कहा। करुणाकन्द भगवान के अभिन्न करुणामय नाम ने स्वीकार किया। परमोदार हृदय नाम भगवान ने कहा—प्रभो! मैं सर्वोपाय शून्य जीवों के हितार्थ संसार में रहूँगा, परन्तु एक प्रतिज्ञा आप भी कीजिए। शीलनिधान परमकृतज्ञ भगवान ने प्रसन्न होकर कहा, "प्रिय! कहो, जो कहोगे वही करूँगा।"

"ये यथा मा प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

'जो मुझसे जैसा प्रेम करता है मैं भी उससे वैसा ही प्रेम करता हूँ। तुम ने मेरा आदेश पालन किया है।" श्री नाम भगवान् ने कहा—"प्रभो! जो प्राणी मेरा आश्रय लेगा, उसका समस्त योग क्षेम का भार आपको अपने ऊपर लेना पड़ेगा।" श्री भगवान प्रसन्न हो बोले—"तथास्तु।' यह ध्रुव सत्य है कि जहाँ श्री नाम हैं, वहा ही श्री भगवान हैं। तभी तो,

"जीवनमुक्त महर्षिगण सब सिद्धियो तथा अन्यान्य ऐश्वर्यों की उपेक्षा कर परमोत्कृष्ट रसनिधि नाम रस मे ही अपना मन मीन बनाए रहते हैं।'

नाम के महान यश का वर्णन वेद भी करते हैं।

"यस्य नाम महद्यश।"

ॐ श्री सदगुरवे नम

नाम सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

प्र नाम साधन ही क्यो ?

उ सभी साधनाओ का लक्ष्य है—सच्चिदान द का साक्षात्कार और उसका स्वरूप है—पराशान्ति की अखण्डानुभूति। गीता मे भगवान् श्री कृष्ण अपने प्रिय प्रप न शिष्य को उपदेश अन्त मे यही देते हैं—

तमेव शरण गच्छ सवभावेन भारत।
तत्प्रसादात पराशांति स्थान प्राप्स्यसिशाश्वतम ।।

हे भारत! सब प्रकार से उसी* की ही अन य शरण को प्राप्त हो, उसकी कृपा से ही पराशान्ति को और सनातन परम धाम को प्राप्त होगा।

इससे यही सिद्ध हुआ कि एकमात्र उसकी कृपा से ही जीव को अन तान त ज मो का चिरप्रत्याशित पूर्णत्व की प्राप्ति होगी। कृपा से ही कोटि कोटि साधनो का अभिवाञ्छित साध्य का साक्षात्कार होगा। पर तु वह कृपा प्राप्त होगी, सव भावेन शरणागत होने पर ही। क्योकि कृपा अनपायिनी है। शरणागति के अतिरिक्त कोई साधन नही है, जिससे हम कृपा प्राप्त कर सकें। सभी साधको ने अपने इष्ट से यही याचना की है कि

*श्री पुरुषोत्तम भगवान् वा श्री सदगुरुदेव की शरणागति। श्रुति मे स्पष्ट लिखा है, जिसको गुरु तथा इष्ट मे अभेद बुद्धि है, उसी के हृदय मे सच्चिदान द दायिनी ब्रह्मविद्या प्रकट होती है! "यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ!"—श्वेता०

सतत् हम पर कृपा बनी रहे। अत साधक का सवस्व कृपा ही है।

ससार से मुक्त होना तुम्हारी प्रस नता पर—कृपा पर ही निभर है। यह साधन साध्य नही है। यह तो निश्चय केवल कृपा साध्य ही है।

"मोक्षमूल गुरोकृ पा"

*

"ब"ध मोक्षप्रद सव पर माया प्रेरक शिव।"

*

"त्व व प्रस"ना भुवि मुक्ति हेतु।"

*

मामेव ये प्रपद्य"ते मायामेता तर"ति ते।

जिस श्लोक को गीता का हृदय कहा जाता है, उसमें यही महामन्त्र है —

सव धर्मान परित्यज्य मामेक शरण व्रज।
अह त्वा सव पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

अर्थात सब धर्मों का त्याग कर तू एक मेरी ही शरण मे आ जा। चि"ता मत कर, मैं तुझे सब पापो से मुक्त कर दूँगा। मुक्ति दाता वही हैं।

प्रथम विचार करो। शरणागति का और अ"य साधनाओ का क्या सम्ब"ध है ? अन्य जितने भी साधन हैं, उन सबका फल है, ऐहिक वा पारलौकिक—स्वर्गादि का सुख सम्पादन। यदि वह कम निष्काम भाव से किया गया हो तो उसका फल होगा, चित्त शुद्धि। जैसे गीता में लिखा है—

"बहवो ज्ञानातपसा पूता।"

बहुत से पुरुष ज्ञानरूप तप से पवित्र हुए।

जिस योगशास्त्र मे श्री योगेश्वर भगवान ने योग की सर्वोपरि महिमा कही है, वहा भी याग-साधन कृपा प्राप्ति के निमित्त ही है। श्री भगवान आज्ञा करते है —

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावा भजते यो मां स मे युक्ततमो मत ॥

सम्पूण योगियो मे वही श्रेष्ठ है जो श्रद्धापूवक मेरा भजन करता है। श्रद्धा तथा विश्वास सहित भजन—योग का श्रेष्ठत्व इसी लिए है कि इस भजन से ही भगवान की कृपा रूपी बुद्धि प्राप्त होती है। आय मनीषियो ने कृपा और बुद्धि को एक ही कहा है —

"या देवी सवभूतेषु दयारूपेण सस्थिता।"
"या देवी सवभूतेषु बुद्धिरूपेण सस्थिता॥"

सर्वाधिक श्रेष्ठ साधन बुद्धियोग—ज्ञानयोग के दाता दयामय प्रभु ज्ञान की प्रशसा मे और आगे कहते हैं —

"अपि चेदसि पापेभ्य सर्वेभ्य पापकृत्तम।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिन सतरिष्यसि॥"

यदि तू सब पापियो से भी अधिक पाप करनेवाला है, तो भी ज्ञानरूप नौका द्वारा नि सदेह सभी पापो से अच्छी तरह तर जायेगा। आगे उदाहरण द्वारा बतलाते हैं —

"यथधासि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्नि सवकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

क्योकि, "हे अजुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि इन्धन को भस्ममय कर देता है वसे ही ज्ञान रूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्मसात् कर देता है।" कम चाहे कितना भी पवित्र हो तथापि कुछ न

कुछ दोष रहता ही है उस दोष-माजन का सर्वोत्तम उपाय है—ज्ञान। भगवान स्वय श्रीमुख से आज्ञा करते हैं —

"न हि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते ।"

इस ससार मे ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला वास्तव मे अन्य साधन कुछ नही है। यह भगवदोक्त साधन सभी साधनो का मुकुटमणि है।

अब शरणागति ही नही प्रत्युत श्री शरण्य तथा नाम साधन का विचार करो। इस नाम साधन का फल पापनाश तक ही सीमित नही है। यदि नाम साधक दुराचारी वा पापी भी है तो शीघ्र ही वह धर्मात्मा बन जायगा। 'क्षिप्र भवति धर्मात्मा।' वह तो पाप को विस्मृत कर नामस्मरण को हृदय मे धारण कर चुका। जैसे मरा हुआ सप भी कुछ काल तक जीवित सा प्रतीत होता है तथा पूव सस्कार के कारण भय भी होता है, वैसे ही नाम साधक के सहृदय से पापरूप सप तो मर ही गया है, केवल बाह्य आभास मात्र ही दीखता है। पापाचार से तीव्र अरुचि का ही यह सुपरिणाम है कि वह नामनिष्ठ हुआ। यदि कोई नामाश्रय लेकर भी पाप कर्मो मे लिप्त है तो वह एक और महान पाप का भागी है। ऐसे अपवित्र एव पापयुक्त चित्त मे नाम स्मरण का सकल्प ही नही आ सकता है।

"येषा त्वन्तगत पाप जनाना पुण्यकमणाम ।
ते द्वन्द्वमोहनिमु क्ता भजन्ते मां दढव्रता ।।"

फलेच्छा रहित हो श्रेष्ठ कर्मों के आचरण करनेवाले जिन पुरुषो का पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषादि द्व द्वरूप मोह से मुक्त हुए और दृढ निश्चयावले पुरुष मेरे को सब प्रकार से भजते हैं। अत 'नाम' शीघ्र नामी से सम्बन्ध करा देता है। श्रद्धायुक्त

तथा गुरुप्रदत्त नाम साधन नामी का ही साक्षात्स्वरूप चि तन है। नामस्मरण नामी का ही चारु दशन है। नामानुराग ही वास्तव मे अणु अणु व्यापक प्रभु का प्रेम है। तैलधारावत अविच्छिन्न नामस्मृनि ही उपनिषद प्रतिपाद्य 'आत्मरति है। नाम ग्रहण करते ही ससार भाग जाता है। विश्व, तजस तथा प्राज्ञ त्रिविध सृष्टि नामाकार ही दृष्टिगोचर होने लगती है। पूण नाम निष्ठा होते ही शिवत्व का प्रादुर्भाव होने लगता है और जीवत्व का तिरोभाव होना प्रारम्भ हो जाता है। जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार का पता नही लगता है। मानो सूय के प्रकाश से अन्धकार ही प्रकाशमय हो गया है। वैसे ही नाम के प्राकटय होते ही अरमणीय, क्षणभगुर तथा दु खदायी ससार सम्पूण रूप से मङ्गलमय हो जाता है।

जसे किसी के घर मे चोर चोरी कर रहा हो, उसी समय चोर को गृहस्वामी का पूरा शरीर नहीं—एक पाँव ही दीख जाय तो वह चोर यह समझकर कि घर का मालिक आ गया, वह तुरन्त भाग जायेगा। वसे ही नाम भी भगवान् का स्वरूप है। हृदय मे आते ही समस्त दुर्गुण, मलविक्षेप आवरणादि अन्तराय तथा अविद्याजन्य मोहादि षडरिपु स्वत ही विनष्ट हो जाते हैं। यह केवल युक्तिवाद वा अथवाद मत समझो। यह तो विराट शब्दब्रह्म का अति सक्षिप्त दिग्दर्शन है। शिव, ब्रह्मा तथा शेष भी पूण नाम महिमा नही कह सकते है।

"सुवण विप्रा कवयो वचोभिरेक सन्त बहुधाकल्पयन्ति।" (ऋ०वे०)

बुद्धिमान् लोग उस एक पराशक्ति (सत्ता, परमात्मा) को नाना शब्दो मे वणन करते हैं।

छान्दोग्योपनिषद के भाष्य मे परमपूज्य श्री शकराचार्य जी महाराज लिखते हैं —

"तस्मिन हि प्रयुज्यमाने से प्रसीदति प्रियनामग्रहण इव लोक ।"

अर्थात इस नाम के लेने से वे (परमात्मा) उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं जसे प्रिय नाम लेने से लोग प्रस न होते है ।

प्र कौन सा नाम जप करना चाहिए ?

उ अपने गुरु का दिया हुआ नाम ही उत्तम है ।

प्र बिना गुरु नाम साधन नही हो सकता है ?

उ नही होगा । श्री गुरुप्रदत्त नाम साधन एव स्मरण से पूर्वाचार्यों की कृपा शीघ्र प्राप्त होती है । साधक का आ तरिक दोष (विक्षे प आवरणादिक) गुरुसग से ही नष्ट होगे । मनुष्य के जितने सद्गुण तथा अवगुण है । वे सब मन के अह कार का आश्रय लेकर ही रहते हैं, जैसे एक बालक, अपने नौकर के साथ मे ऊधम मचाता है । मना करने पर भी उद्दण्डता नही छोडता है परन्तु उस समय जब उसका अध्यापक सामने आता है तो शीघ्र ही वह बालक शा त हो जाता है । इससे सिद्ध होता है कि उद्दण्डता उसकी प्राकृतिक—सहज स्वभाव नही है । अहकार के कारण से ही ऐसा व्यवहार, वह बालक करता है । नौकर के सामने वह अपने को स्वत त्र समझता है । अध्यापक के सामने वह परतन्त्र है । नौकर के सामने की उच्छृङ्खल व्यवहारवृत्ति अपने अध्यापक के सामने अनुशासित शिष्टाचार बन जाती है । वसे ही गुरुहीन साधक का मन उद्दण्ड बालक सा ही स्वेच्छापूण व्यवहार करेगा । फिर आदशहीन जीवन मे प्रगति कसे हो सकती है ?

प्र बहुत से नामजापक वा अ या य साधको मे भी श्री गुरु प्राप्ति की तीव्र इच्छा क्यो नहीं होती है ?

उ जसे पेट साफ न होने के कारण भोजन मे रुचि नही

होती है, वसे ही दु सस्कार रूप मलग्रसित चित्त होने के कारण विशुद्ध साधन निष्ठा उत्पन्न नही होती है । यदि वास्तव मे साधन के प्रति आकषरण जीव को हो तो वह बिना गुरुप्रदत्त साधन प्राप्त किये विश्राम ही नही ले सकता है ।

प्र तो क्या बिना गुरु के कोई साधन सफल नही हो सकता है ?

उ कदापि नहीं । चाहे जीव स्वप्रयास से कितना भी कम कर ले, वह सब कम केवल वाणी विलास मात्र ही है । हा ! बहुत होगा तो क्षणिक मानसिक स तोष मिल सकता है । एक सत ने कहा है—

"बिनु सदगुरु कोउ भेव न पावा । धरती से आकास लौं धावा ।।

अर्थात् बिना सदगुरु शरणागति के कठिन से कठिन यत्न करने पर भी उस अगम (केवल गुरु कृपा गम्य) का रहस्य कोई नही पा सकता है । भगवान श कर कहते हैं —

'गुरोपदेशातज्ञेय न ज्ञेय ग्र थ कोटिभि ।

करोडो ग्र थो से वह वस्तु बोध गम्य नही होगी, एक मात्र श्रीगुरु के उपदेश से ही होगी ।

प्र शास्त्रो मे बहुत से साधनो का उल्लेख है । वे भी तो पूर्वाचार्यों तथा सिद्ध सदगुरुओ द्वारा ही लिखे गये है । अनुमान से भी वे साधन सुखकर ही प्रतीत होते है ।

उ सत्य है । बहुत सम्भव है कि उन साधन सम्ब धी मीमासा मे त्रुटि न हो पर तु वे शास्त्रोक्त साधन तारक नही हो सकते । जसे विचार करो, मुझे गगा पार करनी है । घाट पर बहुत सु दर नौका रक्खी है । परन्तु वहाँ केवट नही है । उस समय मैं क्या कर सकता हु । नौका खेने के ज्ञान से अनभिज्ञ, पतवार (वल्ली) से विहीन तथा नदी की भीषणता से भयभीत

निबल, यदि चेष्टा भी करें पार जाने की तो यह मूखतापूरा तथा आपत्तिपूण प्रयास ही होगा । इसी प्रकार साधन नौका है। भयानक सागर पार करना है। यदि अध्यात्मज्ञान-सम्पन्न, ब्रह्मनिष्ठना की वल्ली से सुशोभित तथा वैराग्य एव चारित्र्यबल से निभय श्री सदगुरुरूप केवट नही मिलेंगे तो पार जाना सवथा असम्भव है ।

प्र श्री गुरु का महत्त्व समझा परन्तु आज अधिकाश दम्भी पुरुष ही मिलते है। लोकोक्ति भी है—'गुरु कीजिए जान, पानी पीजिए छान।'

उ मनुष्य को अपना ही निरीक्षण करना चाहिए। जब तुम्हारे हृदय मे पात्रता आयगी तब सम्पूर्ण पदाथ —विश्व का प्रत्येक अणु तुम्हारी दृष्टि मे गुरुरूप ही दीखेगा। सामान्य जीव की तो बात ही क्या ? भगवान् श्री दत्तात्रेय महाराज का चरित्र पढो। उन्होने चौबीस गुरु बनाए थे जो साधारण जीवो की दृष्टि मे बहुत नगण्य थे। हृदयस्थित अहकार के कारण ही ऐसा भाव आता है।

प्र श्री गुरु सम्बन्ध होने पर भी बहुत से साधको मे विशेष प्रगति (आध्यात्मिक उन्नति) नही देखी जाती है। इसका क्या कारण है ?

उ केवल सम्बन्ध मात्र से ही काम नही चलेगा। सम्बन्ध जोडना बहुत सरल है परन्तु उसका निभाना कठिन है। एक सत का क्या सुन्दर उदगार है—' निगुरा कौन ? जिसे गुरु वाक्य से विश्वास नही ।" भगवान ने शिष्य के तीन लक्षण बतलाये हैं। प्रणिपात—शरणागत होना, परिप्रश्न —निष्कपट हृदय से नम्रतापूवक अध्यात्म सम्बन्धी प्रश्न करना तथा तन, मन, धन

से कतव्य बुद्धि समझकर यथाशक्ति सेवा करना। परन्तु आज अधिकाश शिष्यो मे इन बातो का अभाव देखा जाता है।

प्र सद्गुरु का क्या लक्षण है?

उ विद्यार्थी अध्यापक की कसे परीक्षा कर सकता है? गीता मे जो दैवी सम्पत्ति का वणन है, जसे—अभय, हृदय की पवित्रता, तत्त्वज्ञान, योगाभ्यास मे निरन्तर दृढ स्थिति, दान, दम (इन्द्रियो को दुष्कर्मों से रोकना), यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परनिन्दा से दूर रहना, दया, अनासक्ति, कोमलता, लोक विरुद्ध कर्मों में लज्जा, स्थिरता, क्षमा, धैय तथा अमानित्वादि शुभ गुण। स्थितप्रज्ञ का जो लक्षण है, सत ग्रथो मे जो सत-स्वभाव कहा गया है, ये सब गुण जनमे हो उन्ही को 'गुरु' बनाना चाहिए। सर्वोत्तम लक्षण यही हैं कि जिसके सग से भजन में रुचि हो।

प्र कृपा कर अब श्री गुरुप्राप्ति का कोई सहज साधन बताइए।

उ वेद मे लिखा हैं—"व्रतेन् दीक्षा माप्नोति।" शीघ्रातिशीघ्र कोई व्रत लो। अर्थात कोई नियम तत्परतापूवक पालो। सबसे सुखद और श्रेयस्कर नियम है **नामस्मरण**। जिस नाम के प्रति हृदय मे स्वाभाविक आकषण हो उस नाम का यथासाध्य नियमपूवक स्मरण करो। आहार, व्यवहार, सग, जीविका एव अन्यान्य जीवनोपयोगी कर्मों मे पवित्रता का पूण ध्यान रक्खो। साथ ही नामी से प्राथना करो। तुम्हे अवश्य सद्गुरु की प्राप्ति होगी। श्री सदगुरु की प्राप्ति ही परमपुरुषाथ की सिद्धि है। कृपा की तो वे साक्षात मूर्ति ही हैं। वे कल्याणकारी ज्ञानरूपगोविन्द—निखिल अमङ्गलो का सहारक आशुतोष

शदाशिव जीवोद्धार के निमित्त ही विश्व मे विचरण करते हैं। सवसाधन हीन साधक के नमस्कार से ही वे प्रसन्न होते हैं। अत ऐसे दयामय देव को नित्य 'गुरु' भाव से व दना करनी चाहिए।

"व दे बोधमय नित्य गुरु शकररूपिणम।"

*

साधनाओ का समुज्ज्वल स्वत्व उसे बिना प्रयास ही प्राप्त हो गया। उसकी सम्पूण अतृप्त आकाक्षाएँ अनायास ही नष्ट हो गयी, पुष्टि और तुष्टि तो उसके जीवन की अभिन्न सहचरी बन गयी। अहा! वह प्रेमी है, वह विश्व से प्रेम करता है अथवा यो कहो कि प्रेम ही उसका जीवन है, प्रेम ही प्राण है। वह प्रम मना होकर विश्व के प्रत्येक प्राणी से प्रेम करता है। क्यो नही, जिसने सत्य, सरलता तथा प्रेम के निमल प्रवाह मे अपना जीवन स्रोत मिला दिया है, सत्य सरलता प्रेम की पावन त्रिताप नाशिनी त्रिवेणी मे गोता लगा लिया है, वह त्रिगुणो को पार कर मानव जन्म सफल कर चुका।

श्री सद्गुरु शरण

अब चल रे मन श्रीसदगुरु शरण।
आँख खोल विचार कर रे कैसा दयामय,
सब दुःख तरण, सब सुख करण॥
देर न कर अबेर हुआ है उर धर श्रीगुरु दोउ चरण।
नाहि तो सहना है महा अति दुःख जरा मरण॥

नाम जप सुषमा

भाव उदार निर्विकार चित्त हो।
इष्टचरण अनुराग रंग हो॥१॥
रति नाम हृदय चिरसुस्थिर हो।
जप मे रति ही जप में मति हो॥२॥
श्रीनाम ममानन प्रतिपल हो।
श्रीरूप का दर्शन प्रतिक्षण हो॥३॥
स्मृति श्रीविग्रह की ही रहे।
श्री विग्रह त्यागि न अन्य गहे॥४॥
रुचि हो नित ही प्रभु पावन की।
शुचि साधन की शुभ साधन की॥५॥
आकाश महा ही स्वच्छ अहा।
अहा देख ये सागर कैसा महा॥६॥
यह शृंग सुशोभित शैल खड़ा।
मनुजात यहाँ है कौन बड़ा॥७॥

महि की महिमा कहो कौन कहै।
पृथ्वीमाता सब विश्व कहै ॥८॥
जलशुद्ध निरतर द्रवमय है।
सब शुद्ध करै और रसमय है ॥९॥
यह वह्नि महा उपकारक है।
मानो सृष्टि का सचालक है ॥१०॥
पवन प्राण की कौन प्रशसा।
जेहि बिन रहै न सुदर हसा ॥११॥
यह सुदर काया कलापूर्ण है।
रग रूप और भाव भिन्न है ॥१२॥
चित्त सदा चितन मे रत है।
मन मे मनन रहत अनुदिन है ॥१३॥
बुद्धि विसूरति है निशवासर।
अहकार शिव स्वय परात्पर ॥१४॥
ससार सुखी धन धान्य से हो।
सब जीव सुखी आरोग्य से हो ॥१५॥
सब दृश्य सदा मगलमय हो।
सब पुण्य करें आनन्दमय हो ॥१६॥
ॐ शिव ॐ शिव ॐ शिव कहता।
कर्म करो शुभ सुमिरन करता ॥१७॥



श्री " चरणाश्रित
पू श्री १०८ महेद्र महाराज



श्री श्री १००८ हैडाखानवाले बाबा

ॐ

द्वितीय पुष्प—पुण्यस्मृति

सपादक

'गुरुचरणाश्रित'

श्री सद्गुरु कृपा से यह वर पाऊँ।
चित्र चरित्र चितन में मन लाऊँ॥

ॐ श्री सद्गुरवे नम ॐ

त्वमेकं शरण्य त्वमेक वरेण्य
त्वमेक जगत्कारण विश्वरूपम् ।
त्वमेक जगत्कर्त्त पातृप्रहर्त्त
त्वमेक पर निश्चल निर्विकल्पम ।।

* *

परेश प्रभो सवरूपाप्रकाशिन
अनिर्द्देश्य सर्व्वेन्द्रियागम्य सत्य ।
अचिन्त्याक्षर व्यापकाव्यक्ततत्त्व
जगद्भासकाधीश पायावपायात ।।

* *

तदेक स्मरामस्तदेक जपाम
तदेक जगत्साक्षिरूप नमाम ।
सदेक निधान निरालम्बमीश
भवाम्भोधिपोत शरण्य व्रजाम ।।

द्वारा अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त कर ही इस मृत्यु को जो सभी दु खो की पराकाष्ठा है, अ न किया जा सकता है। अन्य कोई माग नही है।

पाठको ! 'माँ' श्रुति के इन दिव्य, स्वय सिद्ध एव परमोपयोगी दयापूर्ण उदगारो पर समाहित चित्त से विचार करना चाहिए। इ ही सदविचारो तथा सदुपदेशों से हमारा सम्पूर्ण आष ग्र थ भरा है। कही कही पर नो स्पष्ट आज्ञा की गई है। जैसे —

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्य
श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य" छान्दो०

अरे ! आत्मा ही को देखो, आत्मा ही को सुनो और आत्मा ही का मनन करो और आत्मा का ही ध्यान करो अन्यत्र भी—

"आत्मानं सततं विद्धि"

आत्मा को सदव समझो।

आत्मा ब्रह्म तथा भगवान, ये परस्पर अभिन्न है। तार्किक वेदान्तियो का ब्रह्म और भावुक भक्तो का भगवान् दो नही हैं। साधन कालीन धारणा मे ही भिन्नता है।

अस्तु ! जब हमे यह ज्ञान हो गया कि इस अविनाशी तत्त्व के बिना हमारा कल्याण नहीं हो सकता है, तो स्वभावत ही हृदय मे यह प्रश्न उठना है कि वह वस्तु कहाँ है ? आइये, कही दूर नही जाना है। उसी श्रुति 'माँ' की गोद मे बैठ कर सुनिये —

"स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणि श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्"

अर्थात् अनेको प्रकार के साधन सत्कर्म समाप्त कर भी जब चित्त में शान्ति नही आई, तब उस परमशान्ति स्वरूपा आत्मा को जानने की इच्छा से "तद्विज्ञानार्थं" वह साधक साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर, विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुत्व तथा षट्सम्पत्ति (विवेक, वैराग्य, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान) का सम्यक अनुष्ठान

कर, दैवी सम्पत्तिरूप समिधा हाथ मे ले श्रोत्रिय एव ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास गया। अहा! कैसा सुलभ साधन प्राप्त हुआ। बस जीव का यही परमपुरुषाथ है कि वह श्रद्धापूवक किसी सद्गुरु की शरण पकड ले। श्रद्धा ही समस्त सदगुणो की जननी है। श्रद्धा माता की उपस्थिति मे सारी दवी सम्पत्तियाँ किंकरोवत् करबद्ध खडी रहती हैं। दुर्भाग्यवश जिस साधक म ऐसी समुत्कण्ठा, सद्गुरु शरण की अहर्निश व्यग्रता, श्री कृष्ण के शब्दो मे प्रणिपात, परिप्रश्न एव सेवा की तीव्रतम भावना जाग्रत नहीं होती, तब तक वह साधक अपने को साधक ही नही समझे। अभीष्ट पदाथ की सप्राप्ति-रूपा सिद्धि तो बहुत दूर है। बिना सद्गुरु कृपा के त्रिगुणमयी सृष्टि के दुगम प्रवाह से कोई पार नही जा सकता है।

"बिनु गुरु भव निधि तरै न कोई।
जौं बिरचि शकर सम होई॥"

विश्वप्रसिद्ध महाग्रथ मे श्री जगद्गुरु ने कहा है

"उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञान ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन"

वास्तव मे श्रेय हो वा प्रेय, सभी की प्राप्ति ज्ञान से ही सुलभ है। ओहो! जिन श्री चरणो की अकारण कृपा से इस देव दुलभ पदाथ की प्राप्ति होती है, उन पूज्य चरणो मे मूक प्रणति के अतिरिक्त हम दीन मानव क्या अर्पण कर सकते हैं! श्रुतियों के स्वरो मे ही इन दुबल स्वरो को मिला कर आदिनाथ श्रीगुरु की चरण वन्दना करता हूँ।

नम परम ऋषिभ्यो। नम परम ऋषिभ्य॥

सक्षिप्त परिचय

श्री दक्षिणामूर्ति स्तोत्र मे लिखा है । सदगुरु की मौन व्याख्या से ही शिष्य का सशय नष्ट हो जाता है। ऐसे ही एक लोक-प्रसिद्ध सन्त का अत्यन्त सक्षिप्त परिचय यहा दिया जाता है। सर्व प्रथम आपका दर्शन भक्तो को हिमालय प्रदेशान्तर्गत कुमाऊँ (उत्तर प्रदेश) मे हैडाखान नामक स्थान मे हुए। इसीसे सर्वश्री समलकृत श्री मुनीन्द्रजी श्री हैडाखान वाले बाबा के नाम से ही अल्मोडा नैनीताल आदि जिले मे प्रसिद्ध है। यद्यपि आपका नाम, जन्मस्थान तथा अन्य सासारिक बातो के विषय मे किसी को निश्चित रूप से पता नही चला तथापि आपकी केवल बाह्य स्थिति को देख कर ही सर्व साधारण को भी यह प्रतीत हुए बिना नही रहता कि आप आदर्श धर्माचार्य सर्वसिद्ध सम्पन्न योगी राज, वैदिक कर्मकाण्ड—यज्ञादि के महान प्रचारक एव शास्त्र प्रतिपाद्य रागानुराग पराभक्ति के साकार विग्रह थे। आपके किसी प्रकार की चेष्टा किये बिना ही केवल मूक उपस्थिति मात्र से जनता मे विशुद्ध कल्याणात्मक भावो का निर्बाध सचार होता रहता था। अद्यावधि ऐसे सहस्रो जीव विद्यमान हैं, जिन्होने इस सत्य का स्वानुभव किया है।

थोडे से समय मे ही अनेको देव मन्दिरो की प्रतिष्ठा हुई। अनेको यज्ञ हुए। श्री महाराजजी जहाँ जाते वही इस निर्जन एव विकट भयानक स्थानो मे भी असख्य नर नारियो की भीड एकत्र हो जाती थी। जिनमे बडे बडे सम्भ्रान्त परिवार के स्त्री पुरुष रहते थे। आबाल वृद्ध, वनिता सभी श्रीमहाराज के भक्त थे। उच्च कोटि के विद्वान, प्रतिष्ठित राज्यकर्मचारी एव सर्वसाधारण ग्रामीण सभी जीव उस वीतरागी महापुरुष के चरणाश्रित हो अपना प्रेय वा श्रेय का यथेष्ट साधन मार्ग प्राप्त करते थे।

माधन प्राप्त साधको को दिव्य आत्माह्लाददायिनी प्रेरणा मिलती थी। जिससे वे विघ्नो बाधाओ को पार कर ध्येय के सन्निकट पहुँच जाते थे। अपने अभीष्ट प्राप्ति मे उन्हे अनुपम तथा अमोघ बल का अनुभव होता था।

जो पूर्णरूपेण भगवान के हैं। श्री भगवान् ही जिनके एक मात्र आश्रय हैं। वे भगवद्रूप सत क्या नही कर सकते हैं ?—श्री भागवत मे लिखा है —

"विलुठति चरणाग्रे मोक्ष साम्राज्य सिद्धि"

प्रसग वर्णन

श्री मुनीन्द्रजी महाराज एक महान् सिद्ध सद्गुरु थे। आपके पावन प्राकट्य से असख्य जीव कृतार्थ हुए। उनके भक्तो द्वारा बहुत सी अलौकिक बातें सुनी जाती है। दास ने भी उन्ही श्री चरणो की कृपा से उनकी असीम योग्य शक्ति का दिग्दर्शन किया है।

परन्तु यहा पर सक्षिप्त रूप से कुछ जीवन प्रसङ्ग का उल्लेख किया जाता है। श्री सद्गुरुदेवजी की त्रिताप सतप्त जीवो के कल्याणार्थ अहैतु की करुणा सुधा वृष्टि अविछिन्न सतत तथा अविराम है। अनन्त रूप से अनन्त जीवो का उद्धार कार्य हो रहे है।

अभी थोड़े ही दिनो की यह सर्व विदित सत्य घटना है। यद्यपि श्री महाराजजी तीस वर्षों से अन्तर्धान हैं तथापि कृपा करके भक्तो एव श्रद्धालु साधको को दर्शन देते ही रहते है।

ये एक सुयोग्य युरोपिन सज्जन थे। इनका नाम है श्री नीलस ओलफक्रिसण्डर। ये स्वीडन देश के विश्वप्रसिद्ध अभिनेता, जर्मनी की सुप्रसिद्ध युनिवर्सल फिल्म कम्पनी के अधिष्ठाता, दानवीर तथा

दार्शनिक थे। ये ज मसिद्ध थे तथा इनकी आध्यात्मिक गति बढी चढी थी। अमेरिका मे जहा ये कुछ वर्षों से निवास करते थे, इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। इनके वचन सिद्ध वचन माने जाते थे। ये निरामिष भोजन करते थे। ६७ ६८ वष की अवस्था थी। इनको रूस की राजधानी मास्को मे रात के समय शयनागार में श्रीम मुनीन्द्र हैडाखान वाले बाबा के दशन हुए। उसी रात को उसी समय मे श्री महाराजजी ने इनकी धमपत्नी को भी दशन दिये। उस समय इनकी धमपत्नी लेनिनग्राड मे थी। जब दूसरे दिन दोनो स्त्रीपुरुष मिले तो दोनो का स्वानुभव एक ही था। योगी के दशनार्थ वृत्तियाँ मचलने लगी। विशुद्ध हृदय की एक मात्र यही पहिचान है कि भगवान की भ्रार लगे। श्री भगवान "पावन पावनाना हैं। अतएव पवित्र हृदय परम पवित्र भगवान को प्राप्त किये बिना विश्राम ही नही ले सकता है। क्षुधा की निवृत्ति भोजन करने से ही होगी। इसी नियमानुसार उपरोक्त स्वीडीश महोदय भी भारत आये।

पाण्डीचेरी श्री अरविन्दाश्रम मे भी कुछ समय रहे। अरुणाचल श्रीरमणाश्रम मे भी कुछ काल व्यतीत किया परन्तु उन्हे इस प्रवास मे यथेष्ट सन्तोष नही मिला। अज्ञात प्रेरणा से वे अल्मोडा आये और कसार देवी नामक निजन स्थान मे लगभग दो वष रहे। यहाँ पर उन्हे श्रीसदगुरुदेवजी के दशन कई बार हुए। जिनके दर्शन उन्हे मास्को मे हुए थे। अपने जन्मज मान्तार के सद्गुरु को प्राप्त कर धन्य धन्य हो गये। उन्होने सुन्दर कलात्मक मसाले की मूर्ति बनाई है। इस घटना के स्मृतिरूप वह मधुर एव आकषक मूर्ति आज भी अल्मोडा मे एक प्रतिष्ठित घर मे सुरक्षित रक्खी है। २६ अप्रैल सन् १६४६ मे वे युरोपीय महानुभाव अल्मोड़ा से चले गये।

ऐसी घटनाएँ अब तक श्री महाराज की दया से कितनी हुई

ओर हो रही है। इसका ज्ञान सब को नही है। जसे प्रभु अन त है वसे ही उनका चरित्र भी अनन्त तथा अलौकिक है। जब श्रीसदगुरुदेवजी महाराज इस प्रदेश मे सवसाधारण के भी दृगोचर थे, उस समय मे भी उच्चकोटि के साधक ही नही वरन सिद्ध स तगण भी आपकी दिव्य लीला तथा पूव वर्णित शास्त्र सिद्धा त के प्रतीक स्वरूप महारहस्यमय जीवन प्रसङ्ग पर पूण प्रकाश न डाल सके।

पर तु मन का स्वभाव है, जिससे वह प्रेम करता है वा जिसके प्रति उसके हृदय मे आकषरग है उसके विषय मे कुछ न कुछ जानने की चेष्टा करता ही है। परमवीतरागी प्रच्छ न महर्षियो का जो जीवनवृत्त आज विश्व मे उपलब्ध है, उनका मूल कारण यही मानव स्वभाव सुलभ प्रयत्न ही है।

इसी प्रकार महावात्सल्य भण्डार परम कारुणीक श्रीमन्मुनी द्रजी से सरल एव विनीत रूप से परिचयात्मक प्रश्न करने पर कभी कभी आत्तजिज्ञासुओ के समक्ष नि सकोच तथा स्पष्ट कह देते थे कि मेरे शरीर मे स्थान स्थान पर महाभारत की लडाई के तीर लगे हैं। उनके शरीर के निरीक्षण करने से यह बात निराधार सिद्ध नही होती थी, क्योकि वास्तव मे स्थान स्थान पर (शरीर पर) कई प्रकार के घाव के चि ह है। इसके अतिरिक्त —

(१) वे समय समय पर सैकडो वष पुरानी अपनी आँखो देखी बात सुनाते थे।

(२) उनका हि दी लेख (अक्षर) आजकल के हि दी के लेख से बिलकुल भि न था।

(३) एक बार रानीखेत मे किसी प्रेमी सज्जन के यहा ये बीमार पडे। मिलिटरी सजन के आते ही इ होने लेटे ही लेटे अपनी नाडी व श्वास की गति बद कर दी। सजन साहब परीक्षरग करके कहने लगे कि अब इनमे प्राणशेष

नही हैं। इनना कहने पर श्रीमहाराजजी की नाडी एव श्वास फिर से चलने लगी। तब सजन साहब ने इनके शरीर का सूक्ष्म परीक्षण किया, तथा इस निणय पर पहुँचे कि इनकी अवस्था दो सौ वष से ऊपर होनी चाहिये। श्रीमहाराजजी की बातो से यह निणय होता है कि ये इस प्रान्त मे चार सौ पाच सौ वष से रह रहे हैं। कुछ स्थानो पर जहा उन्होंने तपस्या की थी, वृद्ध मनुष्यो मे अब भी किंवदन्ती है कि वहा पर किसी महात्मा ने उग्र तपस्या की थी।

(४) एक बार रिउणी द्वारसो मे श्रीमहाराजजी के साथ बहुत से दशक बठे थे। ग्रीष्म के दिन थे। पानी कुछ दूर पर था। तब श्रीमहाराजजी ने उस स्थान के पास एक गुप्त गुफा बताई और कहा कि उसके भीतर बहुत ठण्डा एव स्वादिष्ट जल है। यह बात वहाँ के प्राचीन तथा वयोवृद्ध निवासियो को भी विदित नही थी। गुफा का द्वार अत्यत सकीण होने के कारण कोई भी यह न जानता था कि इसके भीतर पानी है। प्रयत्न करने पर भी कोई मनुष्य उसमे प्रवेश न कर सका। तब सब के देखते देखते श्रीमहाराजजी ने हाथ मे लोटा लेकर उस गुफा मे प्रवेश किया, और वहाँ से ठडा जल भर लाए। गुफा का द्वार इतना सकीण था कि उसमे कोई मनुष्य नही जा सकता था। इस गुफा के विषय मे प्रश्न करने पर श्रीमहाराजजी ने बताया कि मैंने यहाँ तीन सौ वष तक एक ही आसन से समाधि लगा कर तपस्या की थी।

श्रीमहाराजजी शिखा सूत्र धारण करते थे। सामान्यत इनके वस्त्र—"एक मिरजई, कोपीन और कनछोपी-टोपी" थे। सदा बालभाव मे रहने के कारण कभी कभी भक्त लोग इनके सिर पर

साफा भी बाध देते थे। गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए इन्हे किसी ने नही देखा। जौ तथा तिलो से हवन करते थे। घी के स्थान मे पानी की धार की आहुति देते थे। पूछने पर यह बताते थे कि पानी मे मैं घी का भाव करता हू। एकाध सेर पानी नही, कभी कभी कई मन जल की आहुति दी जाती थी। उस पानी की आहुति से अग्नि की लपट लगभग तीन चार गज ऊची हो जाती थी। ऐसा विदित होता है कि हवन महाराजजी लोक-कल्याणार्थ करते थे। जहा तक होता था श्रीमहाराजजी उपदेश बहुत कम देते थे। उनके मौनभाव के प्रभाव से ही सब की मति शुद्ध हो जाती थी, तथा कष्ट-निवारण हो जाता था। देखने मे वे एक सामान्य डोटी (नेपाल का एक प्रान्त) की तरफ के आदमी जैसे मालूम पडते थे। बोल-चाल में भी आधी देशी (हिन्दी) आधी पहाडी बोलते थे। पर उनका प्रभाव सब प्रकार से विलक्षण था।

एक बार एक मनुष्य को यह सशय हुआ कि जब ये साफ-साफ देशी (हिन्दी) भी नही बोल सकते, तो ये हमारी शकाओ का समाधान किस प्रकार कर सकेंगे। कालान्तर में श्रीमहाराजजी ने एक स्थान पर शिवलिङ्ग की स्थापना की और उसमें कुछ ब्राह्मणो को पाठ के लिए नियुक्त किया। इस अवसर पर एक ब्राह्मण की कमी पड गई और भगवान की प्रेरणा से वही सशयालु मनुष्य यहा आ पहुचा। इसके आते ही श्रीमहाराज ने इससे कहा कि पाठ में एक ब्राह्मण की कमी पड गई है, इस कारण तुम ब्राह्मणो के साथ सम्मिलित होकर इस कार्य को पूर्ण कर दो। यह मनुष्य सहमत हो गया, परन्तु अब पाठ के लिए एक पुस्तक की कमी पड गई। खोज करने पर एक सज्जन के पास एक पुरानी हस्तलिखित पुस्तक मिली, परन्तु इनमे अक्षर बहुत छोटे तथा भद्दे थे। इस मनुष्य ने पुस्तक को देखते ही कहा कि मैं अपना चश्मा नही लाया हू, दूसरे इस पुस्तक की लिखावट भी अत्यन्त

भद्दा होने के कारण मेरी समझ मे मुश्किल से आयेगी। तब श्रीमहाराजजी ने कहा कि तू केवल बैठ जा, यदि पाठ नही होगा तो कोई बात नही। जब वह मनुष्य पुस्तक खोल कर बठ गया, तब पुस्तक के अक्षर इससे पढने मे इतनी सुगमता से आ गये कि वह उच्च स्वर से बडी उमङ्ग के साथ पाठ करने लगा। श्रीमहाराजजी के प्रभाव से उसने अपना पाठ सब प्रथम पूण किया। इसके पश्चात उसको पहले की बात याद आई कि मैं कहता था, कि श्रीमहाराजजी जब साफ-साफ देशी नही बोल सकते हैं, तो हमारी शकाओ का समाधान कसे कर सकेंगे। वह अपनी भूल पर पश्चात्ताप करने लगा।

एक बार, एक बगाली बैरिस्टर बरसात के दिनो मे इस प्रा त मे आया। यह बरिस्टर अनेक वर्षों से योग की क्रिया करता था। इन क्रियाओ को करते करते उसकी आयु लगभग अस्सी साल की हो गई थी। उसका शरीर बडा हृष्ट पुष्ट था और वह बूढा नही मालूम होता था। उसके गुरु ने जितनी योग क्रिया उसे बताई थी वह उसने पूरी कर ली थी। गुरु के शरीर त्याग के पश्चात् जब इस क्रिया को बढाने के लिए (अर्थात योगसाधन पूण करने के लिए) कोई सिद्ध महात्मा न मिला, तो वह ढूढता हुआ इस प्रा त मे आया। यहा आने पर और पूछताछ करने पर उसे मालूम हुआ कि पदमपुरी के महाराज (पूज्यपाद श्री सोमवारी बाबा) ने तो शरीर छोड दिया है और श्री हैडाखान के महाराज भटकोट की घाटी के पास अपने आश्रम छेड़ू मे हैं। माग के अत्य न्त दुगम तथा दूरस्थ होने के कारण एक जानकार आदमी को साथ लेकर श्रीमहाराजजी के दशन के लिए वह पैदल ही छेड़ू चल पडा। माग मे वर्षा के कारण विषम कष्ट का सामना करना पडा। चार दिन की कष्टप्रद दुरूह यात्रा के पश्चात आश्रम पर पहुँचा। उस समय श्रीमहाराजजी दशको के साथ

छप्पर के भीतर बठे हुए थे। दम कदम दूर से दशन करते ही इस बरिस्टर की अवस्था अद्भुत हो गई। वह स्तब्ध भाव से खड़ा रहा। आँखो से आसुओ का अजस्र स्रोत बहता रहा। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। भाव विभोर हो गये। यह अवस्था लगभग दो घण्टे तक रही। इस बीच मे श्रीमहाराजजी जगल की तरफ चले गये। जब यह बरिस्टर प्रकृतिस्थ हुआ, तब उसने बताया, कि योगियो तथा महात्माओ की खोजमे उसने मारे भारतवष का पयटन किया था, और असख्य पसिद्ध योगियो से अपनी अवस्था के विषय मे परामश किया था। परन्तु जहाँ पर गाडी अटकी हुई थी वहाँ से आगे कोई नही बढा सका। श्रीमहाराजजी के दशन मात्र से मुझे सब सुलभ हो गया। बिना मुझसे पूछे उ होने मेरे अ दर प्रवेश करके आगे की सब योग क्रियाओ का दिग्दशन तथा अनुभव करा दिया। ऐसे असीम सिद्ध सिद्धेश्वर की कृपा का स्मरण करते करते भाव विभोर होकर वह श्रीचरणकमल को साष्टाङ्ग दण्डवत करता रहा।

एक समय, श्रीमहाराजजी गर्मी के दिनो मे ननीनाल जिले के खुर्पाताल आश्रम मे थे। एक नवशिक्षित मनुष्य को इनका कुछ कथानक दशको के द्वारा विदित हुआ था। यह भी समाचार उसे मिला था कि वे कनछोपी टोपी पहनते हैं। इस बात से यह मनुष्य अनुमान करने लगा—कि कही ये अश्वत्थामा तो नही है—क्योकि ये महाभारत की लडाई के तीर के घाव अपने शरीर पर बनलाते है। शायद अपने सिर के घाव को छिपाने के लिए ही कनछोपी टोपी पहनते हो। इस बात की जाँच करने के लिए वह खुर्पाताल पहुँचा। जिस प्रात काल वह वहाँ पहुँचा, तभी श्रीमहाराजजी कहने लगे कि गरमी के कारण मुझे नहाने की इच्छा हो रही है। इतना सुनना था कि उस मनुष्य ने कहा कि मैं ताल मे से एक घडा जल भर लाता हूँ, तब आप स्नान कर लीजियेगा। इस

मनुष्य ने विचार किया कि स्नान करते समय वे अपनी टोपी अवश्य उतारेंगे तब मैं घाव की परीक्षा कर सकूगा। श्रीमहा-राजजी कहने लगे कि तू मेरी कोपीन अगोछा, लोटा आदि ले ले, मैं तेरे साथ चल कर ताल पर स्नान कर लूगा। इस मनुष्य ने महष सब वस्तु ले ली, और यह विचार करने लगा कि ताल पर तो परीक्षण करने का और भी अच्छा सुयोग प्राप्त होगा। जब वह व्यक्ति तथा श्रीमहाराजजी ताल पर पहुँचे तो श्रीमहा राजजी ने कहा कि मेरी कनछोपी टोपी तथा मिरजई खोल कर मुझे स्नान करा दे। तब तो यह और भी अधिक प्रसन्न हुआ, क्योकि इसके मन की हो गई थी। परन्तु आश्चय की बात यह हुई कि टोपी उतारने से पहिले इसके मन मे जो परीक्षा करने का सकल्प था वह बिल्कुल विस्मरण हो गया। टोपी उतार कर मिरजई उतारी, तथा श्रीमहाराजजी को बडी श्रद्धा के साथ स्नान कराया, और अगोछे से इनका बदन पोछा तथा कोपीन पहनाई। उतरत हुए कोपीन को तथा अगोछे को धोने के बाद इनको मिर-जई तथा कनछोपी पहनाई। यह सब काम करने मे करीब आधा घटा लग गया, पर इस बीच मे घाव के परीक्षण की बात बिल्कुल विस्मृत हो गई। जब कनछोपी तथा मिरजई पहना चुका, तब उसे एकदम याद आई। परन्तु अब तो किसी भी बहाने से टोपी नही उतार सकता था। जिस समय वह इस प्रकार व्यथ पछता रहा था, श्रीमहाराजजी ने प्रेम से उससे कहा —"साधु महात्माओ के पास श्रद्धा तथा प्रेम से जाना चाहिये। यदि कुछ शका हो तो श्रीभगवान से उनके निवारण के लिए प्राथना करनी चाहिये। उस समय उनकी कृपा से 'अमुक महात्मा है अथवा नही' यह स्वयमेव ज्ञान हो जाता है। महात्मा की पहि चान महात्मा ही कर सकता है, अथवा वे कर सकते है जिन पर महात्माओ की कृपा हो। महात्माओ की कृपा उन पर होती है

जिनका हृदय सरल होता है, तथा जो अहंकार हीन होते हैं। जब प्राणी अपने आपको ही समझने मे असमर्थ है, तो भला वह महात्माओं की परीक्षा क्या कर सकता है !! महात्मा तो ईश्वर के रूप होते है उनकी जांच ईश्वर की जांच के समान कठिन है।'

क्षमा तथा शांति तो इनमे श्रीविष्णु भगवान के बराबर देखने मे आती थी। (भृगु महर्षि के अकारण लात मारने से भगवान विष्णु को लेशमात्र भी क्रोध नही आया था)। शक्ति भी इनमे अपार थी। इनमे क्या क्या शक्ति थी -वह हमारे ज्ञान से परे की वस्तु है। एक बन्द कमरे मे से निकल कर (अर्थात गायब होकर) दूर देश मे प्रकट होना, दस-पांच मील के फासले को एक क्षण में पार कर लेना एक ही समय अनेक दूर दूर के भिन्न स्थानो में एक ही रूप मे लोगो को दर्शन देना—इत्यादि अनेक प्रकार की विभूतियाँ तथा लीलाएँ उनमे अनेक बार देखी गई।

एक बार अल्मोडे मे एक रईस के यहाँ पधारे थे। उसने इनकी परीक्षा करने के लिए एक कमरे मे शयन करा के ताला लगा दिया। बहुत देर बाद जब ताला खोला गया, तो इनको वहां नही पाया। खोज करने पर पता लगा कि ये एक बहुत दूर के गांव मे थे।

एक समय, नैनीताल जिले के खरना आश्रम मे थे। कोशी के रेञ्जर साहब ने, जो उस समय अपने रेञ्जरक्वाटर विनायक मे थे, इनके लिए चार आदमी तथा एक डांडी वहाँ भिजवाई। आदमियो को यह आदेश था कि डांडी मे आदर सहित सवार करा कर ही विनायक लाये। श्रीमहाराजजी विनायक जाने को राजी हो गये क्योंकि ये जिसकी जैसी श्रद्धा हुई उसका वैसा ही मन रख देते थे। खरना से विनायक आठ-दस मील है और रास्ता सब चढाई का है। एक मील तक श्री महाराजजी डांडी

पर आये। इसके पश्चात इन्होंने डाडी के आदमियो से कहा कि अब चढाई के कारण तुम थक जाओगे, और मेरी इच्छा भी पदल चलने की हो रही है, इसलिए मुझे उतर जाने दो। आदमी थक अवश्य गये थे, परन्तु शरमाशरमी इन्होंने श्रीमहाराजजी की बात नही मानी। दस पाच कदम ले चलने के पश्चात आदमियो को श्रीमहाराजजी इतने भारी मालूम पडने लगे कि उन्होंने डाडी पृथ्वी पर रख दी। तब महाराजजी ने उन डाडी के आदमियो और दर्शको से कहा तुम कुछ विश्राम करके आना। जब महाराजजी लगभग एक फर्लाङ्ग चले, तब सब लोग मय डाडी के रवाना हुए। अब सबने अपनी चाल तेज कर दी और कुछ लोग श्रीमहाराजजी के साथ के लिए दौड पडे। पर इनका कुछ पता न चला। रास्ते मे विनायक से आने वाले पथिको से पूछा गया परन्तु उन्होंने बताया कि मार्ग मे उनके देखने मे कोई नही आया। लगभग तीन घण्टे बाद जब सब लोग विनायक पहुँचे, तो उन्हे समाचार मिला कि श्रीमहाराजजी लगभग तीन घण्टे पहले ही से वहाँ उपस्थित हैं।

एक समय श्री महाराजजी अपने आश्रम गोला पार रानीबाग मे थे। सूर्यग्रहण का अवसर था। बहुत से प्रेमी भक्त वहा उनके साथ रानीबाग मे रहे, और बहुत से भक्त उनके दर्शन करके कुरुक्षेत्र स्नानार्थ चले गए। जब ग्रहण का स्नान करके, वे लोग फिर उनके दर्शन के लिए रानीबाग आये तो उन्होंने श्रीमहाराजजी से कहा कि आप हमसे पहिले ही कुरुक्षेत्र से लौट आए। श्रीमहाराजजी कुछ न बोले, परन्तु उपस्थित भक्तो ने कहा कि श्रीमहाराजजी तो यहा से कही नही गये—तुम कसी बात कर रहे हो !! कुरुक्षेत्र जाने वाले भक्तो ने कहा कि हमने कुरुक्षेत्र मे सूर्यग्रहण के अवसर पर श्रीमहाराजजी के साथ साथ स्नान किया था, और तुम लोग कह रहे हो कि श्रीमहाराजजी यहाँ से

कही गये ही नही। दानो पक्ष वाद निवाद करने लगे, क्योकि दोनो ही सत्य के आधार पर कथन कर रहे थे। तब श्रीमहाराज जी ने कहा कि दोनो पक्षो का कथन यथाथ है। श्रीमहाराजजी के ऐसा कहने पर दोनो पक्षो का समाधान हुआ, और वे समझ गये कि कुरुक्षेत्र वाले भक्तो का भाव रखने के लिए, गनीबाग मे रह कर भी कुरुक्षेत्र वालो को दशन दिया। श्रीमहाराजजी कहा करते थे कि यदि अनेकों जगह मुझे एक ही समय मे भक्तो को दशन देना पड जाय तो उतने ही रूप धारण करके मैं दशन दे सकता हूँ।

कहा तक लिखा जाय, उनकी महिमा अपार है। हमारे देश मे उनका रहना ही हम लोगो पर उनका असीम उपकार हुआ है। उन्होने हम लोगो को एक माग निर्देश किया है। जो लोग अब भी उनका स्मरण करते हैं। वे उनकी महायता करते हैं—क्योकि वे सवव्यापी है।

श्री गुरुस्तव (तन्त्रोक्त)

ॐ ब्रह्म स्थान सरोज मध्य विल मच्छीनाशु पीठे स्थितम
स्फूयत्सूय रुचि वराभयकरकपूर कुन्दोज्वलम ॥
श्वेत स्रग्वमनानुलेपन युत विद्युद्र चाकान्तया ।
सश्लिष्टाङ्ग तनुप्रसन्नवदन वन्दे गुरु सादर ॥ १ ॥

मोहध्वान्त महावता ग्रहवता चक्षूषि चो मोलयन ।
यश्चके रुचिराणि तानिदयया ज्ञानाजनाभ्यजन ॥
व्याप्त यन्महसा जगत्रयमिद तत्व प्रबोधोदय ।
त वदे शिवरूपिण निज गुरु सर्वार्थ सिद्धि प्रदम ॥ २ ॥

मातगी भुवनेश्वरी च बगला धूमावती भरवी ।
तारा छिन्नशिरोधरा भगवती श्यामा रमा सुन्दरी ॥
दातु न प्रभवन्ति वाछित फल यस्य प्रसाद विना ।
त वन्दे शिवरूपिण निज गुरु सर्वार्थ सिद्धि प्रदम ॥ ३ ॥

काशी द्वारवती प्रयाग मथुरायोध्या गयावतिका ।
माया पुष्कर काचिकोत्कलगिरी यी शलविन्ध्यादय ॥
नैते तारयितु भवन्ति कुशला यस्य प्रसाद विना ।
त वन्दे शिवरूपिण निज गुरु सर्वार्थ मिद्धि प्रदम ॥ ४ ॥

रेवा सिधु सरस्वती त्रिपथगा सूर्यात्मजा कौशिकी ।
गगासागर सगमाद्रितनया लोहित्य शोणादय ॥
नाल प्रोक्तफल प्रदान ममये यस्य प्रसाद विना ।
त वन्दे शिवरूपिण निज गुरु सर्वार्थ सिद्धि प्रदम् ॥ ५ ॥

सत्कीर्तिर्विमला यश सुकविता पाण्डित्यमारोग्यता ।
वादे वाकपटुता कुले चतुरता गाभीर्यमक्षोभिता ॥
प्रागल्भ्य प्रभुता गुणे निपुणता यस्य प्रसादाद्भवेत् ॥
त वन्दे शिवरूपिण निज गुरु सर्वार्थ सिद्धि प्रदम् ॥ ६ ॥

लोकेशो हरिरम्बिकास्मर हरो माता पिताभ्यागता ।
आचार्य कुल पूजितो पतिवरो वद्धस्तथाभिक्षुक ॥
नते यस्यतुला ब्रजन्तिकलया कारुण्य वारांनिध ।
त वन्दे शिवरूपिण निज गुरु सर्वार्थ सिद्धि प्रदम् ॥ ७ ॥

ध्यानदेवत पूजन तपोदानाग्निहोत्रादय ।
पाठोहोम निषेवन पितृ मखाद्यभ्यागतार्चा बलिम ॥
एते व्यर्थफला भवन्ति नियत यस्य प्रसाद विना ।
त वन्दे शिवरूपिण निज गुरु सर्वार्थ सिद्धि प्रदम् ॥ ८ ॥

पूर्वाशाभि मुखीकृतञ्जलि पुट श्लोकाष्टक य पठेत ।
पौरश्चर्यविधि विनापि लभते मत्रस्यसिद्धि पराम ॥
नो विघ्नै परिभूयते प्रतिदिन प्राप्नोति पूजा फलम ।
देहान्ते परमपद हि निशते यद्योगिना दुर्लभम ॥ ९ ॥

[वामकेश्वर तन्त्रे पार्वतीश्वर संवादे गुरुस्तवराज सपूर्ण]

श्री मुनीन्द्र सूक्त

कैलाश गिरिवरे रम्ये निवसन्त सुशान्तिभि ।
त मुनि सतत वन्दे सदाकारुण्य रूपिणाम ॥ १ ॥

यस्य स्मरण मात्रेण सिद्धो भवति साधक ।
सदगुरु तमह वन्दे हैडाखान वासिनम ॥ २ ॥

यस्य कृपाकटाक्षेण धन्योभवति मानव ।
तस्य पादयोरेक प्रणमामि निरन्तरम ॥ ३ ॥

कोमल हृदय यस्य कोमल यस्य भाषणम् ।
दण्डोऽपि कोमलो यस्य कोमलाङ्ग नमाम्यहम ॥ ४ ॥

दृष्टि दयामयीं कृत्वा य पश्यति चराचरम ।
लोकोपकार निरतो रागद्वेषादि वर्जित ॥ ५ ॥

सदगुरु सदगुणाधारो ध्यानगम्य सदाशय ।
सत्य पर चिदानन्द सस्मरामि हि सवदा ॥ ६ ॥

हरिरेव हरेलक्तो हरेर्ध्यान परायण ।
हरेर्नामामृत पीत्वा हरेर्धाम पर व्रजेत ॥ ७ ॥

यो ददाति च बालाना सवज्ञान तु सुदुलभम् ।
सव साधन हीनोऽपि त्वमेकमवलम्बनम ॥ ८ ॥

महामत्तण्डरूपेण मोहध्वान्त विनाशक ।
सव भूतात्मरूपोऽसि महेन्द्रस्य च जीवनम ॥ ९ ॥

*

श्री मुनीन्द्र-स्तव

सिद्धासनासीन विविक्त वासी,
ज्ञानाम्बुधे नाथ आनन्दराशि ।
शान्त स्वभाव शुचि सौम्य विमुक्तकारी,
श्रीमन मुनीन्द्र जय जय जन तापहारी ॥
गौराग सुन्दर सुस्मित श्री मुखारविद,
भाल विशाल त्रिकुटी अति तेज पुंज ।

नयन सुदीघ परिपूरित स्नेहवारि,
श्रीमन मुनीन्द्र जय जय जन ताप हारी ॥
न पश्यामि तव रूप मोहान्धकारे,
न स्मरामि तव नाम आपत्ति काले ।
नार्चितम नाथ ! श्री पाद मोहापहारी,
श्रीमन मुनीन्द्र जय जय जन ताप हारी ॥
महिमा अनन्त विभु सम भुवि मे विराजे,
ऐश्वय माधुय की कीर्ति गाजे ।
करुण करो देव कल्याणकारी,
श्रीमन् मुनीन्द्र जय जय जन ताप हारी ॥
पालक समथ प्रभुत्व निजाश्रितो के,
दाता सुबुद्धि मतिमन्द उपासको के ।
विघ्नेश हो विघ्न विच्छेदकारी,
श्रीमन मुनीन्द्र जय जय जन ताप हारी ॥
होती जभी धम की ग्लानि जग मे ।
करते तभी धम रक्षा जगत मे ।
दुर्गुणो को करो दूर हे हे अघारि,
श्रीमन मुनीन्द्र जय जय जन ताप हारी ॥
शरणागतोऽहं गति मे त्वमेकम्,
माता पिता बन्धु सवस्वमेकम् ।
लोकेषु वेदेषु त्वम मम पुरारी
श्रीमन मुनीन्द्र जय जय जन ताप हारी ॥
औदाय आद्र करुणा परिपूण दृष्टि,
सन्तुष्ट हो नाथ ! सम्पूर्ण सृष्टि ।
लीला विचित्र तव हे ! नररूपधारी,
श्रीमन् मुनीन्द्र जय जय जन ताप हारी ॥

श्री मुनीन्द्र-स्तुति-सुधा

सोरठा

बंदऊ गुरुपदकंज कृपासिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर ॥

दोहा

श्री गुरु चरण सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनऊँ श्री गुरु पद विमल, जो दायक फल चारि ॥

प्रणवऊ श्री गुरु चरण सुहाई।
महिमा जासु न जानी जाई ॥
सब गुण सागर संत महाना।
आदि अंत जेहि काहू न जाना ॥
परम दयामय हृदय तुम्हारो।
शरणागत को शीघ्र उबारो ॥
कौन सो कष्ट मुनीन्द्र है जगमे।
दूर न होय दया से छन मे ॥
ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न गोसाईं।
पालत जन को दुःख छुड़ाई ॥
मृदुभाषी मुनि परम उदारा।
बोध वाक्य है ज्ञान को सारा ॥
हैड़ाखान विचित्र है धामा।
पावन अमित सुखद विश्रामा ॥
गौतम गंगा गजति निशदिन।
सिद्ध सुरासुर अचत अनुदिन ॥
श्री कैलाश शिखर की शोभा।
देखत ही मन उपजत लोभा ॥
तेहि गिरि तल एक रम्य गुहा है।

श्रुति प्रतिपाद्य गुहा ही महा है ॥
विविध प्रसून सुपल्लव सोहा ।
जानत सो जो नयनन जोहा ॥
वन मृग विहरत, कानन माहीं ।
वर परस्पर सकल भुलाहीं ॥
परम अहिंसा व्रत के धारी ।
श्री मुनि कृपा स्वभाव विसारी ॥
प्रभु जब से यहाँ कीन्ह निवासा ।
नन्दनवन मानो लगत उदासा ॥
सुलभ सकल सुख क्षेत्र के सेये ।
काय वचन मन प्रभु पद देये ॥
श्रीमुनि निज मुख करी बडाई ।
महिमा गुप्त जो प्रगटि जनाई ॥
निरखि मुनीन्द्र मनहि अति भाये ।
कीन्ह निवास हरषि उर लाये ॥
परम पवित्र शान्त यह गिरिवन ।
आकर्षित हो साधक जन मन ॥
धन्य धन्य यह तीर्थ हमारा ।
जहाँ सचल शिव करत विहारा ॥
रूप अनूप महा छवि छाजे ।
शुद्ध सत्य सौन्दर्य विराजे ॥
चारु चरण नख द्युति तम हारी ।
पद्म युगल सम पद सुखकारी ॥
श्री चरण शरण मे अटक्यो मन है ।
चपल चित्त में चिन्तन यह है ॥
नख सिख सुभग है कान्ति अपारा ।
बरन को कवि पाव को पारा ॥

यह जिय जानि चरण चित्त लावे ।
श्री चरण कृपा ही स्वरूप लखाव ॥
आन भरोस न है मन माहीं ।
दास अज्ञ असमथ सदा ही ॥
तत्त्व रूप तुम तत्त्व वित्त तुम ।
पचतत्त्व के प्रेरक हो तुम ॥
सकल तत्त्व तुम्हरे आधीना ।
प्रगटित महिमा यह सब जाना ॥
तुम्हरी आज्ञा जड चेतन पर ।
विभु सम शासक सब भूतन पर ॥
अणु अणु मे व्यापक सर्वेश्वर ।
महा महीम परम परमेश्वर ॥
सब सकल्प सिद्ध ही ताके ।
जो जन चरण शरण गहे आके ॥
त्रिकालज्ञ त्रिगुणके पारा ।
त्रिवेद तत्व के मूर्ति साकारा ॥
निज सकेत ही सृष्टि नचावो ।
द्रव्य स्वभावहि उलटि बतावो ॥
जल और अग्नि विरुद्ध परस्पर ।
श्रीकर परसि मित्र एक एक कर ॥
दिव्य तत्व निर्मित तव देहा ।
अविकारी पर हृदय सनेहा ॥
एक अनुग्रह करि जग प्रगटे ।
दयाधीन ह्वै गिरिवन भटके ॥
दीन बधु तुम दीन प्यारे ।
दीननके सग रहत सुखारे ॥

दया दष्टि कर जाहि विलोका ।
सोई जन धन्य भये त्रलोका ॥
राग शोक दारिद्र दुख से ।
किये मुक्त अगनित जन भव से ॥
चरित अनूप अपार महा है ।
समुझत हो मन मोद बढा है ॥
मन मधुकर हो मत्त चरण मे ।
बाल विनय सुन राखो शरण मे ॥
पद पद्म परात्पर रूप लखाव ।
साध्य सबन को श्रुति है बताव ॥
पद पद्म उपासक जे जग मे ।
तिनके जीवन नित हैं मुद मे ॥
पद पद्म प्रभा अति उज्ज्वल है ।
साधन पथ का प्रिय सबल है ॥
नित आनन्द सौख्य की वृष्टि वहाँ ।
मुनिराज विराजत होय जहाँ ॥
शुचि मोहक गंध है छाय रही ।
छवि छाय रही मँडराय रही ॥
महिमा तहा की कहो कैसे कहै ।
प्रति सास विलक्षण भाव लहैं ॥
गुरु गोविन्द गान श्रेयस्कर है ।
सब साधक को अति हित कर है ॥
मम मानस मे तुम मोन बनो ।
हम विमुखो मे तुम लीन रहो ॥
अनुरक्त बनो हे विरक्त महा ।
असमथ तुम्हे है ढूढ़ रहा ॥

अब जीवन अल्प अधार न आना ।
आप सहाय करो भगवाना ॥

सो० श्री चरण जलज नवजात, रहत सदा बरबस मनहिं ।
करत नेह निज जानि, कृपा रूप समुझौ तुमहिं ॥
तुम मुनि परम उदार, सुमिरत सुख आवत निकट ।
करु हिय शुद्ध सुशान्त, रहौ नाथ चरनहिं लिपट ॥

कृश शरीर तन तेज विराज ।
शुभ्र ज्योति चहुँ ओर है राज ॥
अति कमनीय कला है ऐसी ।
आजु लगे नहिं देखी जसी ॥
शब्द गम्य नहिं भाव गम्य वे ।
सत्य सनातन प्रकट देव वे ॥
भूत भविष्यत् के दृष्टा वे ।
मम मानस के शुभ स्रष्टा वे ॥
जग हित तत्पर श्री शंकर वे ।
अखिल विघ्न मे अभयकर वे ॥
नित नूतन अभिवृद्धि काम वे ।
विश्ववन्द्य विभु श्री विरंचि वे ॥
पालक कोमल अति कृपाल वे ।
क्षमाशील भगवान विष्णु वे ॥
सब रूप समूह अरूप हैं वे ।
उन रूप जगत जग रूप हैं वे ॥
सब रूप विसारि यह रूप गहौ ।
यदि रूप अरूप सौं मुक्ति चहौ ॥
तव रूप निहारि निचेष्ट भयो ।
पुनि देखन को अभिलाष रह्यो ॥

तुम आवत ओर हमारी प्रभु ।
हम जानत हू सकुचात प्रभु ।।
तुम पुण्य पयोधि अपार प्रभु ।
पर दीन दयामय देव प्रभु ।।
शिव सुन्दर सत्य स्वरूप प्रभो ।
अज व्यापक अगुण अनादि प्रभो ।।
अनुमान प्रमाण से दूर प्रभो ।
निज भक्त हृदय प्रत्यक्ष प्रभो ।।

दो० जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति मे, तव सत्ता प्रख्यात ।
श्री सुषमा सुख राशि की, मो प कही न जात ।।

दिव्य वदन अति मोहि लुभावै ।
श्री पद पद्म अब परम सुहाव ।।
श्री चरण चारु चिन्मय उजियारा ।
सुभग सौम्य पावन अति प्यारा ।।
चरण प्रभाव अपार महा है ।
रेणु पुनीत सुचित्र चढा है ।।
चरणाश्रय यदि दृढ़ हो जावै ।
सब* साधन का फल वह पाव ।।
चरण शरण में रति है जाकी ।
सुरति सुगति शुभ अति है वाकी ।।
चरणाश्रित का करें प्रभु पालन ।
दलन दोष समरथ नारायण ।।
चरणोदक प्रभु देहु दया करि ।
आओ आओ आओ हे हरि ।।
हर हर हर ॐ श्री सद्‌गुरु हर ।
सब सुखाकर प्रणतारति हर ।।

अम्बा अम्बा जय जगदम्बा ।
सब रूप एक तू ही अम्बा ॥
जगत जनक हे विधि कमलासन ।
वेद भनत तुम हो चतुरानन ॥
सब देवमय देह तुम्हारी ।
तुम सम तुम हे प्रभु अवतारी ॥
श्री चरण कमल को नमन करूँ मै ।
हाथ जोड़ सिर चरण धरूँ मैं ॥
श्री चरण सुकान्ति मनहिं को बाधै ।
कहत मनहिं मन तजौ सुसाधै ॥
अब तजि जनि तुम जाहु मीत मन ।
यह क्षण अब फिर आव केहि छन ॥
चरण कमल सिर कमल मे लावौ ।
हम तुम भूलि प्रीतम पद ध्यावौ ॥
श्री विग्रह मूल चरण कहावै ।
मूल गहे ते सब फल पावै ॥
और फलन को फल ही कहा है ॥
सकल सुकृत फल चरण महा है ॥
दया दृष्टि करि देहु चरण रति ।
आन उपाय न पाऊँ विमल मति ॥
चरण सनेह शीतल मधु शुचि है ।
जीव मात्र की थिर अभिरुचि है ॥
स्नेह सलिल सिंचित हियथल हो ।
बोध वृक्ष की छाँह सघन हो ॥
सुस्थिर छाँह सघन हो अविचल ।
त्रिविध ताप को करैं सुशीतल ॥

सदगुण सुमन सुगन्ध बढ़ाव ।
मैल मानसिक तुरत हटाव ॥
पल्लव फूल फलन युत झारी ।
योगक्षेम पूरित मन हारी ॥
शाति सरित की ध्वनि हो कलकल ।
प्रीति प्रवाह बहै नित छलछल ॥
सघन विपिन वन मृग है डोलत ।
मधुर स्वरो मे पक्षी बोलत ॥
छत्र चवर युत सेवहि लोका ।
पाइ दरस सब होहि बिसोका ॥
ज्ञान वृद्ध तप वृद्ध मुनीन्द्र वर ।
हैं आसीन अजिन आसन पर ॥
यही ध्यान रस रहै मत्त मन ।
सदानन्द शिवधाम रूप हर ॥
मगल भवन अमगल हारी रे ।
प्रभु तेरे चरण कमल बलिहारि रे ॥
तुम परम पुरुष अविकारी रे ।
श्रीसद्गुरु जाऊ बलिहारी रे ॥
नाथ अचल, मैं चचल भारी रे ।
तुम तीव्र गति मम मन्द मति रे ॥
तुम देखत नाथ यह मोरी गति रे ।
करहु कृपा होय नाम- रति रे ॥
तुम देखन चाह रहै मनमे रे ।
तुम देत दिखाई सदा सबमे रे ॥
कहुँ कोमल कमल समान हैं रे ।
कहुँ ककश कठिन कृपण हैं रे ॥

श्रीमोहक रूप धर्‍यौ हिय आय रे ।
करौं कोटि उपाय नहीं निकस रे ॥
नहीं देखत जी गुण औगुण है रे ।
ऐसो उदार कहाँ जग को रे ॥
जगजात जेते जगति तल रे ।
जन जीवन प्राण हैं वे सब रे ॥
मन मोर है मीत भयौ अब रे ।
निज लक्ष्य सुथिर भयौ जब रे ॥
चिदानन्द वा अन्य कहूँ रे ।
अनुमानि हिये अनुपमेय कहूँ रे ॥
अनुदिन आवत नाथ कहूँ रे ।
छन पल पल सुख राशि कहूँ रे ॥
ज्योति जगत बिच जाग रही रे ।
जयति जयति जग धूम मची रे ॥
प्रभु करन कृपा ही देह धरी रे ।
सुख करन दलन दुःख भ्रांति हरी रे ।

दोहा

गौर देह सुंदर लसत, कुरता टोपी भाल ।
चरणाश्रित निज बाल के, काटौ सब जग जाल ॥

सोरठा

नित उठि देखौं राह, कब आव श्री मुनीन्द्र जी ।
सत्य धर्म आचार्य, ब्रह्मचारी हैडाखान के ॥

ॐ नमोऽस्तुते देव दयालु मूर्ते, शिष्यानुरक्त शिव श्रेयकारिन् ।
पापानि दुःखानि संहारकर्त्ता, प्रणतोऽस्मि नित्यं करुणावतारिन् ॥

॥ ॐ शिवं भूयात् ॥

श्री मुनीन्द्र विनय

श्री सदगुरुदेव दयाल हमारे ।
कृपामयी मूरति प्रभु प्यारे ॥
तव चरणाम्बुज रेणु के भिक्षुक ।
हम तुम्हरे तुम हमरे रक्षक ॥
करहु कृपा स्वस्वरूप दिखावो ।
नित्य निरन्तर निधि मम आवो ॥
आओ आओ प्रभु ! अब आओ ।
दया दृष्टि करि देर न लाओ ॥
महासिद्ध सिद्धेश्वर हो तुम ।
ज्ञान कर्म उद्‌गाथा हो तुम ॥
रवि शशि में आलोक हो तुम ।
मम जीवन के अवलम्ब हो तुम ॥
चिरजीव मुनि ख्यात हो तुम ।
प्रख्यात हो तुम अख्यात हो तुम ॥
अतिशय परम उदार हो तुम ।
करुणामय करुणागार हो तुम ॥
उत्थान पतन मे कारण हो तुम ।
इन प्राणों मे स्पन्दन हो तुम ॥
सब जीवो के प्रिय जीवन हो तुम ।
सत सुख के सुख साधन हो तुम ॥
अनुदिन दास आनन्द में है ।
प्रत्यक्ष मे प्रतिपल भासत है ॥
प्रभु राखत हैं प्रभु राखत हैं ।
प्रभु जानत हैं प्रभु मानत हैं ॥

कसे कहूँ और कहाँ लौ कहूँ ।
मतिमन्द महा पर तेरो हूँ ॥
अपराध हजार हैं कसे सहूँ ।
तव पावन नाम से शान्ति लहूँ ॥
यह वास तुम्हारा न है विनयी ।
श्री सदगुरु शरण सदा सदयी ॥
शशि शेखर शान्त अपार विभो ।
क्षन्तव्य सदा अपराध प्रभो ॥
मम मानस मे शुभ सृष्टि रचो ।
शिव शान्त स्वरूप का दर्शन दो ॥
रति होश्री नाम मे यह वर दो ।
शुचि जीवन दान दया कर दो ॥
सर्वत्र है द्वन्द्व का खेल जहा ।
अद्वैत बिना सुख शांति कहा ॥
मनुजात तू ही है श्रेष्ठ यहाँ ।
भृगुबोध महा श्रेष्ठत्व वहा ॥

हाँ हाँ रे तू योगी

हाँ हाँ रे तू योगी ॥
योगी योगी योगी । हाँ हाँ रे तू योगी ॥
तू ही एक अनंत कहाता, सब मे रमता कही न पाता ।
हाँ ऐसा अद्‌भुत खेल रचाता ॥
अवनि, गगन, जल, पवन, अग्नि मे,
सूर्य चन्द्र की प्रखर रश्मि मे ॥
सब मे तू ही ओते प्रोत विधाता ॥
देख लीन हूँ चरण युग्म मे,

ज्ञान भक्ति के सघन कुज मे।
श्री सद्‌गुरु श्रेय प्रदाता ।।
प्रीति रीति से रिक्त हृदय है, दया दृष्टि पर दृढ निश्चय है।
हाँ अपने को कोई कब कैसे ठुकराता ।।
कहो कहो अब तो कुछ कह दो,
मौन अशोभन व्रत को तज दो ।
मधुर शब्द यदि, आके आज सुनाता ।।
जीवन कसा क्या बतलाऊँ, तुम सवज्ञ से कहाँ छिपाऊँ।
तू घट घट का अनुपम विज्ञाता ।।

हिमगिरि के एक तुग शिखर पर

हिमगिरि के एक तुग शिखर पर,
राजत हो सवस्व हमारे ।
नवद्रुम की अति छाह सघन मे ।
विलसत शिव सुखधाम हमारे ।
बादल की घनघोर घटायें,
प्रियतम तेरी याद दिलाएँ।
कारी बदरिया, नन्ही बुँदरिया,
कारी चदरिया वारे हमारे ।।
चचल चित्त स्थिरता कैसी,
अनायास यह सिद्धि कैसी ।
तव चरणाम्बुज अतिशय कोमल,
चचरीक यह चित्त हमारे ।।

दयामय दया करो तू आज

दयामय दया करो तू आज ।
दया करो दशन तू दीयो,

बहुत दिनन के दुखड़ा मेटचो ।
आये आये हे मुनिराज ।।
तेरी दया की बात कहूँ क्या,
मैं अपनी लघुता वरनू क्या ।
क्षमव क्षमव हे मम अपराध ।।
आदेश तुम्हारा समझ न पाता,
अज्ञ अध इव अति अकुलाता ।
समझावो समझावो हे यतिराज ।।
दयादृष्टि करि शक्ति दान दो,
सञ्चित क्या है ? आत्म ज्ञान दो,
यही वर है वर दातार ।।
अपराधो का पार नही है,
क्षमा सिन्धु की थाह नही है,
यही दृढ़ दृढ मम विश्वास ।।

ॐ श्री सदगुरु

ॐ श्रीसद्गुरुरे श्रीसद्गुरुरे
श्रीसदगुरुरे गुरुरे गुरुरे ।
मेरी ओर निहार जरा अबरे ।
यह देख सुहावन रूप तेरे ।
मेरे भव वारिधि ज्वाला भगे सगरे ।।
ॐ श्रीसदगुरुरे श्रीसद्गुरुरे । श्रीसद्गुरुरे गुरुरे गुरुरे ।।
श्रीचरण कमल अति सुन्दर है ।।
नख कान्ति महा ही श्रेयस्कर है ।
श्री शिव सत्य सुसुन्दर सागररे ।
ॐश्रीसद्गुरुरे श्रीसद्गुरुरे । श्रीसद्गुरुरे गुरुरे गुरुरे ।।

सब साधन हीन वा साधक हो।
प्रभु निंदक वा आराधक हो।
सम हैं सब ही कृपा पात्र तेरे।
ॐ श्रीसद्गुरुरे श्रीसद्गुरुरे। श्रीसदगुरुरे गुरुरे गुरुरे।।

सम दृष्टि दया की हो उन पर।
जो जन लेत मुनीन्द्र की सत्य शरण।
तू शरणागत वत्सल पालक रे।
ॐ श्रीसद्गुरुरे श्रीसद्गुरुरे। श्रीसद्गुरुरे गुरुरे गुरुरे।।

गुण आवें, न आवें अवगुण सब।
रति होत है नाम दृढतर तब।
ऐसा करुणाधाम सुखधाम चरण हैं रे।
ॐ श्रीसद गुरुरे श्रीसद्गुरुरे। श्रीसद्गुरुरे गुरुरे गुरुरे।।

चित्त में चिंतन की चाह रहे।
मन में निशदिन यह भान रहे।
प्रभु की प्रतिभा है जग के कण कण रे।
ॐ श्रीसदगुरुरे श्रीसदगुरुरे। श्रीसद्गुरुरे गुरुरे गुरुरे।।

बुद्धि-विचारी सफल कहाँ है।
यह विराट्मय रूप जहाँ है।
अहंकार नित करता मनमानी रे।
ॐश्रीसद्गुरुरे श्रीसद्गुरुरे। श्रीसदगुरुरे गुरुरे गुरुरे।।

करि प्रयास बहु विफल हुए हैं।
शरणागत हो सफल हुए हैं।
हैडाखान क्षेत्र के गुरुवर चरण कमल बलि जाऊँ रे।
ॐ श्रीसद्गुरुरे श्रीसद्गुरुरे। श्रीसदगुरुरे गुरुरे गुरुरे।।

चलो चलें आज हैडाखान

अहाँ प्रगट स त महान्, जहा प्रगटे रत्न महान् ।
सरित समीप बहै अति निमल, भाई सब मिल करो स्नान ।
पूजन करि श्री साम्ब सदाशिव, चित्त दै धरो भाई ध्यान ।
राग भोग प्रभु को क्या भावै, वो तो भाव के भूखे भगवान ।
चरणाश्रित तेरो है सब विधि, ले लो प्रभु दुर्बल तन मन प्राण ।

तेरी शरण मे आया

तेरो शरण मे आया, ओ हैडाखान वाले ।
सद्‌गुरु है नाम तेरा, तापो को हरने वाले ।। तेरी शरण० ।।

पावन चरित्र गुरुवर, अति करुणा से भरा है ।
करुणा करोगे कब अब, ओ दुखडा छुडाने वाले ।।

उस दिन तो नाथ तुमने, अपना बना लिया था ।
अब मेरा क्या बिगडता, ओ बिगडी बनाने वाले ।।

साधक की बुद्धि सीमित, तू सिद्धेश्वर महा है ।
साधन सुलभ बतादे, ओ शान्त स्वरूप वाले ।।

वर्णन करूँ मैं किस विधि, है महिमा अपार तेरी ।
आजा दरश दिखाजा, ओ विशाल बाहु वाले ।।

तव तेज पूर्ण आनन, आनन्द का है आकर ।
वाणी मधुर सुनाजा, ओ अनमोल बोल वाले ।।

आँखें तेरी दया का, आश्रय बनी हैं सुन्दर ।
जिनमें न विष विषमता, ओ समदर्शी कहाने वाले ।।

दोहावली

अब न और बिरमाइये, विरह वेदना घोर।
आओ या आजाऊ मैं आज्ञा दो चितचोर ॥ १ ॥

तेरे बिन तरपन न मिटै, बोध करौं दिन रैन।
क्यो बूझै ये अबूझ मन, रटत रहत बेचैन ॥ २ ॥

समझाऊ नित युक्ति से, तुम व्यापक सवत्र।
सब रूप सब मे बसत, अतिशय परम पवित्र ॥ ३ ॥

हठी है मेरो मन सदा, याकी गति विख्यात।
तू क्यो है हठ धारता, तेरी दया प्रख्यात ॥ ४ ॥

प्रभो प्रेम के पथ मे मैं अति निर्बल नीच।
प्राण पखेरु भ्रमत है कृपा डोरि से खीच ॥ ५ ॥

पख हीन फर फरात है, बस न चल कछुताहि।
जो तू समझ उचित यह, दै दशन अब वाहि ॥ ६ ॥

निज बल से कुछ ना सधै, अहो नाथ बलबीर।
निज बल बेगि बुलाइये धरत न मन अब धीर ॥ ७ ॥

करुणामय तेरो रूप है, करुणा कद है नाम।
करुणामय लीला करी, करुणा ही तेरो धाम ॥ ८ ॥

कृपाचार्य कृपा पथ के कृपासिद्धि कृपा मन्त्र।
कृपानाथ क्यों कृपणता, हूँ कृपाधीन परतन्त्र ॥ ९ ॥

आयौ मैं तुझ शरण मे, विनय करत कर जोर।
सकुच न पानाथवौ तुम, रोइ रोइ कहौं बहोरि ॥१०॥

और ठौर कहाँ दीन को, तुम तौ परम प्रवीन।
याहीते निर्लज्ज ह्वै, टेरत श्याम नवीन ॥११॥

श्री शिवाष्टक

शकर दया की मूर्ति हो फिर देर इतनी क्यो करो।
दन्य दु ख दुविधा हरो करुणा करो करुणा करो।।
भवताप से व्याकुल व्यथित हो नाथ तव चरणन परौ।
त्राण कर त्रिपुरारि अब करुणा करो करुणा करो।।१।।

भस्मॉग भूषित भव्य हो भवनाथ हो जगनाथ हो।
अर्द्धांग शोभित अब हो गिरिनाथ हो गणनाथ हो।।
चन्द्रार्ध शेखर शान्त हो गणनाथ हो ममनाथ हो।
दन्य दु ख दुविधा हरो करुणा करो करुणा करो।।२।।

भक्तवत्सलता तुम्हारी कौन है नहीं जानता।
पर भक्त मै तो हूँ नहीं यह सत्य हिय मे मानता।।
तव भक्ति का अवलब नहीं, अवलब है प्रभु आपका।
अपने विरद की याद कर करुणा करो करुणा करो।।३।।

विश्वेश हो तुम विश्व के फिर और से कहना ही क्या।
पालक चराचर के तुम्हीं फिर और मे पाना ही क्या।।
मति हो तुम्हीं गति हो तुम्हीं फिर और से लेना ही क्या।
वैद्य हो तुम वैद्य के फिर और से रोना ही क्या।।४।।

रीझते इतने रमण यह रीति रीझ अनूप है।
सब शोभा से सुशोभित सेव्य तेरा रूप है।।
शक्ति का तू धाम है और शक्तिमान् महान् है।
ज्ञान है अभिराम है औ सर्वदा कल्याण है।। ५ ।।

आनन्द के तुम स्रोत सुस्थिर सत्य सार अपार हो।
आकार हो आधार हो प्रापच के विस्तार हो।।
श्री श्रीपति के सेव्य हो और दास हो निष्काम हो।
शुभ प्रेम पाते है वही जपते सदा तव नाम हो।। ६ ।।

नाम का माहात्म्य किसने जान पाया आज तक।
गान करते है सुरासुर नाम ले ले आज तक।।
आज तक बैठा हुआ हू देव इस विश्वास मे।
नाम नामी नित निरन्तर रहते मेरी साँस से।। ७ ।।

श्री गुरु कृपाकर, गुरु कृपाकर, हे कृपाकर हे दयाकर।
दीनबधु देव दायक हे कृपाकर हे दयाकर।।
ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय त्रिपुटी हे कृपाकर हे दयाकर।
श्री गुरुदेव का सुख रूप शाश्वत हे कृपाकर हे दयाकर।।८।।

वृन्दाविपिन सुखधाम मे रसरास वर्षिणी हे प्रिये।
यमुना पुलिन गोमध्य मे वशी निनादिनि हे प्रिये॥
रसराज की रसना निरंतर कह रही है हे प्रिये।
यो ब्रह्म पुरुषोत्तम पुरातन गा रहा है हे प्रिये॥ ५॥

जा निकट गिरिराज के गोविन्द गाते हैं यही।
प्राणेश्वरी मम सहचरी सौभाग्य की मूर्ति यही॥
कुंजेश्वरी हियकुंज मे शुभवास तेरा हो सदा।
निरखू सदा तव रूप मंजुल अर्पण करूँ तन मन मुदा॥ ६॥

अभिलाष मेरी है यही अभिलाष बन कर तुम रहो।
वरयाचना सतत यही वर रूप होकर तुम रहो।
अभ्यर्थना अब है यही अभिमान बन कर तुम रहो।
वैराग्य का फल यह चहूँ अनुराग बन कर तुम रहो॥ ७॥

श्रीराधिका श्रीराधिका मै और कछु जानू नहीं।
श्रीराधिका श्रीराधिका मै और कछु मानू नहीं॥
श्रीराधिका श्रीराधिका श्रीराधिका रटता रहू।
दीन पर ही कृपा राधे सुमिरन सदा करता रहूँ॥ ८॥

श्री अम्बाष्टक

हे अम्ब एक अवलम्ब मम, तव पाद पकज ही सदा।
शरणागति की याचना, मैं याचता रहता सदा।।
शिव रूप सब शुभ सृष्टि मे, प्रतिपल दिखाती हो सदा।
सवत्र शक्ति विभाति करुणा, शान्ति सौम्या तू सदा।।१।।

दुर्गे विनाशिनी दुगति, तू चण्डिका औ मगला।
रक्तासना भव भीषिका, सौम्या परा हो मगला।।
मगलमयी करुणामयी, श्यामा महा श्री मगला।
मुद मोद मगल युक्त हो, तव बाल हे माँ मगला।।२।।

देखो दया अब हो क्षमा, जननी तू ही अम्बाशिवा।
दीनार्त साधन हीन की, गति एक तू अम्बाशिवा।।
तृष्णा क्षुधा शान्ति सुधा, सब रूप तू अम्बाशिवा।
निज रूप मे अनुराग दो, सतत रटू अम्बाशिवा।।३।।

मातग तनये तनय तव, उत्तप्त अति विक्षुब्ध है।
तीव्र ज्वाला दग्ध सा, पीडित महा विक्षुब्ध है।।
माँ हैं दयामयी औ क्षमामयी, जान यह विक्षुब्ध है।
दैन्य दुख सत्रस्त जग को देखि बहु विक्षुब्ध है।।४।।

शर्वाणि स्मृति रूप तू, सुस्थिर हृदय मे आ बसो।
नारायणी नव चण्डिके, जगदम्बिके माँ आ बसो ॥
सौंदय सत्या नित्य तू, सर्वा हृदय मे आ बसो।
भद्रा महा करुणा रमा, भूमा हृदय मे आ बसो ॥५॥

वासिनि चराचर वस्तु मे, माँ वैष्णवी तू शक्ति है।
जगवर्द्धिका संरक्षिका, संहारिका तू शक्ति है ॥
सर्व रूपा श्री विलासिनि, माननी तू शक्ति है।
रौद्र रम्या जनक जननी, जग अगम्या शक्ति है ॥६॥

विश्वेश्वरी वन्द्या महा, पूजित चरण अखिलेश से।
सर्वेश्वरी सब दृश्य रूपा, ऐक्य नित अखिलेश से ॥
अज्ञान भंजनि माँ निरंजनि, निर्गुणा अखिलेश से।
आया शरण शिशुवत्सले, कर दो कृपा अखिलेश से ॥७॥

मणिपुर विहारिणि मात तू, आज्ञा निवासनि मात तू।
हृत्पद्म चारिणि मात तू, मूला प्रकृति है मात तू ॥
सब देव रूपा मात तू विद्या मधू सुखखानि तू।
"आश्रित चरण" करबद्ध कह, हे अम्ब माँ सर्वस्व तू ॥८॥

अनुभवाष्टक

ससार सागर में पडा जब जीव अति व्याकुल हुआ।
वेदना बढती गई और यत्न भी निष्फल हुआ॥
साधना की शक्ति का अभिमान भी नि शेष था।
निरुपम निराश्रय दीन का रक्षक वही विश्ववेश था॥१॥

ढूढता फिरता जगत में जगनियन्ता है कहाँ।
पा जिसे पूणत्व मिलता पूर्ण परमेश्वर कहाँ॥
जिसके बिना यह जीव जजर कान्ति हीन मलीन है।
दुर्वासना की भीति से सत्रस्त और अधीन है॥२॥

सोचता मन में कभी यह नियति चक्र महान है।
ससार रक्षण सृजन मे यह प्रकृति हेतु प्रधान है॥
पुरुष का पुरुषत्व तब जब प्रकृति सहचरि साथ हो।
प्रकृति परिणय के बिना पुरुषाथ का क्या भान हो ? ॥३॥

जाता कभी सत्सग मे सदग्रथ भी पढ़ता रहा।
गिरि गुहा मे बैठकर नित नाम भी जपता रहा॥
पूजा कभी बहुदेव की कभी ध्यान भी करता रहा।
दुर्बल हृदय से हारकर कभी दम भी भरता रहा॥४॥

पर सत्य समझो बधु यह मम दु ख घोर अपार था।
किससे कहूँ किस विधि कहू, अनुताप ही साकार था ॥
अनुताप से अनुतप्त हिय मे राग का नही लेश था।
राग के पश्चात् सु दर त्याग ही अवशेष था ॥५॥

त्याग का ही रूप देखा राग सुदृढ था खडा।
सबल निमल तोषकारी शान्त सुस्थिर था खडा ॥
स्वर्ण की उत्कृष्टता का बोध होता है तभी।
नाश पाता कलुष सब अगार मे जलकर जभी ॥६॥

अनुराग रञ्जित चित्त था अनुराग पूरित ज्ञान था।
अनुराग हीन विराग का किंचित् नही अब ध्यान था ॥
भान था अनुराग था अभिमान था इस भाव का।
श्री गुरु कृपा से बढ रहा उ माद अब इस भाव का ॥७॥

शान्ति का यह मार्ग सु दर भावना शक्ति बढा।
निम्न विषयो से विमुख हो चित्त प्रभु चरणन चढा ॥
अनुकूल हैं श्री सदगुरू उन्नति तेरी निर्बाध हो।
करते रहो श्री इष्ट चि तन ज्ञान भक्ति अगाध हो ॥८॥

श्री सद्गुरु शरण

अब चलरे मन श्रीसद्गुरु शरण ।
आँख खोल विचार कररे कसा दयामय,
सब दु ख तरण, सब सुख करण ॥
देन न कर अबेर हुआ है उर घर श्रीगुरु दोउ चरण ।
नाहिं तो सहना है महा अति दु ख जरा मरण ॥

नाम जप सुषमा

भाव उदार निर्विकार चित्त हो ।
इष्टचरण अनुराग रग हो ॥ १ ॥

रति नाम हृदय चिरसुस्थिर हो ।
जप मे रति हो जप मे मति हो ॥ २ ॥

श्रीनाम ममानन प्रतिपल हो ।
श्रीरूप का दशन प्रतिक्षण हो ॥ ३ ॥

स्मृति श्रीविग्रह की ही रहे ।
श्री विग्रह त्यागि न अन्य गहे ॥ ४ ॥

रुचि हो नित ही प्रभु पावन की ।
शुचि साधन की शुभ साधन की ॥ ५ ॥

आकाश महा ही स्वच्छ अहा ।
अहा देख ये सागर कैसा महा ॥ ६ ॥

यह भृ ग सुशोभित शल खड़ा ।
मनुजात यहा है कौन बडा ॥ ७ ॥

महि को महिमा कहो कौन कहै।
पृथ्वीमाता सब विश्व कहै॥ ८॥

जलशुद्ध निरतर द्रवमय है।
सब शुद्ध करै और रस मय है ॥ ९॥

यह वह्नि महा उपकारक है।
मानो सृष्टि का सचालक है॥१०॥

पवन प्राण की कौन प्रशसा।
जेहि बिन रहै न सु दर हसा॥११॥

यह सु दर काया कलापूण है।
रग रूप और साव भिन्न है॥१२॥

चित्त सदा चि तन मे रत है।
मन मे मनन रहत अनुदिन है॥१३॥

बुद्धि विसूरति है निशवासर।
अहकार शिव स्वय परात्पर॥१४॥

ससार सुखी धन-धान्य से हो।
सब जीव सुखी आरोग्य से हों॥१५॥

सब दृश्य सदा मगलमय हों।
सब पुण्य कर आन दमय हो॥१६॥

ॐ शिव ॐ शिव ॐ शिव कहता।
कम करो शुभ सुमिरन करता॥१७॥

।। श्री गीतोक्त स्तुति ।।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवास्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीश कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ।। १ ।।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्र पश्यामि त्वा सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्त न मध्य न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ।। २ ।।

किरीटिन गदिन चक्रिण च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वा दुर्निरीक्ष्य समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ।। ३ ।।

त्वमक्षर परम वेदितव्य त्वमस्य विश्वस्य पर निधानम् ।
त्वमव्यय शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्व पुरुषो मतो मे ।। ४ ।।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहु शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वा दीप्तहुताशवक्त्र स्वतेजसा विश्वमिद तपन्तम् ।।५।।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तर हि व्याप्त त्वयैकेन दिशश्च सर्वा ।
दृष्ट्वाद्भुत रूपमुग्र तवेद लोकत्रय प्रव्यथित महात्मन् ।। ६ ।।

अमी हि त्वा सुरसङ्घा विशन्ति केचिद्भीता प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसघा स्तुवन्ति त्वा स्तुतिभि पुष्कलाभि
।। ७ ।।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसघा वीक्षन्ते त्वा विस्मिताश्चैव सर्वे ।।८।।

रूप महत्ते बहुवक्त्रनेत्र महाबाहो बहुबाहूरुपादम ।
बहूदर बहुदष्ट्राकराल दृष्टवा लोका प्रव्यथितास्तथाहम् ।।६।।

नभ स्पृश दीप्तमनेकवर्णं व्यात्तानन दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वा प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शम च विष्णो
।।१०।।

दष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्टवैवकालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शम प्रसीद देवेश जगन्निवास ।।११।।

कापण्यदोषोपहृतस्वभाव पृच्छामि त्वा धमसमूढ चेता ।
यछ्रेय स्यान्निश्चित ब्रहि तन्मे शिष्यस्तेऽह् शाधिमा त्वा प्रपन्नम्
।।१२।।

●

सद्गुरु-पुष्पाञ्जलि

गुरुपादप्रसादेन ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम ।
येनोद्धृतमिद विश्वतस्मै श्री गुरवे नम ।। १ ।।

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देवो महेश्वर ।
गुरुरेव पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नम. ।। २ ।।

अज्ञान तिमिराधस्यज्ञानाजन शलाकया ।
चक्षुरुमीलित येन तस्मै श्री गुरवे नम ।। ३ ।।

अखड मडलाकार व्याप्त येन चराचरम् ।
तत्पद दर्शित येन तस्म श्री गुरवे नम ।। ४ ।।

सवश्रुतिशिरोरत्नबिराजितपदाम्बुजम ।
वेदान्ताम्बुजसूर्योयो तस्मै श्री गुरवे नम ।। ५ ।।

यस्यस्मरण मात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम ।
सदैव सव सम्पत्तिस्तस्मै ची गुरवे नम ॥ ६ ॥

चैत य शाश्वत शात व्योमातीत निरजनम ।
बि दुनादकलातीत तस्म श्री गुरवे नम ॥ ७ ॥

स्थावर जगम चैवमचर चरमेवच ।
येन व्याप्त जगत्सव तस्म श्री गुरवे नम ॥ ८ ॥

ज्ञान शक्तिसमारूढ तत्त्वमालाविभूषितम ।
भुक्तिमुक्तिप्रदातार तस्मै श्री गुरवे नम ॥ ९ ॥

अनेक ज म सप्राप्त कम वध विदाहिने ।
स्वात्मज्ञान प्रदानेन तस्म श्री गुरवे नम ॥ १० ॥

शोषण भव सिंधोश्च दीपन ज्ञान सपदाम्
गुरु पादोदक सम्यक तस्मै श्री गुरवे नम ॥ ११ ॥

न गरोरधिक तत्त्व न गुरोरधिक तप ।
न गुरुज्ञानात्परतत्त्व तस्मै श्री गुरवे नम ॥ १२ ॥

म नाथस्त्रिजग नाथो मदगुरुस्त्रिजगद्गुरु ।
ममात्मा सव भूतात्मा तस्मै श्री गुरव नम ॥ १३ ॥

गुरुरादिरनादिरश्च गुरु परम दैवतम् ।
गुरुमन्त्रसमोनास्ति तस्मै श्री गुरवे नम ॥ १४ ॥

गुरुरेव जगत्सव ब्रह्मा विष्णु शिवात्मकम्
गुरो परतर नास्ति तस्मात्सपूज्ययेदगुरुम ॥१५॥

श्रीमत्पर ब्रह्मगुरु नमामि श्रीमत्पर ब्रह्मगुरु भजामि ।
श्रीमत्पर ब्रह्मगुरु वदामिश्रीमत्परं ब्रह्मगुरु स्मरामि ॥१६॥

ब्रह्मानन्द परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।

एक नित्य विमलमचल सवदे साक्षिभूत
भावातीत त्रिगुणरहित सदगुरु त नमामि ।। १७ ।।

आन दमानक दकर प्रस न ज्ञानस्वरूप निजबोधरूपम् ।
योगी द्रमीड्य भवरोग वैद्य श्रीमदगुरुरु नित्यमह नमामि ।।१८।।

हृद्यम्बुजे कर्णिकमध्यसस्थ सिहासने सस्थितदिव्यमूर्तिम् ।
ध्यायेदगुरू चण्डकलाप्रकाश सच्चित्सुखमिष्ट फल प्रदानम ।।१९।।

नित्य शुद्ध निराभास निराकार निरञ्जनम् ।
नित्यबोध चिदान द गुरुब्रह्म नमाम्यहम् ।।२०।।

न गुरोरधिक न गुरोरधिक न गुरोरधिक न गुरोरधिकम् ।
शिवशासनत शिवशासनतः शिवशासनत शिवशासनत
।।२१।।

इदमेव शिव इदमेव शिव इदमेव शिव इदमेव शिवम् ।
ममशासनतो ममशासनतो ममशासनतो ममशासनत ।।२२।।

ससारसागरसमुत्तणकमत्र ब्रह्मादिदेवमुनिपूजितसिद्ध मन्त्रम् ।
दारिद्य दु ख भयशोक विनाशमत्र वदे महाभयहर
गुरुराज मन्त्रम ।। २३ ।।

सच्चिदानन्दरूपाय व्यापिने परमात्मने ।
नम श्रीगुरुनाथाय ह्यविद्याग्र थिभेदिने ।। २४ ।।

मैंने नाम रतन धन पायौ ।

वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु किरपा कर अपनायो ।
जनम जनम की पूजी पायी जग मे सबै खोवायौ ।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै दिन दिन बढ़त सवायौ ।
सत की नाव खैवटियाँ सतगुरु भवसागर तर आयौ ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरखि हरखि जश गायौ ।।

श्रोत्रिय दीक्षान्त भाषण

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्य वद। धम चर। स्वाध्याया मा प्रमद। आचार्याय प्रिय धनमाहृत्य प्रजातन्तुया व्यवच्छेत्सी। सत्या न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशला न प्रमदितव्यम। भूत्यै न प्रमदितव्यम। स्वाध्याय प्रवचनाभ्या न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्या न प्रमदितव्यम।।

वेद का भली भाँति अध्ययन करा कर आचाय अपने आश्रम मे रहने वाले ब्रह्मचारी विद्यार्थी को शिक्षा देता है, ' तुम सत्य बोलो, धम का आचरण करो, स्वाध्याय से कभी न चूको, आचाय के लिए दक्षिणा के रूप मे वाछित धन ला कर दो, फिर उनकी आज्ञा से गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करके सतान-परपरा को चालू रखो, उसका उच्छेद न करना। तुम को सत्य से कभी न डिगना चाहिए। धम से नहीं डिगना चाहिये। शुभ कर्मों से कभी नही चूकना चाहिये। वेदो के पढाने मे कभी भूल नही करनी चाहिये। देवकाय से तथा पितृकाय से कभी नही चूकना चाहिये। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचाय्य देवो भय। अतिथि देवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकम् सुचरितानि। तानि तस्योपास्यानि। नो इतराणि।

"तुम माता मे देवबुद्धि करनेवाले बनो। पिता को देवरूप समझनेवाले होओ। आचाय को देवरूप समझने वाले होओ। अतिथि को देवरूप समझने वाले बनो। जो जो निर्दोष कम हैं उन्ही का तुम्हे सेवन करना चाहिये, दूसरे कर्मों का कभी आचरण नही करना चाहिये। हमारे जो-जो अच्छे आचरण हो उनका ही तुम्हे आचरण करना चाहिये। दूसरो का कभी नही।

शान्तिपाठ

ॐ सहनाववतु। सह नौ भनक्तु सह वीर्यं करवा वहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहे ॥

हे पूणब्रह्म परमात्मन। हम दोनो गुरु शिष्य की आप साथ-साथ रक्षा करें। हम दोनो का साथ साथ पालन करे। हम दोनो साथ-साथ ही शक्ति प्राप्त करे। हम दोनो को पढी हुई विद्या तेजोमय हो। हम दोनो परस्पर द्वेष न करें।



उपदेश

श्रीसद्गुरु देवजी महाराज की मौन व्याख्या से ही अधिकारी साधक गण कृतार्थ हो जाते थे। मानसिक—शक्ति से वाणी का प्रभाव बहुत थोडा है। पूर्वाचार्यों की उपदेश प्रणालि का भी अधिकतर ऐसी ही पायी जाती है।

तथापि कभी कभी कृपा कर वाणी द्वारा भी उपदेशामृत प्रदान कर देते थे। आप सभी को अपने-अपने धम पर आरूढ़ रहने की आज्ञा करते थे।

श्री सद्गुरु देवजी की श्रद्धा जप पर विशेष थी। प्राय वे निरन्तर जप ही किया करते थे। उनका मुखमण्डल सदव एक अपूव तेज से देदीप्यमान रहता था। ससार से सर्वथा उदासीन रह कर वे जप मे ही निमग्न रहते थे।

जप के अतिरिक्त वे भावना के विषय मे कहते थे। "जसी भावना वसी सिद्धि।"

श्रीमुख की वाणी यह है। "बाबा मनसा फलेगी" यादृशी भावना यस्य सिद्धिभवति तादृशी। इस प्रकार देखा जाय तो

श्री बाबा महाराज का जप और भावना, ये दो मुख्य उपदेश थे। आध्यात्मिक सपूण साधनाओ का सार यही है।

महर्षिपतञ्जलि का प्रसिद्ध सूत्र है।

"तज्जपस्तथ भावन वा"

* * *

शान्ति का यह माग सुन्दर भावना शक्तिबढा।
निम्न विषयो से विमुख हो चित्त प्रभुचरणनचढा।
अनुकूल सदगुरु है सदा उन्नति तेरी निर्बाध हो।
करते रहो नित इष्ट चिन्तन श्रेय शाति तत्काल हो।

श्री सद्गुरु सन्देश

यहि असार ससार मे जो चाहत निज क्षेम।
सतन के सिद्धान्त ये, सत्य, सरलता, प्रेम ॥

प्रत्येक कल्याणकामी जीवो के लिए ये परमावश्यक साधन हैं। मन जो विचार करे, वाणी उसी को बोले, एव कर्मेन्द्रियाँ वही कम करें। इसी का नाम 'सत्य' है। मन, वाणी और कर्म मे जहाँ पूर्णैक्य है, वही सत्य स्वरूप भगवान रहते है। "न सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातक परम्।" सत्य से बढ कर कोई धर्म नही है। झूठ से बढ कर कोई पाप नही है। अन्य सिद्धान्त तथा आचरण मे मतभेद होने पर भी इस सावभौम महाव्रत के पालन की आज्ञा सभी धर्मों मे पूणरूप से पायी जाती है। "सत्य" की पूण प्रतिष्ठा होने पर फिर ससार का कोई पदार्थ अप्राप्त नही रहता है।

* * *

स्वाभाविक जीवन का नाम ही "सरलता" है। सत्य को पिछाने के एक ही आडम्बर करना पडता है। साधक के लिए तो सरलता सुधा के समान सेवनीय है। सरलताहीन व्यवहार को ही

ही "गीता" मे दम्भ कहा गया है। दम्भ महान घातक दुगुण है। दम्भी की अपेक्षा पापी अच्छा है। पापी प्रत्यक्ष मे पाप करता है। किसी कारण विशेष से उसकी पापवृत्ति नष्ट हो सकती है, परन्तु दम्भी अपनी कुटिलता से सदव अपने दुराचार को छिपाकर उन दोषो को पालता रहता है। जिसका स्वभाव सरल नही है, उस मनुष्य से पशु कही अधिक अच्छा है। यदि जीवन मे सरलता आ जाय, तो बिना कठिन प्रयास के ही सभी सद्गुण प्राप्त हो जाते हैं।

* * *

"प्रेम" तो अनिवचनीय तत्त्व है। जीव मात्र इसी प्रेम देव के प्रकाश मे विचरण कर रहे हैं। सत्य तथा सफलता से वञ्चित होने के कारण प्रेम का वास्तविक स्वरूप सब नही समझ पाते है। शुद्ध हृदय मे ही प्रम का प्राकट्य होता है। भगवत्प्राप्ति का जो सर्वादरणीय महा साधन "भक्ति" है, ब्रह्म साक्षात्कार के पश्चात् जो "पराभक्ति' की प्राप्ति होनी है, उपनिषद मे जिसे 'रति' शब्द से परिचय कराया गया है, उन्ही को 'प्रेम" कहते हैं।

प्रेम और भगवान सवथा अभिन्न है। प्रेमाञ्जन लगाने पर प्रेमास्पद के अतिरिक्त कुछ नही दिखता है। प्रत्येक परिमाणु प्रेमरूप हो जाते हैं जो कि वास्तविक भगवत् साक्षात्कार का स्वरूप है।

* * *

सत्य, सरलता तथा प्रेम से जिसका हृदय कोष शून्य है, वास्तव मे वही व्यक्ति दीन है। जिसके हृदयागार मे सत्य की प्रतिष्ठा हो चुकी, सरलता और स्वभाव मे जहाँ पूर्णैक्य हो गया, जिसने अपने को प्रेमदेव के दिव्य आलोक से अपना जीवनपथ प्रकाशित कर लिया, प्रेमपूण सदभावना से प्रेममय परिचय प्राप्त कर चुका प्रेमासव का पानकर जो प्रेमोन्मत्त बन गया, नसर्गिक

'प्रेमानंद' मे जो रात दिन निमग्न रहता है, वह कृतकृत्य हो गया। सम्पूर्ण साधनाओं का समुज्ज्वल स्वत्व उसे बिना प्रयास ही प्राप्त हो गया। उसकी सम्पूर्ण अतृप्त आकांक्षाएँ अनायास ही नष्ट हो गईं। पुष्टि और तुष्टि तो उसके जीवन की अभिन्न सहचरी बन गईं। अहा! वह प्रेमी है, वह विश्व से प्रेम करता है, अथवा यों कहो कि प्रेम ही उसका जीवन है, प्रेम ही प्राण है। वह प्रेममना होकर विश्व के प्रत्येक प्राणी से प्रेम करता है। क्यो नही, जिसने सत्य, सरलता तथा प्रेम के निर्मल प्रवाह मे अपना जीवस्रोत मिला दिया है, सत्य सरलता-प्रेम की पावन त्रितापनाशिनी 'त्रिवेणी' मे गोता लगा लिया है, वह त्रिगुणो को पार कर, मानव जन्म सफल कर चुका।

श्री मुनीन्द्र-आरती

आरती श्री सदगुरु देव दयाल की ।

सत चित निज आनन्दधाम की ॥ आरती० ॥

एक विमल वपु हो अविनाशी ।

सब रहित और सब घट वासी ॥

मूरति करुणामय ललाम की ॥ आरती० ॥

जपत नाभ भवसिन्धु शुष्क हो ।

श्रीचरणों मे विमल भक्ति हो ॥

अभिलाष एक आसक्ति रूप की ॥ आरती० ॥

सुन्दर सुसौम्य पर परास्वरूप ।

मन मोद होत सुविलोकि रूप ।

(सुर नर मुनि) सब कहत जै जै हैडाखण्ड की ॥ आरती०

शुद्ध शान्त अद्वैत अघारी ।

त्रिमूर्ति ताप हर मगलकारी ॥

शरण पडे हम श्री समरथ प्रभु की ॥ आरती० ॥



परा पूजा

अखण्डे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि ।
स्थितेऽद्वितीयभावेऽस्मिन्कथ पूजा विधीयते ॥ १ ॥

पूर्णस्यावाहन कुत्र सर्वाधारस्य चासनम् ।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्य च शुद्धस्याचमन कुत ॥ २ ॥

निर्मलस्य कुत स्नान वस्त्र विश्वोदरस्य च ।
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम् ॥ ३ ॥

निर्लेपस्य कुतो गन्ध पुष्प निर्वासनस्य च ।
निर्विशेषस्य का भूषा कोऽलङ्कारो निराकृते ॥ ४ ॥

निरञ्जनस्य किं धूपैर्दीपैर्वा सर्वसाक्षिण ।
निजानन्दैकतृप्तस्य नैवेद्य किं भवेदिह ॥ ५ ॥
विश्वानन्दपितुस्तस्य किं ताम्बूल प्रकल्प्यते ।
स्वयप्रकाशचिद्रूपो योऽसावर्कादिभासक ॥ ६ ॥

प्रदक्षिणा ह्यन तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नति ।
वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुत स्तोत्र विधियते ॥ ७ ॥

स्वयप्रकाशमानस्य निराजन विभो ।
अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासन भवेत् ॥ ८ ॥

एवमेव परापूजा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
एकबुद्ध्या तु देवेशे विधेया ब्रह्मवित्तमै ॥ ९ ॥

आत्मा त्व गिरिजा मति सहचरा प्राणा शरीर गृह ।
पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थिति ।
सञ्चार पदयो प्रदक्षिणविधि स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिल शभो तवाराधनम् ॥१०॥

ॐश्रीमच्छङ्कराचार्य कृत परापूजा स्तोत्र सम्पूर्णम्

॥ श्री गुरु ॥

अनुपम दया

व दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्

अज्ञात महाशक्तिधर श्री गुरुरूप धारी सदाशिव की यह आज्ञा है —

जो जीव जाग्रत अवस्था मे मनोविग्रह (मनको एकाग्र) नही कर सकते हैं। उन्हे निद्रावस्था मे मैं दीक्षा दूगा। (ज्ञानम्) अर्थात ज्ञान देकर उनका पाप नाश करूँगा। दीक्षितो को योग क्षेम के वर से सदा सुखी रक्खूगा।

ये सब तो मिलेंगे ही, परन्तु जो जीव का सर्वोच्च ध्येय है, जिसे प्राप्त कर ही मानव वास्तव मे मानव है, वह है साधन, वह है वह कृपा जो सवथा अनपायिनी है एव जिसे प्राप्तकर जीव पूण हो जाता है। वह कृपा, वह साधन जीव को शरण होने पर अनायास ही, केवल विश्वास रखने मात्र से जीव का परम धन, चरम लक्ष्य एव दु साध्य साध्य प्राप्त हो जाते हैं। उनका यह आशीर्वाद प्रसिद्ध है —

"मनसा फलेगी"

आज ही हम उस अनुपम दयालु की शरण ग्रहण करें।

विशष —हमे बहुत से साधक मिल हैं जि हे श्री भगवान् ने स्वप्न मे दीक्षा देकर दशन देकर एव आदेश देकर उनके आर्थिक शारीरिक मानसिक, बौद्धिक एव कौटुम्बिक नाना प्रकार के लाभ प्रदान किये हैं।

॥ ॐ ॥

हे विश्व वासियो

आओ ! आओ !! आओ !!!

हृदय हृदय से शुद्ध सम्बन्ध करो।
एक स्वर और एक निष्ठा रक्खो।

"श्री भगवान को पुकारो"

जैसा मन है उसी को लेकर, जसी बुद्धि है उसे ही सहचरी बनाकर और जसा अहंकार है उसी को प्रियतम के लिये सर्वोपरि उपहार समझकर शीघ्र और सहष एव नि शकोच तथा निभय होकर—

"उसके पास चलें"
"जसे है वसे ही चलें"

वे सर्वाभिष्ट दाता प्रभु तुम्हारे मनसा को देखते है, मानसिक भाव समन्वित प्राथना शीघ्रातिशीघ्र सुनते हैं।

उनका वरद आशीर्वाद प्रख्यात है —
"मनसा फलेगी"

नाम जपो मानस शुद्ध होगा।
नाम जपो मानस सशक्त होगा।
नाम जपो हमारे हृदयासन पर श्री-
भगवान का चिरस्थायी प्राकटय होगा।

नाम भजो हिय सोधो भाई। प्रभु अभ्यन्तर बैठ्यो आई॥

(दिव्यकथामृत)

।। आरार्ति गीतिका ।।

श्री सिद्ध सकल जगवदन, हियमण्डन ए
त्रिपुरा तक त्रिपुरेश !
जय शिव ॐ हरे ।।

भाल त्रिपुण्ड सुमण्डित, शिर गङ्ग तरङ्गित ए
शङ्कर परम ललाम
जय शिव ॐ हरे ।।

मदभर शोणित लोचन भवभय मोचन ए
शोणाधर सर्वेश !
जय शिव ॐ हरे ।।

जटा मुकुट अहि मण्डित, शिवशशिशेखर ए
फणिफणमण्डित भाल
जय शिव ॐ हरे ।।

विषपान विघूर्णित नीलकण्ठ, नयनाऽमृत ए
मदन मनोहर वेश
जय शिव ॐ हरे ।।

सितभूति विभूषित भूतिभव्य, भवभीतिविभजन ए
वृषभध्वज विश्वेश !
जय शिव ॐ हरे ।।

वाघम्बर शोभित शान्त वेश, शिवशत्रु निकन्दन ए
शिवाशक्ति सम्पन्न
जय शिव ॐ हरे ।।

पिनाक पाणि पाशाकुश शोभित, यशपाश विमोचन ए
पशुपति पावन बेश,
जय शिव ॐ हरे ।।

भुजग कण्ठ मुण्डमाल शम्भु, शशिशेखर ए
शारदेन्दु कमनीय
जय शिव ॐ हरे ।।

आशुतोष अखिलेश्वर औघड, अवढर दानी ए
दाता परम दयालु
जय शिव ॐ हरे ।।

विश्वनाथ विश्वम्भर विश्वश्वेर, वृष वाहन ए
विश्व विलोचन चोर
जय शिव ॐ हरे ।।

हैडकखान निवासी, घट घट वासी ए
सिद्धाश्रमी योगीश
जय शिव ॐ हरे ।।

ॐ

तृतीय पुष्प—आवश्यक-कर्म

लेखक

श्री चरणाश्रित

कर्म प्रधान विश्व करि राखा ।
जो जस करै सो तस फल चाखा ।।

।। ॐ श्री सद्‌गुरवे नम ।।

कर्म को आवश्यकता

यस्य स्मरणमात्रेण सिद्धो भवति साधक ।
सदगुरु तमह व दे हैडाखानवासिनम ।।

ईश्वर का रहस्यमय रचनाकौशल बहुत सी विचित्रताओ से परिपूण है। उनमे यह भी कम विलक्षण विषय नही है कि हम अपने को भूल गए। आत्म विस्मृति के दुर्भाग्यपूर्ण गत में हम जा मिले। आत्मविज्ञान, आन दविज्ञान की उपेक्षा मे हमे चेतन, अमल तथा सहज सुखराशि स्वरूप ने विच्युत कर जड, मलीन तथा दु ख द य के महासागर मे डाल दिया। यातनाओ और वासनाओ के उत्ताल तरगो पर नाचते नाचते यह विविध आन द-मय अभिनय हमारे लिये अभिशाप बन गया। परन्तु इन सब बातो के विचार विस्तार मात्र से काम नही चलेगा। प्रकृति का यह अकाट्य नियम हम सब जीव प्रतिक्षण अनुभव कर रहे हैं। श्री भगवान के वचन भी हैं

न हि कश्चित क्षणमपि
जातु तिष्ठत्यकमकृत ।

कोई भी प्राणी क्षण भर भी कम किए बिना नही रह सकता।

जब जीव के लिए कम करना अत्यन्त आवश्यक है तब हमें जल्दी से जल्दी सोचना है कि कौन से कम किये जायें, जिन कर्मों से हम श्री भगवान के प्रिय हो। श्री भगवत दिव्य सनातन सुख के हम सच्चे अधिकारी हो। श्री भगवान के ही मुख से उसका सरल उपाय सुनिये

सोई सेवक प्रियतम मम सोई।
मम अनुशासन मानै जोई ॥ (रामायण)

वही व्यक्ति मेरा सेवक तथा परम प्रिय है जो मेरे आज्ञा-विधान को सभी प्रकार से—मनसा, वाचा और कमणा—स्वीकार कर ले। आइये ! हमे और कही नही जाना है। दयामय भगवान पहले ही आज्ञा कर गए है, टेढी मेढी बातो मे नही, स्पष्ट कह गए है हे मानव—

न त्याज्य कायमेव तत।

ये कम छोडने योग्य नही हैं। भले ही अ य कार्यों मे शिथिलता हो पर श्री भगवान के आज्ञापालन रूप काय मे प्रमाद रूप पाप मत कर। पल मे प्रलय होगा। सावधान ! दृढ निश्चय कर लो। यदि दृढ़ निश्चय कर चुके हो तो विवेकपूण दृढ़ता का वज्र-किला बना लो। शास्त्रसमर्थित तथा श्री गुरुजनो द्वारा अनुमोदित स माग एव श्रेयप्रदायिनी साधना मे यदि दृढता आ जाए तो इससे उत्तम साधन कोई नही। ऐसा देखने मे आया है कि कतिपय साधक उग्र तथा स्तुत्य साधन परायण होने पर भी दृढ़ता के अभाव मे उन साधको को अधूरा—अपूण ही छोड देते हैं। कोई निराशा के अ धकार में बिल्कुल भ्रष्टप्राय हो जाते हैं तथा कोई नवीन नवीन साधनो की जिज्ञासा, खोज में इधर उधर भटक कर अपना जीवन बिताते है। यदि सद्भाग्य से हमे सत्सग या सत्साहित्य प्राप्त हो जाय तो हमे यह मालूम होते देर नही लगेगी कि श्री भगवान हमे पूर्व ही आज्ञा निर्देश कर गए हैं।

श्री भगवान की यह वाणी कि "इन कामो को कभी भी मत छोडो। ये काम त्यागने योग्य नही हैं," पढकर चित्त गदगद हो जाता है। जैसे वृद्ध पुरुष अपनी स ताने को यह सीख देता है कि इन कामो को जरूर करना, वैसे ही श्री कृष्ण, पुरातन पुरुष,

हम जीवो को अधिकारपूर्वक आज्ञा प्रदान कर रहे हैं। अपने हृदय की सबसे प्यारी क्रिया को प्रकट कर रहे हैं। जब श्री भगवान ही आज्ञा कर रहे हैं, तो इसकी श्रेष्ठता तथा सार्वभौमिकता के विषय मे कोई कुछ कह ही क्या सकता है! महर्षि वेदव्यास कहते हैं

गीता सुगीता कर्तव्या
किमन्य शास्त्रविस्तर ॥

एक गीता ग्रन्थ को ही अच्छी तरह श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन कर लो तो अन्य शास्त्रो के विस्तार की क्या आवश्यकता? पाश्चात्य दार्शनिको का भी यह मत है कि—

'गीता मनुष्य मात्र की बाइबिल है।'

आइए! बन्धुओ! माँ गीता की सुखद एव शान्तिदायक गोद मे हमे यह सीख मिलेगी। श्री कृष्णोपदिष्ट साधनत्रय स्वरूप दीखेगा। श्रीभगवान का दिया हुआ यह रत्नत्रय जो समस्त दैन्य दुविधाओ को विनाश कर शीघ्र ही महादीन-हीन-पतित को शीघ्र श्री भगवान के पास ला श्री भागवती सम्पत्ति एव सुख शान्ति से पूर्ण कर देता है। वह मानव पूर्ण को प्राप्त कर पूर्ण हो जाता है। श्रुति कहती है

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

बस! केवल एक पूर्ण ही पूर्ण! आरभ और अवसान, दोनो ही मे पूर्ण है वह।

*

श्री भगवान की आज्ञा

यज्ञ दान तप कर्म न त्याज्य कार्यमेव तत्।
यज्ञो दान तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम ॥

(गीता अ० १८ श्लोक ५)

यज्ञ, दान तथा तप रूप कर्म छोडने योग्य नहीं हैं, किन्तु वह निस्सदेह करना कर्तव्य है। क्योकि यज्ञ, दान और तप बुद्धिमान पुरुषो को पवित्र करते हैं। उपर्युक्त श्लोक में तीन कर्म बताए गए है—यज्ञ, दान और तप। उपनिषद् में भी हमे यह उपदेश प्राप्त होता है। समस्त सद्गुणो से सम्पन्न एव वेद शास्त्र प्रतिपाद्य आचरण से जीवन बिताने वाले ब्राह्मण उस सच्चिदानन्द भगवान—परात्पर ब्रह्म को जानने की इच्छा से यज्ञ, दान और तप करते थे। श्रुति मां इन शब्दो में कहती है

त ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा ॥

यह सभी जानते हैं कि गीता वेदो का सार है। उपनिषद् रूपी गौओ से ग्वाला गोपाल श्री कृष्ण ने श्री गीता रूप दूध निकाला, जो अनुपम अमृत है। इसीलिए उपर्युक्त दोनो ग्रन्थों मे बहुत साम्य है।

अब विचार कीजिए कि श्री भगवान के बताए हुए इन कर्मों के करने से फल क्या प्राप्त होता है? श्रीभगवान का वचन है कि बुद्धिमानो को ये कर्म पवित्र करने वाले हैं।

अहा! कितना बडा फल है इसका! बुद्धि यदि ठीक हो तो सब ठीक है। बुद्धि नष्ट होने पर सब कुछ नष्ट है। श्री भगवान कहते हैं

बुद्धिनाशात प्रणश्यति ॥

बुद्धिनाश ही हमारा सर्वनाश है। उल्टी बुद्धि हो जाने पर, हमें सब कुछ उल्टा ही (विपरीत ही) दीखता है:

बुद्धि विपरीत सकल विपरीता।
मित्र शत्रु अघ होहिं पुनीता। (दिव्य कथामृत)

बुद्धि की पवित्रता का महत्त्व तथा बुद्धिबल की अपार

महिमा, हमारे ऋषि गण भली भाँति जानते थे। उन पूज्य मुनियो का यही महाम त्र था

धियो यो न प्रचोदयात ।।

श्रीभगवान से वे पवित्र अ त करण से एव नित्य नियमित रूप से प्राथना करते थे —हे भगवान, हमारी बुद्धि स मार्ग मे लगे। हमारी बौद्धिक शक्ति का अखण्ड प्रवाह आपकी तथा आपके द्वारा की हुई सृष्टि, चराचर विश्व, की निष्काम सेवा मे अपित हो। अच्छा बुरा विचारने की शक्ति का नाम बुद्धि है। श्री भगवद्दशन या आत्म-साक्षात्कार, अपना अभ्युदय एव किसी भी प्रकार के लोकोपकारक आचरण बुद्धि से ही सभव हैं। श्री भगवान कृपा कर हमे बुद्धि प्रदान करते हैं और उस बुद्धि द्वारा हम श्री भगवान को प्राप्त करते है। श्रीमुख का यह वचन है

ददामि बुद्धियोग त,
यन मामुपयान्ति ते ।।

मैं उसको बुद्धियोग देता हूँ जिसके द्वारा वह मुझे प्राप्त कर लेता है।

इस बुद्धि शक्ति का निवास सभी प्राणियों मे सदा और समान रूप से है।

या देवी सवभूतेषु बुद्धिरूपेण सस्थिता ।।

(दुर्गा सप्तशती)

जो महाशक्ति सब प्राणियो मे बुद्धि रूप से रहती है।

तथापि पात्र भेद से उसका स्वरूप अलग अलग दीखता है। मल, विक्षेप तथा आवरणादि दोषो ने बुद्धि को मलीन एव विषयो मुखी बना रखा है। सदबुद्धि पवित्र बुद्धि—का क्या लक्षण है ? श्री भगवान वणन करते हैं

प्रवृत्ति च निवत्ति च,
कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्ध मोक्ष च या वेत्ति,
बुद्धि सा, पाथ, सात्त्विकी ॥

(गीता अ० १८ श्लो० ३०)

हे पाथ, प्रवत्ति माग (गृहस्थी मे रहते हुए फल और आसक्ति को त्याग कर श्री भगवान के लिए ही लोक शिक्षा के लिए राजा जनक की भाति वर्तन करने का नाम प्रवृत्ति मार्ग है) और निवृत्ति को (देहाभिमान को त्याग कर केवल सच्चिदानन्द घन भगवान मे एकीभाव से स्थित हुए श्री शुकदेव और सनकादिकों की भाँति ससार से उपरत होकर विचरने को निवत्ति मार्ग कहते हैं) कतव्य और अकतव्य को, भय और अभय को तथा बन्ध और मोक्ष को जो बुद्धि, तत्त्व से वास्तविक रूप से, जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है। ऐसी सोच विचार वाली जो बुद्धि है वही हमारी बुद्धि है जो साक्षात आद्याशक्ति सर्वेश्वरी जगदम्बा का स्वरूप है। हमे बौद्धिक क्षेत्र विज्ञान मे या कला कौशल मे बहुत ऊँचे पहुँचकर भी सुख शान्ति नही मिलेगी जब तक श्री भगवान के कथनानुसार हमारी बुद्धि न बन जाए। उपयुक्त तीनो कर्म यज्ञ, दान और तप इस बुद्धि को पवित्र करते है।

अहा ! बन्धुओ, जिसे हमे पाना है, जिसकी खोज मे हमारी समस्त जीवनयात्रा चल रही है, उसकी उपलब्धि-साक्षात्कार एव दशन—बुद्धि से ही सभव है। श्रुति कहती है

दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया
सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि ॥

निमल, तपश्चर्यादि से पवित्र तथा श्री भगवान की परम अनुरागिनी बुद्धि के द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्मतम आत्मा को मनीषी देखते हैं।

हम सब भी श्री भगवान की आज्ञास्वरूप यज्ञ, दान और तप रूप महाव्रत का पालन करना शुरू कर दें जिससे हमारी बुद्धि पवित्र हो और हम श्री भगवान को प्राप्त कर अपनी जीवन यात्रा सफल करें।



यज्ञ

अति सक्षेप मे इन तीनो कर्मों (यज्ञ, दान और तप) का दिग्दर्शन कराया जाता है।

सर्व प्रथम भगवान हमे यज्ञ करने का आदेश देते हैं। सभी कामो के पहले श्री भगवान की पूजा प्रार्थना की जाती है, इसी प्रकार इन तीनो कर्मों के आरम्भ मे हमे श्री भगवान के अभिन्न स्वरूप यज्ञ का अनुष्ठान करना है। ऋषि कहते है

भगवान् यज्ञपुरुष ॥

श्रीभगवान और यज्ञ अभिन्न है। गीता में लिखा है

तस्मात्सर्वगत ब्रह्म नित्य यज्ञे प्रतिष्ठितम ॥

अर्थात् वह सर्वव्यापक ब्रह्म यज्ञ मे नित्य प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार मनु भगवान ने भी अनेको प्रकार के यज्ञो का विधान तथा फल बताया है। यज्ञ वास्तव मे अनिवार्य है। यह सृष्टि एक यज्ञ स्वरूप ही है। इसमे केवल मधुर ही नही, कटु भी, जैसे युद्ध को भी, यज्ञ ही माना है विद्वानो ने।

सभी धर्मावलम्बी महानुभावो ने यज्ञ की बडाई गाई है। प्राय सभी यज्ञो मे देश, काल, पात्र तथा द्रव्य की आवश्यकता रहती है। सभी भाई बहिनो की एक-सी परिस्थिति नही रहती है। यज्ञ यदि द्रव्य साध्य होगा तो उसे सर्वसाधारण व्यक्ति कैसे कर सकेगा ? अथवा द्रव्यसम्पन्न होते हुए भी जो शारीरिक या

मानसिक क्षमता से हीन हैं एव जो यज्ञ के आवश्यक नियम पालन का सामर्थ्य नही रखते, ऐसे जीव तो यज्ञ रूप महाशुभ पुण्य से वचित ही रह जाएँगे। अत वह मानव होते हुए भी श्री भगवान की आज्ञा का पालन न कर सकेगा। यह तो अत्य त शोचनीय बात हुई। पर तु श्री भगवान तो 'सुहृद सर्वभूतानाम्' है, अर्थात प्राणीमात्र के मित्र हैं। वे प्रभु ऐसी साधना या यज्ञ का उपदेश नही करेंगे जिसका साधन सर्वसाधारण न कर सकें। उस प्रभु का सब काम "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" ही होता है।

ब धुओ ! अधैय मत लाओ, देखो श्री भगवान के श्री वचन। वे कृपालु प्रभु यज्ञो मे जप यज्ञ को अपना स्वरूप बतलाते हैं। जैसे सारी श्रेष्ठतम विभूतियो को भगवान ने अपना रूप बताया है, वैसे ही जप को अपना ही स्वरूप कह कर श्री भगवान ने इसे सर्वश्रेष्ठ यज्ञ माना है

"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ॥"

(यज्ञो मे मैं जप यज्ञ हूँ)

अहा ! कितना सरल और कैसा सुलभ यज्ञ श्रीभगवान ने हमे बताया। महत्ता का तो कहना ही क्या ! स्वय श्री भगवान अपना रूप बताते हैं। बस ! ब धुओ ! श्री भगवान ने ही यज्ञ की आज्ञा की और श्री भगवान ने ही उसका विधान भी बताया। अब निश्शक तथा निभय होकर श्री भगवान का नाम लो। जप की अपार महिमा है। श्री भगवान शकर आज्ञा करते हैं

"जपात् सिद्धि जपात् सिद्धि ॥"

जप से ही सिद्धि अर्थात् इष्ट प्राप्ति होती है। जप का नियम केवल जप करना है। मन जप से बचने के लिये युक्ति, प्रक्रिया, प्रमाण एव विधि-विधान की छान बीन मे लगा रहता है। उच्च-स्वर से या मन ही मन, जिसमे तुम्हारा मन सुगमतापूर्वक जप कर सके, जप करना चाहिए। हमारा लक्ष्य नामस्मरण करना हो, न कि शुष्क विधि विधान मे अमूल्य समय नष्ट हो जाय। नाम एव श्री गुरु प्रदत्त मत्र स्मरण को ही जप कहते हैं। हम मे विश्वास की कमी है, इसीलिए श्री भगवान की सहज दयालुता, जीववत्सलता तथा सवज्ञता का पूण भाव हमारे हृदय मे प्रकट नही होता। सभी अन्य साधनाओ की आशा छोड दो। केवल श्री भगवान का नाम लो। सभी अवस्था मे नाम लो। इन्द्रियो द्वारा प्रत्येक कतव्य कम को निभाते हुए, श्री भगवान को पुकारो। तुम्हे प्रत्युत्तर मे अनुपम और अगाध शक्ति का स्रोत मिलेगा। सवसतापहारी भगवान तुम्हारे सरक्षण का सब भार अपने हाथो में ले लेंगे। वे दयालु विश्वम्भर तो भूले-भटके जीव की भी रक्षा करते हैं। भक्त की रक्षा तो होती ही है, साथ ही वह भाग्यशाली भक्त श्री भगवान को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है।

बहुत से लोग पूछते हैं कि श्री भगवान कैसे मिलेंगे ? उनकी प्राप्ति का क्या साधन है ? बन्धुओ ! श्री भगवान हैं, ऐसा समझ कर केवल भगवान भगवान जपो। वे आदिगुरु श्री भगवान सब रहस्य समझा देंगे। अनेको विद्वान यह प्रश्न करते हैं कि ईश्वर क्या है ? कही-कही पर बडा विवाद भी हो जाता है, परन्तु सर्वोत्तम उपाय तथा उत्तर उसके जानने तथा प्राप्त करने का यही है कि चित्त शुद्ध कर एकाग्रतापूवक ईश्वर-ईश्वर रटो, यह निर्विवाद सत्य समझो कि शीघ्र तुम्हें ईश्वर तत्त्व समझ मे आ जाएगा।

केवल नाम के लिए ही नाम लो। श्री नाम भगवान की उपस्थिति मे कोई अभाव तथा सताप नही है। बगीचा फल के लिए लगाया जाता है किन्तु लकडी हमें स्वत फल के साथ मिल जाती है। इसी प्रकार श्री भगवान का नाम उन्ही के लिए या श्री प्रभु के अन्यतम स्वरूप श्री नाम के लिए ही लो, इससे अनायास लौकिक तथा पारलौकिक सुख तुम्हे मिलेगा। अन्य सासारिक सुख के लिए नाम-जप तो ऐसा ही है

गुजा गहई परस मणि खोई।

अर्थात् पारस मणि को खोकर गुजा (एक जगली वस्तु) को बटोरता है। नाम से अधिक श्रेयस्कर पदाथ तीनों लोक मे नहीं है। सभी आचाय चरण आज्ञा कर गए है।

"नामस्मरण ही सब सुख शान्ति का अमोघ साधन है।" इस विषय मे जो ज्यादा जानना चाहे वे महानुभाव वेद, पुराण तथा सत वाणियो को देखें। सब का मत यही है

न नाम सदृशो यज्ञ ।

नाम के समान कोई यज्ञ नही है



दान

परोपकाराय सतां विभूतय ॥

सज्जनो की सम्पत्ति दूसरो की भलाई के लिए ही है।

श्री भगवान की दूसरी आज्ञा दान करने की है। दान से ही हमे वास्तविक वैराग्य का भाव आता है। दान से द्रव्य मोह कम होता है। अर्थोपार्जन की तीव्र लालसा हमे बडे अनुचित कर्म करने को बाध्य कर देती है। लोभ, तृष्णा, ही सब अनर्थों की जड है। ईश्वर सब प्राणियो मे है, इस भाव की वृद्धि भी दान से होती है। दान से दुर्गतियो का नाश होता है। वेदो मे लिखा है

श्रद्धया देयात्। भयात् देयात।

(श्रद्धा से दान करो, भय से दान करो)

श्री गोसाईं जी महाराज कहते हैं

येन केन विधि, दिए दान कल्याण।

किसी प्रकार भी दान करो, उससे कल्याण होगा। मैं भी कभी कभी साधक वर्ग से कहता हूँ —"मन विषयो मे, तन दफ्तर मे और धन बैंक मे सुरक्षित रखा रहे और भगवान हमारी सभी मन कामनायें पूरन करते चलें"—ऐसी मनोवृत्ति से हम मानव धर्म कर्म नही कर पायेंगे। ईश्वर बडे दयालु हैं, इसमे तो कोई सन्देह नही, परन्तु उनकी दया भी कर्म की अपेक्षा रखती है

सकल पदारथ हैं जग माही।
कर्महीन नर पावत नाही ॥

इस ससार मे सभी वस्तुये हैं परन्तु कमहीन जीव प्राप्त नही कर सकता ।

और भी—

कम प्रधान विश्व करि राखा ।
जो जस करै सो तस फल चाखा ॥

इसी प्रकार अन्यत्र भी शास्त्रकारो ने कहा है

अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कम शुभाशुभम् ॥

अर्थात् किया हुआ कम, शुभ वा अशुभ, अवश्य भोगना पडेगा । एव श्री भगवान भी कहते है

काल रूप मैं तिन्ह कर ताता ।
शुभ अरु अशुभ कम फल दाता ॥

हे तात, शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल देने मे मैं काल रूप हूँ । अत शीघ्र हम अपने कर्मों की शुद्धि करे । शुद्ध एव श्रेयस्कर कम वही है, जिसे श्री भगवान ने हमे बताया है । दान करते समय यह भी देखना चाहिए कि हमारी स्थिति कैसी है । दान अपनी योग्यता के अनुसार ही करना अच्छा है । यदि हमारी दानशीलता से हमारे कुटुम्बी जन दु खी हैं तो वह दान भी कुकम है । दानशीलता हमे अपने घर से ही शुरू करनी चाहिए । घर से लेकर सारी दुनिया की हम सेवा करें यही हमारा लक्ष्य हो परन्तु स्थिति का ध्यान रहे । साथ ही, दान मे शास्त्रकारो ने यह भी आज्ञा की है कि 'वित्त शाठ्य' न होने पावे । अर्थात शक्ति एक रूपया की है और वहा एक पैसा ही देकर अपना पिण्ड छुडा लिया । समाज मे एसे विचार वाले व्यक्ति भी हैं जिन्हे आदर सत्कार तो खूब चाहिए, अपने विलासी जीवन के

कि जो व्यक्ति सर्वस्व दान करता है, उसके लिए स्वर्ग से विमान आता है। उसी श्रोता मण्डली में एक घसियारा भी था। वह रोज घास बेचकर अपनी उदरपूर्ति करता था। उसके पास केवल एक खुरपा तथा घास रखने की एक टोकरी थी। कथा समाप्त होने पर उसने सोचा कि हमारे पास यही सर्वस्व है। मैं इसी को दान कर दूँगा। दान करते ही स्वर्ग से उसके लिए विमान आया। इस दान के प्रभाव से वह घसियारा सदेह स्वर्ग को चला गया।

यह बात सारे नगर मे फैल गई, इसकी खबर वहा के राजा के पास भी पहुँची। राजा ने शीघ्र ही लाखो खुरपा तथा टोकरिया बनवाकर दान किये, किन्तु स्वर्ग से विमान नही आया। राजा क्रुद्ध हो गया और उसने पण्डित जी को बुलवाया। राजा ने कथावाचक जी से पूछा कि आपने बताया है कि खुरपा दान से मनुष्य सदेह स्वर्ग को चला जाता है। एक घसियारे के लिये विमान आया भी है। उसने तो सिर्फ एक खुरपा और एक टोकरी का ही दान किया था। परन्तु मैंने लाखों खुरपा और टोकरियाँ दान किये, फिर भी स्वर्ग से विमान नहीं आया। इसका क्या कारण है? पण्डित महोदय ने कहा कि, राजन्! खुरपा दान से उसे स्वर्ग नही मिला है। उसने सर्वस्व दान किया है। यदि आप भी अपना सर्वस्व (राज्य) दान करें तो निश्चय आपके लिए भी विमान आयेगा। इस उत्तर से राजा को समाधान हो गया। श्री गुरु नानक देव ने भी लिखा है

ऐरन की चोरी करै, करै सुई को दान।
ऊँचे चढि देखा करै, कब आव विमान॥

अपनी शक्ति के अनुसार, ईश्वर निमित्त देश, काल और पात्र को देखकर जो बिना किसी प्रत्युपकार की भावना से दान

किया जाता है, वही श्रेयस्कर दान है। श्री भगवान हैडाखान वाले बाबा ने इस प्रसग मे एक वार्ता कही थी जो साधको के लिए अत्यन्त उपयोगी है। अत यहाँ सक्षेप मे उद्धत की जाती है

एक धनवान सज्जन थे। आयु अधिक बीत जाने पर उन्हे परमार्थ विषयक जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उन्होने सोचा कि मेरे पीछे मेरे पुत्र क्या करेंगे? उनमे सदबुद्धि है या दुबुद्धि, इसका भी निणय हो जाना चाहिये। यदि मेरे पुत्र दुर्बुद्धिवश अनुचित कम करेंगे तो धन और धम दोनो नष्ट हो जायेंगे, जिसका परिणाम बडा ही भयानक होगा। इन सपत्तिओ का अधिकारी ऐसा हो जो इन वस्तुओ को प्राप्त कर इस लोक तथा परलोक मे भी शान्ति प्राप्त कर सके। ऐसा विचार कर उस धमनिष्ठ धनवान ने अपने बडे लडके को पास बुलाया, उसे सब सम्पत्तियो का स्वामी बना दिया, और कहा कि यह चल-अचल जितनी सपत्ति है सब तुम्हारी है। तुम इसका उपभोग स्वेच्छापूवक करो। एक वष के बाद मैं आऊगा। तुमसे सब सम्पत्ति ले लूगा और तुमको धक्का देकर नदी मे बहा दिया जायगा। यदि तुम नदी पार भी कर गए तो उस पार के जगली हिंसक जीव तुम्हे खा जायेंगे। सावधान! मैं अब जाता हू तुम जसा उचित समझो, इन वस्तुओ का उपयोग करो। ठीक एक वष के बाद मैं आऊगा।

इस प्रकार समझा कर वे धनी सज्जन तीर्थाटन को चले गए। सभी सपत्ति का एक मात्र अधिकारी बन जाने पर लडके ने विचार किया कि वष दिन के पश्चात् तो मुझे मरना है ही फिर खूब जी भर कर मौज शौक क्यो न कर लें? जल्दी से जल्दी सब वस्तुओ को बेचकर क्यो न पूर्ण विलासमय जीवन बितायें? मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसे ही साथी भी मिल जाते हैं।

यहाँ भी ऐसा ही हुआ। चाण्डाल चौकडी जमा होने लगी। कुछ ही दिनो मे वह कुसग के कारण बडा कुकर्मी तथा सत्पथ से भ्रष्ट हो गया। वष पूण होने पर वे सज्जन तीर्थाटन कर घर आए। अपने लडके की दशा देखी। स्थिति से अवगत होते उन्हे देर न लगी। उसकी दुदशा पर उन्हे खेद हुआ। पूव आदेशानुसार उसे नदी मे धकेल दिया गया और उसी भीषण नदी मे उसका प्राणान्त हो गया। दूसरे लडके को भी उसी प्रकार समझा कर तथा सब सपत्ति सौंपकर वे वृद्ध सज्जन पुन तीर्थाटन को चले गए। वह दूसरा लडका भी मूख था। उसने भी अपने बडे भाई का सा ही काम किया। उस लडके ने भी विषय-विलास मे ही अपना धन, आयु तथा समय गवाया। ठीक निश्चित तिथि पर वे वृद्ध सज्जन तीर्थाटन से लौटे। दूसरे लडके की दशा भी वैसी ही पूववत् थी। सपत्ति नाश से अधिक उनको इस बात का दु ख था कि मेरे इन दोनो पुत्रो ने अमूल्य मानव जीवन व्यथ मे नष्ट कर दिये। अन्त मे वे सज्जन अपने तीसरे पुत्र को भी सब अधिकार तथा सपत्ति देकर यह कह गए कि तुम्हारी भी यही दशा होगी, जसी तुम्हारे दोनो भाइयो की हुई। मैं अब जाता हूँ। तुम स्वेच्छापूवक समय एव सम्पत्ति का उपयोग करो। यह कहकर वे धनाढय सज्जन यात्रा को चले गये।

इधर लडका विचार करने लगा कि मेरी भी वही दशा होगी जो हमारे दोनो बड भाइयो की हुई है। समय केवल एक वष का है। बडा कृपण बनकर समय का सदुपयोग करना चाहिए। समय एव सपत्ति का सदुपयोग तभी सभव है जब सग पवित्र हो क्योकि—

सगात सजायते काम । (गीता)

अत पवित्र कम तथा श्री भगवान की पूजा-प्रार्थना मे ही समय लगाया जाय। ऐसा शुभ सकल्प कर, उसनें बडे बडे योग्य साधक, सत तथा विद्वानो को अपने यहा आमन्त्रित किया। रात दिन उन्ही के सग मे अपना समय लगाने लगा। सत्सग का रङ्ग चढ गया। साधन-भजन तीव्र गति से होने लगा।

एक दिन उसके मन में आया कि नदी पर पुल बनवाया जाय। पुल बन जाने पर, उस पार घोर भयानक जगल मे मगल होने लगा। उस निजन भयानक वन मे मन्दिर महल आदि सब राजसी वैभव एकत्र होने लगे। अब भयानकता वहा नाम मात्र को भी नही थी। विद्यालय मे उच्चकोटि के स्नातक गरण उप-स्थित थे। जैसा वैभवसम्पन्न स्थान इस पार था, वैसा ही सब सुख सुविधाओ से पूण स्थान (आश्रम) उस पार भी बन गया। अपने वचनानुसार वे महानुभाव एक वष बाद फिर वहीं आए। परन्तु इस बार उन्हे बडा सतोष हुआ। उन्होने देखा कि यह लडका तो बहुत प्रसन्न तथा भगवतपरायण है। वृद्ध ने आश्चय से पूछा कि क्यो तुम्हे मृत्यु का भय नही है? सबसे छोटे लडके ने विनीत शब्दो मे उत्तर दिया 'पिताजी! आपकी तथा श्री भगवान की कृपा से मुझे सदबुद्धि मिली। मैंने ,नदी मे पुल बनवाया और उस पार भी ऐसी ही रचना है। अत मैं नित्य प्रतीक्षा करता था कि कब पिताजी पधारे और मैं यह स्थान उनको सौंपकर शीघ्र उस नवीन स्थान को चला जाऊं'। यह सुनकर वृद्ध महानुभाव गदगद हो गये। अपने हृदय से उस पुत्र को लगाकर आशीर्वाद दिया और कहा कि यहाँ और वहाँ जो कुछ है सब तुम्हारा है। मुझे यही कहना था कि यहाँ के वभव मे लिप्त होकर, पारलौकिक पदाथ का त्याग मत कर। सत्कम - शील व्यक्ति के लिये, इस लोक मे और परलोक मे सवत्र सुख ही सुख है। इस दृष्टान्त से हमें प्रेरणा मिलेगी कि हम ऐसा

ही शुभ कर्म —दान धर्म करें जिससे हमारे लोक और परलोक दोनो सुधरें।

हमारे हृदय मे दान की भावना होनी चाहिए, उसके प्रत्युत्तर मे हमे प्रकृति से बडा पुरस्कार मिलेगा। जब से समाज मे सेवा का भाव गौण और स्वार्थमूलक भाव मुख्य हो गया है, तभी से समाज का स्वरूप विकृत—अव्यवस्थित हो गया है। श्री भगवान के लिये, मानवता के लिये, मातृभूमि के लिये, साधना, साहित्य तथा समाज के लिये, जो बन सके उतना अवश्य दान करो। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति बिना किसी को दिये खिलाये खाता है, वह अन्न नही खाता है। वह पाप ही खाता है। सब से श्रेष्ठ और सरल दान है—नाम स्मरण—नाम संकीर्तन। उच्च स्वर से नाम स्मरण—कीर्तन का प्रभाव अन्य प्राणियो पर भी पडता है। वे मूक एव पामर प्राणी भी इस 'नाम' दान से लाभान्वित होते हैं। शास्त्र मे कहा है

न नामसदृश दानम्।

(नाम के समान कोई दान नही है।)



तप

श्री भगवान की तीसरी आज्ञा है तप करने की। जैसे यज्ञ और दान अनेको प्रकार के है, वैसे ही तपश्चर्या के विषय मे भी समझो। सभी धर्माचार्यों ने आध्यात्मिक साधनाओ मे तप को एक विशिष्ट स्थान दिया है। देवर्षि नारदजी ने श्री माता पार्वती जी को तपश्चर्या के उपदेश देते हुए, तपश्चर्या की अपार महिमा बतायी है। उन्होने कहा है कि तप से ससार मे कुछ दुर्लभ नही है। सम्पूर्ण सृष्टि तप के आधार पर है। श्री ब्रह्मा जी तप के प्रभाव से ही सृष्टि की रचना करते है। श्री विष्णु भगवान तप के बल से ही अनन्त सृष्टि पालन करते है तथा भगवान श्री शकर तप के बल से ही अन्त मे इस सृष्टि का सहार करते है। तप वास्तव मे श्री भगवान स्वरूप ही है। श्री भगवान को प्राप्त करने का जो साधन है उसे भी तप कहते हैं। उपनिषद् मे स्पष्ट लिखा है

"तपो ब्रह्मेति" अर्थात तप ही ब्रह्म है।

"तपसा ब्रह्म विजज्ञासस्व' अर्थात् तप से ही ब्रह्म को खोजो।

श्रुति के इन मन्त्रो का भाष्य करते हुए श्री शकराचार्य जी कहते हैं कि मन और इन्द्रियो की एकाग्रता को ही परम तप कहते हैं। ऐसे ही वेद, इतिहास तथा पुराणो मे तप-अनुष्ठान के बहुत से नियम हैं। उन सब बातो को इस लघु पुस्तिका मे देना असभव है। अत यहाँ केवल गीता प्रतिपाद्य तप के विषय मे ही अति सक्षिप्त रूप से विचार किया जाता है।

शब्द सुनने मात्र से हम चक्कर मे पड जाते हैं। तप शब्द हमे बडा-भयानक मालूम पड़ता है। तपश्चर्या का अर्थ सर्व-

साधारण यही समझता है कि घर द्वार छोडकर वनवासी होने पर ही तप कर सकते हैं। तपस्वी का अर्थ गृहत्यागी, साधु, सन्यासी समझा जाता है, परन्तु ऐसा नही है। श्री भगवान ने हमे तप का विधान बताया है। केवल हमारे मन मे तप के प्रति आदर भाव चाहिये। हम तीव्र उत्कण्ठा से इस महा पवित्र एव परम कल्याणकारी साधन को अपनायें। हमे घर, परिवार तथा धधा रोजगार कुछ छोडना नही है। छोडना है कुसग, आलस्य, प्रमाद, दुर्व्यसन तथा अति स्वार्थमयी प्रवृत्ति। श्री भगवान ने यह तप विधि अपने परम कृपापात्र शिष्य अर्जुन को बतायी है। श्री कृष्ण सखा भक्त अर्जुन गृहस्थ ही थे और आजीवन गृहस्थ ही रहे। परन्तु श्री भगवान की आज्ञा स्वरूप तप वे सदा करते रहे। फिर हम क्यो नही कर सकते है ? बस ! इतनी ही कसर है कि हमारे मन मे इस श्रेयस्कर साधन तपश्चर्या के महत्त्व समझ में आ जाये। यदि हम दृढ निश्चय कर ले तो श्री भगवान की कृपा से हमे बल प्राप्त होगा, जिस बल से हम सब काम व्यवहार करते हुए भी तपस्वी जीवन बिता सकते हैं।

श्री भगवान ने प्रथम शारीरिक तप बताया है। श्री भगवान आज्ञा करते हैं कि—हे अर्जुन ! देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानी जनों का पूजन, (आज्ञा पालन ही सर्वश्रेष्ठ सेवा पूजा है) एव पवित्रता (पवित्रता तीनो प्रकार की चाहिए—शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक), सरलता, ब्रह्मचर्य (श्री मनु महाराज ने ऋतु गामी गृहस्थ को भी ब्रह्मचारी जैसा ही माना है। लोकोक्ति भी है—"एक नारी सदा ब्रह्मचारी")। ब्रह्मचारी को कुछ न कुछ शारीरिक श्रम अवश्य करना चाहिये। इस समय 'परिवार नियोजन' की बहुत सी बातें कही जाती है, परन्तु सभी उपायो में श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य साधन ही है। अन्य उपाय तो समाज को अधिक उच्छृखल बनायेंगे। आयु, आरोग्य, सुमेधा तथा तेज इन सब

की रक्षा ब्रह्मचय से होती है। ब्रह्मचय प्रतिष्ठा के बाद एक ओज बनता है। उस ओज का आधार लेकर ही कोई साधक प्रतिकूल विचारो से दूर रह सकता है।) और अहिंसा (मन, वाणी और कम से किसी प्राणी को दु ख न देना अहिंसा है। परतु हमारे परम शान्त वीतरागी शास्त्रकारो ने यह आज्ञा दी है कि जो हमारे आततायी है उन्हें मार देने मे कोई पाप नही है, उनका तो अवश्य ही स्वत या सगठित होकर नाश कर देना चहिए। आततायी ६ प्रकार के माने जाते है १–आग लगाने वाला, २–विष देने वाला, ३–शास्त्रो को नष्ट करने वाला, ४–धनापहारी, ५–भूमि हरण करने वाला, ६–दूसरे की स्त्री का अपहरण करने वाला। भगवान श्री मनु की आज्ञा है कि **नाततायिवधे दोष ॥**) । यह शरीर सम्बन्धी तप है। जिन शब्दो से सुनने वाले को उदवेग (अशान्ति) न हो और जो प्रिय एव हितकारी हो और जो वेद शास्त्रो को पढने का एव परमात्मा का नाम जपने का अभ्यास है, उसे वाणी सम्बन्धी तप कहते हैं। महर्षि पतजलि ने लिखा है **"स्वाध्यायादिष्टदेवतासप्रयोग ।"** अर्थात् केवल स्वाध्याय से इष्ट साक्षात्कार होता है। इस सूत्र के भाष्य मे महर्षि व्यास लिखते हैं **"मोक्षशास्त्राणां अध्ययन प्रणवजप वा ।"** मोक्ष शास्त्र उपनिषद् गीता, दशन, भागवत तथा रामायणादि ग्रथो का अध्ययन या प्रणव (ॐ राम, कृष्ण, शिव, शक्ति, गणेश, सूय तथा जो अपना गुरुमन्त्र हो) का जप ही सच्चा स्वाध्याय है।

अब मानसिक तप का स्वरूप देखिए। मन की प्रसन्नता तथा शान्त भाव एव श्री भगवान के नाम रूप गुणों का चितन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और हृदय की पवित्रता, यह मन सम्बन्धी तप कहा जाता है। मानसिक प्रसन्नता किसे मिलती है? इसका भी हमे महर्षि पतजलि आदेश करते है

मैत्री करुणा मुदितोपेक्षणा सुखदु खपुण्यापुण्यविषयाणा भावनातश्चित्तप्रसादनम ।। यो १ । १३ ।।

अर्थात् सुखी मनुष्यो मे मित्रता की भावना करने से, दु खी मनुष्यो मे दया की भावना करने से, पुण्यात्मा पुरुषो मे प्रम नता की भावना करने से और पापियो मे उपेक्षा की भावना करने से चित्त स्वच्छ हो जाता है। चित्त को राग द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और क्रोध आदि मलो ने मलीन कर रखा है। निमल चित्त मन स्वत विवेकसम्पन्न तथा सुखरूप है।

ब धुओ ! कितना सरल तप श्री कृष्ण ने हमारे लिए बताया है। उत्साह से, श्री भगवान की सवजनीन अहैतुकी कृपा पर विश्वास रखते हुए, इस कृष्णोपदिष्ट महाशा ित सुख दाता तप का आचरण करो। जैसे यज्ञ से नाम जप श्रेष्ठ है। नाम दान के समान अ य कोई दान नही है। उसी प्रकार परम तपस्वी वही है जो शुद्ध हृदय से, निष्काम भाव से तथा अपना कतव्य कम करते हुए, श्री भगवान के पवित्र एव मङ्गलकारी नामो का नित्य निरन्तर जप स्मरण करता है। शास्त्राकारो ने ऐसा ही कहा है

न नामसदृश तप ।

(नाम के समान तप नही है ।।)

* * *

पाठको से निवेदन

श्री भगवान ने बार-बार अर्जुन को कम करने की आज्ञा दी है। अवश्य ध्यान रहे कि हमारी बुद्धि कर्मानुसारिणी है, अर्थात कम के अनुसार ही बुद्धि बनती है। कथनानुसारिणी बुद्धि नही है, अर्थात् जसी हम बात करते हैं वसी बुद्धि नहीं बनेगी, और बुद्धि श्रवणानुसारिणी भी नही है अर्थात हम सुनी-सुनायी बातो से अपनी सद्बुद्धि निर्माण करे, यह भी असभव है। अत हम

शीघ्र से शीघ्र उठें, जागे और अपने से विद्या, बुद्धि, तप तथा सत्कर्म मे जो व्यक्ति श्रेष्ठ है, उनसे अपने कल्याण की बात समझे सीखें ।

इसलिए भी हमें जल्दी करनी है, क्योकि यहा की आयु, वैभव तथा सुख सामग्री आदि सब चलायमान है। पता नही कब हमारे ये परिकर (साथी) हमे छोड चले। अत सावधान हो जाओ ! तुम अपनी संस्कृति, स्वभाव, संस्कार, शास्त्र तथा पूर्वजो के बताए हुए मार्ग से ही श्री भगवान की आज्ञा पालन करो। श्री भगवान की आज्ञा के पालन के लिए तुम कटिबद्ध हो जाओ, सत्पथ पर चलने की शक्ति अवश्य ईश्वर देंगे। श्री भगवान की आराधना एव उपासना अपने विहित सत्कर्म से ही सुलभ है। श्री गीता मे लिखा है

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ॥

श्री भगवान की प्राप्ति रूप सत्कर्म मे प्रथम वह कर्म विष के समान मालूम पडता है परन्तु परिणाम उसका अमृत के समान है। यही कारण है कि सब की प्रवृत्ति इन शुभ कर्मों मे नही होती। परन्तु अन्य कोई मार्ग नही है, जिसके द्वारा हम कल्याण मय आनन्दमय जीवन बिता सके । सर्वसतापहारी सर्वेश्वर को प्रसन्न करने के लिये या उसकी प्राप्ति रूपा सिद्धि प्राप्ति के लिये स्वकर्म ही एकमात्र उपाय है।

बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हें कर्म तथा भक्ति अच्छी नहीं लगती। वे ज्ञान को उच्च पद देते हैं। परन्तु यह अवश्य ध्यान देने की बात है कि केवल बातो से शुभकर्महीन जीवन मे कभी भी ज्ञान का उदय नही होगा। साफ शब्दो मे कठोपनिषद् मे लिखा है

जो चरित्रवान नहीं है, जो वैराग्यवान नहीं है, उसे प्रज्ञा (ज्ञान) प्राप्त नही हो सकता। पूज्य गोस्वामी जी कहते हैं

वादि वसन बिनु भूषण भारू ।
वादि विरति बिनु ब्रह्म विचारू ।।

स्त्रियो के पास बहुमूल्य भूषण हो, परन्तु वस्त्र न होने पर वह भूषण भी उसे भार ही प्रतीत होता है। ऐसे ही ब्रह्म विचार के साथ यदि वैराग्य नही है तो ब्रह्मविद्या एव ब्रह्मविचार व्यर्थ है।

आज जो समाज की दशा है उसे हमारे ऋषि मुनि अच्छी तरह जानते थे। रामायण देखिए

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौडी लागि लोभ बस करहिं विप्र गुरु घात।।

अर्थात् कलियुग के स्त्री पुरुष ब्रह्मज्ञान (कर्म और उपासना से रहित) के सिवाय और बात न करेंगे। परन्तु एक कौडी के लिये (ऐसे चमडी और दमडी के भक्त) ब्राह्मण और गुरु की भी हत्या करेगे। महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखा है-कि

कलौ वेदान्तिन सर्वे
फाल्गुने बालका इव ।।

कलिकाल मे ऐसे वेदान्तवादी होंगे जैसे फाल्गुन मास मे बालक गण उल्टा सीधा प्रलाप करते हैं।

बहुत से धर्मात्मा स्त्री पुरुष नाना प्रकार की सिद्धियो की बाते सुनकर उनके पीछे उन्मत्त से रहते हैं। वे समझते हैं कि ये दिव्य विभूतियाँ एव सासारिक अभ्युदय (उन्नति) का कोई मन्त्र, तन्त्र तथा यन्त्रादिक साधन होगा, जिसे प्राप्त करने पर सब मनोरथ पूर्ण हो जाएगे। इस भ्रान्त धारणा के कारण बहुत से मानव महाम्पति उठाते हैं। जैसे विद्यार्थी अपना कार्य (अध्ययन) नही करता है, व्यर्थ मे—व्यसन तथा कुसगादि मे अपना अमूल्य समय नष्ट करता है। परन्तु आशा यह रखता है कि कोई सिद्ध

या देवता हमे पास कर देंगे। वसी ही प्रवत्ति अन्य वर्गों में भी पायी जाती है। शीघ्र सावधान हो जाओ। श्री योगेश्वर सव-निय ता तथा सव विद्यापति हमे उदाहरण देकर समझाते हैं कि मिथिला नरेश राजा विदेह श्री जनक जी जसे ज्ञानी जन भी आसक्ति रहित कम के द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

श्री गीता हमें पुकार कर कह रही है। देखो अध्याय १८, श्लोक ४६

यत प्रवृत्तिर्भूताना, येन सवमिद ततम।
स्वकमणा तमभ्यच्य सिद्धि वि दति मानव ॥

जिस परमात्मा से सब भूतो की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सब जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर को अपने स्वाभाविक कम द्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है।

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्य तु मा कश्चिद दु खभाग भवेत् ॥

—ॐ शाति शान्ति ॐ—

॥ श्री गुरु ॥

सकटो से सुरक्षा के उपाय

ईश्वर को न जानने से महाविनाश होगा ।

—उपनिषद

जो जन मेरा अन य भाव से चि तन करता है, उसका योग (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति) तथा क्षेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा) का भार मैं स्वय वहन करता हूँ ।

—श्री कृष्ण

नाविक को नदी पार करते समय तूफान का सामना करना पडता है । तूफान के डर से वह पीछे नही लौटेगा । वह साहस एव विश्वास के साथ आगे बढता है और अन्त मे सकुशल नाव नदी पार हो जाती है ।

—श्री हैडियाखानी

जो सम्पूर्ण सृष्टि का एक मात्र आश्रय है, हे जीव, उस ईश्वर को शाम सुबह क्यो नहीं भजता है ?

—श्री दिव्य कथामृत

जितना अन्न वस्त्र हमारे जीवन के लिए जरूरी है, उतनी ही वस्तु पर हमारा अधिकार है । जो अधिक सग्रही है, वह तो एक प्रकार का चोर है ।

—श्रीमद्भागवत

दु ख से छूटने का उपाय इष्टचि तन है, चि ता नही ।

—महे द्र

तुलसी या ससार मे,
करि लीजै दो काम ।
देवे को टुकडो भलो,
लेवे को हरि नाम ॥
तुलसी या ससार मे,
तीन वस्तु है सार ।
सत मिलन अरु हरि भजन,
सदा दीन उपकार ॥

निजकृत कम देत फल सब को।
दुख सुख भोग भोगावत जग को॥
पर दृढ करि यह मानहु भ्राता।
ईश कृपालु विश्व कर त्राता॥

सार्वभौम शुभाशीर्वाद

* * *

भाव उदार निर्विकार चित्त हो। इष्टचरण अनुराग रग हो ।।
रति नाम हृदय चिरसुस्थिर हो। जप मे रति हो जप मे मति हो ।।
श्रीनाम ममानन प्रतिपल हो। श्रीरूप का दशन प्रतिक्षण हो ।।
स्मृति श्रीविग्रह की ही रहे। श्री विग्रह त्यागि न अ य गहे ।।
रुचि हो नित ही प्रभु पावन की। शुचि साधन की शुभ साधन की ।।
आकाश महा ही स्वच्छ अहा। अहा देख ये सागर कैसा महा ।।
यह श्रृग सुशोभित शैल खडा। मनुजात यहा हैं कौन बडा ।।
महि की महिमा कहो कौन कहै। पृथ्वीमाता सब विश्व कहै ।।
जलशुद्ध निरतर द्रवमय है। सब शुद्ध कर और रसमय है ।।
यह वहि महा उपकारक है। मानो सष्टिका सचालक है ।।
पवन प्राण की कौन प्रशसा। जेहि बिन रहै न सु दर हसा ।।
यह सु दर काया कलापूण है। रग रूप और भाव भि न है ।।
चित्त सदा चिन्तन मे रत है। मन मे मनन रहत अनुदिन है ।।
बुद्धि विसूरति है निशिवासर। अहकार शिव स्वय परात्पर ।।
ससार सुखी धन धा य से हो। सब जीव सुखी आरोग्य से हो ।।
सब दृश्य सदा मगलमय हो। सब पुण्य कर आनन्दमय हो ।।
ॐ शिव ॐ शिव ॐ शिव कहता। कम करो शुभ सुमिरन करता ।।

शाि त का यह माग सुन्दर भावना शक्ति बढा।
निम्न विषयो से विमुख हो चित्त प्रभुचरणन चढा ।।
अनुकूल सदगुरु है सदा उन्नति तेरी निर्बाध हो।
करते रहो नित इष्ट चि तन श्रेय शान्ति तत्काल हो ।।

ॐ

चतुर्थ पुष्प—आशीर्वाद और आदेश

लेखक

चरणाश्रित

॥ ॐ श्री सदगुरवे नम ॥

शरीर और सृष्टि

यस्य स्मरण मात्रेण सिद्धो भवति साधक ।
सदगुरु तमह वन्दे हैडाखान वासिनम ॥

प्राणियो के शरीर की तथा अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना शैली एक ही है। इन दोनो के निर्माण का उपादान कारण भी एक ही है। केवल पाञ्चभौतिक शरीर मे ही ये साम्य नही। अपितु सूक्ष्म एव कारण शरीर मे भी महान ऐक्य दीखता है। मात्रा में यह शरीर लघु है, अणु है। अत इसके काय भी सीमित तथा अपनी आवश्यकता पूरक होते हैं। परन्तु ब्रह्माण्ड अनन्त है। ब्रह्माण्डव्यापी काय भी महाव्यापक एव रहस्यमय हैं। प्राणी का एक अग भग हो जाने से जसे वह खिन्नता एव अभाव का अनुभव करता है, वसे ही ब्रह्माण्ड में—प्रकृति साम्राज्य के किसी अश मे कोई क्षति किसी प्रकार की होती है तो उसका प्रभाव हम जाने या न जाने किन्तु यह असन्दिग्ध तथ्य है कि नसर्गिक व्यवस्था के अनुसार सम्पूण ब्रह्माण्ड पर पडता है। जैसे हमारे लघु जीवन का व्यापार बहुत कुछ परम्परागत है। उसी प्रकार विराट सष्टि का भी सुदृढ तथा सुनियोजित क्रियाकलाप है। हमारे शरीर सचालन मे जैसे इन्द्रियो का सहयोग आवश्यक है, तदनुसार ही दृष्टि चक्र के आधार भी सूय चन्द्र, वायु, अग्नि तथा जल इत्यादि तत्व हैं।

प्राणियो के हृदय मे बठकर जो जीवन यात्रा चला रहा है विद्वान उसे जीवात्मा कहते हैं और जो अखिल ब्रह्माण्ड अवस्थित होकर विराट विश्वव्यापार का अविराम सचालक है, उसे पर मात्मा कहते है। इन दोनो का—जीवात्मा और परमात्मा का

अस्तित्व सवथा अभिन्न है। एक ही व्यक्ति की दो अभिव्यक्त अवस्थाएँ है। जसे बाल्यावस्था ज य अबोधता और प्रौढताजन्य विज्ञता, एक ही पुरुष की होती हैं। आत्मा ही हमारा ध्येय है। अत दोनो आत्मा ही हैं। उधर जीवात्मा से जीव अर्थात् क्षुद्र चेननाभिमानी अत करण को हटा दीजिये तो इधर परम विशेषण आप ही निष्प्रयोजन हो जाता है। केवल आत्मा ही शेष है। अपवित्र जल को लक्ष्य करके ही कहा जाता है कि यह पवित्र जल है। नही तो, जल सबको पवित्र करनेवाला है। वह सदैव स्वच्छ निमल ही रहता है, जब तक उसमे कोई अन्य पदाथ मिश्रित न किया जाय। जिस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा तत्त्वत एक हैं, उसी प्रकार हमारा पार्थिव शरीर और दृश्यमान प्रपचमय ससार एक ही है। अस्तु ! इस विवेचन से यह सिद्ध हुआ है कि जैसे जीवात्मा और परमात्मा का एक सा स्वरूप है। वसे ही ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड का परस्पर अति घनिष्ठ सम्ब ध है। दोनो मे सजातीय तत्त्वो का पूण सामजस्य है। दोनो की सम वयात्मक प्रवृत्ति ही सष्टि की मूल चेतना है। ब्रह्माण्ड का और हमारा अति निकट का साथ है। इसलिये अनिवाय रूप से उस ब्रह्माण्ड व्यापी विक्षोभ वा विघटन का फल शुभ या अशुभ भुगतने को हम बाध्य होते हैं। यही कारण है कि जीव मात्र सम वयात्मक वातावरण अर्थात् सद्भावना पूण यथोचित ऐक्य के सतत इच्छुक हैं।

समन्वय

सष्टि का स्वाभाविक गुण समन्वय ही है। प्राणियो के शरीरस्थ तत्व यदि छिन्न भिन्न हो जाएँ तो प्राणी प्रत्यक्षत नष्ट हो जाएँगे। मन, बुद्धि, चित्त, अहकार तथा इन्द्रियादि यदि आपस मे असहयोग कर ले तो आप सहज मे अनुमान कर सकते हैं कि यह शरीररूपी गाडी बिल्कुल ही अस्तित्वशू य एव सवथा निष्क्रिय हो जाएगी। इस शरीर का सुचारु सचालन तभी शक्य है, जब सभी सहयोगी परस्पर समन्वयात्मक भाव रक्खे। सबके समुचित सहयोग से ही हम सर्वांगपूण होगे। सर्वांगपूण शरीर से ही हम सफलतापूवक जीवन यात्रा पूण कर सकते हैं। अत स्वभावत ही हम लोग सवदा सचेष्ट रहते हैं कि हम समन्वय शक्ति से वचित न रहे। समन्वयात्मक भावना ही हमारी साधना है। हमारी जिज्ञासा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे समन्वय पूण वातावरण के सृजन एव उपलब्धि के अनुसधान मे तत्पर रहती है। जैसे हमने समझ लिया कि हम श्री भगवान् के उपासक है, यह श्रेयस्कर निश्चय एक प्रकार का सात्विक अहकार हुआ। अब यह अहकार आग्रहपूवक चाहता है कि बुद्धि भी श्री भगवान् का ही विश्लेषण करे, मन भी उसी का मनन करे, चित्त मे भी उसी की चिरतन स्मति बनी रहे। साथ ही आँखें उन्ही को देखें, कान उन्ही का नाद श्रवण करें, त्वचा उन्ही श्री भगवान् का स्पश करे अर्थात हम चाहते हैं कि हमारे शरीर के चेतन और अचेतन समस्त तत्व एक सयमी एवम् सुदृढ परिवार के से समन्वयपूण बुद्धि से शान्तिपूवक श्री भगवान् की आराधना करें। उसी भाव से भावित हो सभी इन्द्रियगण उसके सहभागी बनें, इसी बलवती आकाक्षा की पूर्ति के हेतु वह सकल्पवान् है।

अहा! खेद के साथ कहना पडता है, बरबस सभी व्यक्तियो

को यह सत्य स्वीकार करना पडता है कि हठात् ये ग्रामन्त्रित देव शीघ्र ही मा यता और मर्यादा को त्यागकर स्वेच्छाचारी हो जाते हैं। आँखे कुछ और देखना चाहती हैं, कान कुछ और सुनना चाहते हैं तथा जीभ और ही कुछ बोलने मे रुचि रखती है। भाव यह है कि उस सकल्पित अनुष्ठान-काय व्यापार की अवहेलना तथा विस्मृत कर ये शरीरस्थ देवगण नवीन नवीन स्वभावानुकूल प्रक्रियाओ मे सलग्न हो जाते है। समन्वय के क्षेत्र से सभी गिर जाते हैं। और इस असहयोगात्मक-असम वयात्मक आन्दोलन का बाह्य तथा अतर्जगत् मे क्या परिणाम होता है, यह भी आप से छिपा नही है। वर्षों साधना करने पर किसी प्रकार का सतोष प्राप्त नही होता है। घटो तक साधना करने पर भी, शान्ति के स्थान मे मानसिक व्यग्रता का अनुभव होता है। जहाँ हमें आशा थी कि श्री भगवान् के दिव्य सान्निध्य से हम भागवती शक्ति से अनुप्राणित होगे। सच्चिदानन्द घन श्री भगवान् की ऐश्वय और माधुय शक्तियो का हमारे अत करण मे अवतरण होगा। परन्तु वहाँ उस धारणा के विपरीत असतोष, मनस्ताप, अभाव, दन्य तथा अधकार दीखने लगते है। यह बात केवल उपासना के सबध मे ही नही है। ये अनियमितता, चञ्चलता, उच्छृ खलता तथा पारस्परिक सौहाद-हीनता जीवन के सभी क्षेत्रो मे अधिकार जमाए बठी हैं। दयामयी भागवती शक्ति की यह महान उदारता है, श्री भगवान् का सहज वात्सल्य स्वभाव है कि वह अपने पीछे किसी को रखना नही चाहते है। वस्तु के प्रलोभन मे जीवन को नष्ट करते हुए अपनी सन्तान को वह महाविद्या आद्या शक्ति नही देख सकती। वह केवल श्री भगवान् की शरण मे अपनत्व को पूण विलीन करने की ही सतत प्रेरणा देती है। लुब्ध मानव यदि इस सनातन नियति को नही समझता है तो उसे प्राकृत जगत् के अटल नियमानुसार यहाँ से—इस रगमच से हटा दिया

जाता है। जगत् मे व मरा समझा जाता। प्राकृत जगत के अथवा अप्राकृत जगत् के जितने पदाथ हैं, उन सब का पूण रूप से समग्र रसास्वाद हमे प्रथम साक्षात्कार मे ही प्राप्त हो जाता है। हमे भगवत् सबधी सुख एव सासारिक सुख का अनुभव जीवन मे एक ही बार होता है। उस प्रथम स्वाद मे सभ्रमित तथा आकृष्ट हो हम पुन पुन उसी विषय मे उसी अनुभूत उच्छिष्ट स्वाद को ढूढते है। इस सुखान्वेषण प्रवत्ति को राग कहते हैं। यह राग केवल ससृति चक्र की ही नही अपितु साधन चक्र की भी धुरी है। यह राग, जो कि स्वाभाविक सब मे है, यदि श्री भगवान की ओर है तो श्री भगवान की कृपा से अपने परिष्कृत रूप मे प्रकट होता है जिससे हमारा ज न्म सफल हो जाता है। ऐसे रागी—भगवदनुरागी जीवो से सारा विश्व एव सभी प्राणी अपना हित साधन करते है और यदि दुर्भाग्यवश इस राग सरिता की धारा ससारो मुख हो जाती है तो हमारे अनेको ज न्म नष्ट भ्रष्ट हो जाते है। इस दूषित तथा विषयासक्त राग से हम सब सदैव सावधान रहे।

यहाँ पाठको के हृदय मे यह शका सहज ही उठेगी कि जब जीव को पूण तुष्ठिकारक सुअवसर प्राप्त हो जाता है और प्रकृति का उदार नियम भी है कि प्रथम दशन मे ही उसे सब कुछ प्रदान करने को तयार है तो क्यो न जीव उसी समय पूर्ण रूप से सन्तुष्ट एव कृतकृत्य हो जाता है ? क्यो वह सुख रहित पदार्थों मे सुखाभास पाकर अधिक-अधिक लुब्ध होता जाता है ?

पहले जो विवेचन आप पढ आए हैं, उसी के आधार पर आप इस प्रश्न का उत्तर आसानी से समझ जाएगे। भोग्य प्राप्त हुआ पर तु भोक्ता अयोग्य सिद्ध हुआ। उपभोग की प्रक्रिया अधूरी रही। साध्य यथावत ही रहा किन्तु साधन सर्वाङ्ग नही बना। भोक्ता आराधक अपनी आराधना मे सम वयपूण आस्था

प्रकट करने मे असमथ रहा। आप इसे यो समझिये, एक परिवार मे कई व्यक्ति है। सभी का स्वभाव आचार विचार अलग अलग है। परन्तु एक परिवार के होने के नाते सबको भोजन एक ही रसोई मे करना है। घर मे सुस्वादिष्ट, यथेष्ट तथा पूण तृप्ति कारक पदाथ उपस्थित हैं। उपभोग का अधिकार भी सभी को है। सिद्धान्तत सभी चाहते हैं कि सम्मिलित भोजन करने में विशेष सुख मिलता है। अत सब के सब नित्य ही यह सकल्प करते हैं कि हम सब परिवार साथ ही भोजन करेंगे। परन्तु ऐसा होता नही है। सब अलग अलग भोजन करते हैं। सहभोज के सुख सौहादवद्ध क एव ओजवद्ध क गुणो से सब वञ्चित रह जाते है। इस अनिय मितता का प्रधान कारण स्वभाव भि नता ही है। कोई सिनेमा देखकर बारह बजे रात को आता है, कोई मं दर मे साधना-भजन कर दस बजे आता है और कोई अपने ध धा-व्यापार से निवत हो आठ बजे ही आ जाता है। स्वभाव वचित्र्य के कारण काय भेद भी अवश्य होगा। यही दशा हमारे शरीर की है। प्रकृति मा ने हमे सवस्व दे दिया। श्रीभगवान ने हमे अपने अगीकृत जनो की पक्ति मे निभय स्थान प्रदान किया। हम मत्य वासी होते हुए भी अमृत पुत्र कहलाने लगे। किन्तु इतना होने पर भी हमारे हृदय में सम वयात्मक प्रगाढ भाव के अभाव मे हम दीन,हीन ही बने रहे। स्पष्ट है कि यह सब दोष भोक्ता का है। साधक की ही अपूणता है। इसकी साधना ही त्रुटि पूण एव अव्यवस्थित हुई। भोग्य पदाथ श्री भगवान तो सवथा दोष रहित है। उनके गुण, स्वभाव एव शरणागत वत्सलता तो अपार एव असदिग्ध हैं। अणु अणु मे व्याप्त हमारा साध्य प्रच्छ न नही है। साधक ही अन्याश्रयी हो गया। साधन कालीन अपरिहाय अग का त्याग कर दिया है। साधन साफल्य की शोधित मर्यादा का अतिक्रमण कर रहा है। इस उदाहरण को

एक देशीय नही समझना चाहिए, हमारे जीवन के समस्त व्यापार इसी क्रम से सम्पादित होते हैं। व्यष्टि और समष्टि अर्थात् व्यक्तिश वा सम्पूण समाज, सब के लिए यह सम वयात्मक सुधासिक्त सद्भाव ही कल्याणकारी है। साहित्यिक अपने क्षेत्र में सम वय को विशिष्ट स्थान दे, शासनाध्यक्ष—राजनतिक महापुरुष सम वात्मक विचार धारा लाएँ, धर्माचाय गण सभी धर्मों मे स निहित एक ही सत्य की दृष्टि मे रखकर—अन त साधनाओ के गर्भ मे एक ही साध्य का दशन कर सम्पूण विश्व मे —मानव मात्र मे सम वय मलक धम प्रचार करे तो निश्चय ही मानव कृत सभी दुर्भावनाए तथा प्रति हिंसा आदि दानवीय दुगुण बहुत शीघ्र हमारे समाज से दूर हो जाए । यह सर्वोपयोगी सम वय साधन हम अपने घर से ही प्रारम्भ करे। अपने परिवार के सब लोगो को हम ऐसे समझे जसे हमारे शरीर के अवयव है। आख, कान, हाथ, पाव, प्राण तथा मन आदि अगो के प्रति जसी हमारी धारणा है, उसी प्रकार के शुद्ध अपनत्वभाव हम अपने परिवार के प्रति भी रखें। हमारे अ त करण मे जसे सुख दु खादि का असर पडता है, जिस प्रकार हम उन परिस्थ तियो से व्याकुल होते है, उसी प्रकार इनके दु ख सुख मे भी हो।

यही से हम विश्व परिवार की सेवा करना सीखेंगे। क्षुद्र स्वार्थ ने ही हमे विश्व ब धुत्व से अलग कर रखा है, वरना हम सब एक ही माता पिता की स तान हैं, हमारी आवश्यकताए भी समान ही हैं, एक ही पृथ्वी के हम सब निवासी है और एक ही श्री भगवान हम सबके उपास्य है।

अधिक विश्लेषण की आवश्यकता नही ! पाठक, स्वय समझ गये होगे कि हमारे जीवन के लिए सम वय की कितनी

बडी जरूरत है। श्रेयाभिलाषी हो वा प्रेय साधक समन्वय के स्वण पथ पर सभी को आना पडेगा। जीवन मे हमे अनेको पदाथ की आकाक्षा है। अपने अपने स्थान पर सभी वस्तुएँ अच्छी हैं। परन्तु हम यहाँ पर केवल जीव और भगवान् के सम्बन्ध की ही बात करेगे। जीवन की सभी समस्याओ से यह बढ़कर है।

विरोधी तत्वों का आगमन

जब सष्टि कर्ता को सम वय प्रिय है। सष्टि स्वय एक सम वय का बडा उदाहरण है तो फिर विघटनकारी अर्थात् विरोधी विचार कसे हमारे साधन राज्य मे प्रविष्ट हो जाते हैं ? यह भी एक महान् रहस्यमय प्रश्न है। सारे विश्व के विचारक, विद्वानो एव दाशनिको ने इन तीन ही विषयो पर ध्यान केंद्रित किया है। निजस्वरूप (जीव), परतम स्वरूप (ब्रह्म) और बाधक स्वरूप (माया), इन्हीं तीनो तत्वो पर सबसे अधिक वाद विवाद हुए है। जीव का वतमान स्वरूप हमारे सामने है। ब्रह्म अविज्ञेय, अनत तथा अगोचर होने के कारण उसी की कृपा से किसी भाग्यशाली को यदा कदा उसका साक्षात्कार होता है। उन ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मनिष्ठ पुरुषो के आप्त वचन ही ब्रह्म विषयक ज्ञान वा ब्रह्मवाद मे हमारे विश्वास के स्तम्भ हैं। अब रही माया, इसे माया, अज्ञान, अविद्या, म यु तथा मोह आदि अनेको नाम दिए गए है, इस अविद्या माया में कोई प्रारब्ध कर्म हेतु मानते हैं कोई आहार विहार सग दोष आदि मानते है तथा कोई भगवदिच्छा स्वरूप समझकर इसे अपनी साधन सहायिका के रूप मे स्वागत क ते है। कुछ भी का ण हा पर तु यह ध्रुव सत्य है कि सम्पूण ब्रह्माण्ड इसके वश वर्ती है। कही कही पर तो यह इतनी प्रबला दिखती है कि कुछ काल के लिए मायाधीश्वर श्री भगवान भी प्रच्छ न हा जाते हैं। जसे खूब सघन काले काले बादल आकाश मे छा जाते है तो बालको को सूय अस्त से प्रतीत हाते है। वसे ही माया अविद्या जन्य घोर अज्ञाना धकार मे हम ईश्वरीय सत्ता को भी भूल से जाते हैं। हम प्रत्यक्ष के ही पक्षपाती हो जाते हैं। पर तु इस

माया मे इतने आकषण होने पर भी जीव इसे प्राप्त कर सन्तुष्ट नही होता है। सासारिक भोग बाहुल्य की भावनाए तुष्टि के स्थान मे और अधिक अधिक अशान्तिकारक सिद्ध होती है। महान से महान मनीषी तथा तुच्छ से तुच्छ प्राणी, सभी इसके प्रचण्ड प्रवाह मे बहते जा रहे है। कोई विरले ही इस माया सरिता की तीव्र धारा मे अपने को यथा स्थान सुस्थिर रख सकते हैं। ईश्वर कृपा के बिना कोई भी जीव इस दुरत्यया माया को पार नही कर सका। इस प्रसग पर एक गुरु शिष्य प्रश्नोत्तर बहुत विचारणीय है। एक दिन अविद्या—अधकार मे भटका हुआ त्रस्त जीव श्री सदगुरुदेव की शरण मे गया। व्याकुल हृदय से विनम्रतापूवक निवेदन किया —"हे नाथ यह माया क्या है? कहा से इसकी उत्पत्ति है? क्यो इसके चक्र मे पडकर विवेकी साधक ही नही बडे बडे ज्ञानी ध्यानी पहुचे हुए सिद्ध गण भी स्वपथ से विचलित हो जाते हैं?" यद्यपि श्री गुरुदेव सव समथ एव सवज्ञ थे। शास्त्र और युक्ति से ही नहीं, वे सदाशिव भगवान प्रत्यक्ष सभी तत्त्वो का साक्षात्कार करा सकते थे। परन्तु उस उत्तर से—प्रत्यक्ष दिखा देने से केवल उपस्थित जीव को ही शान्ति मिलती किन्तु इस वाङ्मय उत्तर से तो अनन्त काल तक अनन्त जिज्ञासुओ का समाधान होगा। मन्दस्मित श्री मुखारविंद से प्रभु ने आज्ञा करी 'जो होना था हो गया। अब एसा प्रयत्न हो कि इस बन्धन से छुटकारा मिले।" पूज्य आज्ञा कितनी मार्मिक है। परम एकान्तवासी भगवान् श्री हैडाखान वाले बाबा के ये वचनामृत है। वास्तव मे रोगी को रोग से मुक्त होना ही मुख्य उद्देश्य है। माया का तत्त्वत स्वरूप हम मायिक सृष्टि के लुब्ध कीडे मायिक बुद्धि तथा मायाग्रस्त तिमिराच्छन्न दृष्टि से नही देख सकते है। परन्तु मायिक विकारो मे हम नख सिख डूबे है। यह हम सब अच्छी तरह जानते है। यो भी कह सकते है कि कुछ

अपवाद स्वरूप छोडकर प्राय सारे ब्रह्माण्ड स्थित प्राणी इसके अवांछित आक्रमण से हाहाकार मचा रहे है। भले क्षण भर के लिए हम विषयासक्त हो आलस्य, प्रमाद एवम बिलासिता मे इस बेदना को भूलने का प्रयत्न करे। पर यह यथाथत एक महान् मूखता पूण प्रयास है, यह एक भ्रामक विश्वास है। श्री भगवान् की प्राप्ति माग मे यह अज्ञान पूण व्यवहार ऐसा ही है जसे हम रोग की अपेक्षा करते है, रोग से सहायक तत्वो को आश्रय देते हैं, परन्तु आरोग्य जीवन की कामना रखते हैं। हमे अच्छी तरह समझना चाहिए कि ये उपेक्षा पूण व्यवहार से रोग अपमानित होकर चला नही जाएगा। उलटे धीरे धीरे वह भयानक रूप धारण करेगा और यह सुनिश्चित है कि एक दिन हमारा जीवन समाप्त हो जायेगा। अधिक क्या लिखना, प्राणी मात्र का हृदय इस परिणामी असत् मायिक आन्दोलन से विक्षुब्ध है।

स्वस्थता पर दुष्प्रभाव

यदि हम इन विक्षेपो के प्रति सहिष्णुता धारण कर लें, उदासीन हो जाए वा अनभिज्ञ बने रहे तो भी इनसे छुटकारा पाना असम्भव है। ये तो हमारे मूल स्थान पर ही मार्मिक आघात करते हैं। हमने बहुत बार एसा देखा है कि जब जोर से आधी आती है तो बिजली बन्द हो जाती है। कारण ढूढने पर मालूम होता है, पावर हाउस भी ठीक है और घर का यन्त्र भी ठीक है। परन्तु जिस स्थान से हमारे घर की बिजली का सम्बन्ध (कनेक्शन) था, वहाँ प्रतिक्रिया हुई है। हवा के झोको से घरेलू बिजली का तार, जिसके द्वारा पावर हाउस से प्रकाश आता था, टूट गया है। उस महाप्रकाश के द्र से सम्बन्ध टूटते ही अन्धकार आ गया। एसे ही जब तक हमारा मानसिक सम्बन्ध परात्पर शक्ति से है। जब तक हमारा मन भगवान मे लीन है तब तक हम सम्पूर्ण भगवदैश्वर्यों से परिपूर्ण हैं और यदि मन दु खालय तथा अनित्य ससार से सम्बद्ध है तो निश्चय समझिए हम दु ख के सागर मे निमग्न हैं। कभी भी आसुरी सम्पत्ति आपको असुर बना सकती है। पता नही कब हम सद्गुणो के शिखर पर बैठे हुए भी पाशविकता के पक मे आ फँसे। विश्व मे कोई स्थान नही जहाँ इन बाधाओ का प्राबल्य नही है।

हम कही भी जाएँ, सागर के तट पर वा सुमेरु पर्वत की चोटी पर, घोर अरण्य मे वा कोलाहल पूर्ण विराट जन पद में। सर्वत्र ही हमारे ये आध्यात्मिक शत्रु हमसे आगे ही खडे रहते है। हम बहुत परिश्रम करके साधन सामग्री जुटा पाते हैं, कई कई दिनो का कठोर उपवास करते हैं निर्जन स्थानो मे बैठकर निराहार

रहकर ध्यान धारणा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर, अद्वैत वेदांत की प्रक्रियाओं द्वारा जगत को भलीभाँति मिथ्या समझकर तथा सभी सम्बन्धों से मुह मोड़ कर श्री भगवान का स्मरण करना चाहते है। परन्तु हमारे सभी प्रयत्न निस्सार हो जाते हैं। वर्षों का ही नहीं, कभी-कभी जन्मान्तरों का जुटा जुगाया साज सज्जा क्षण भर में ध्वस्त हो जाते हैं। हमारे समस्त आयोजन, समन्वय के अभाव मे, वृत्ति निरोध की त्रुटि से और बाह्य स्थूल वा सूक्ष्म आक्रमण से महाउद्वेग पूर्ण मन हो जाने के कारण निष्फल हो जाते हैं।

यह रोना झींकना तो सदा का है। नाना प्रकार से उपाय इससे बचने के लिए किए गए। किन्तु परिणाम अधिकतर उलटा ही हुआ। हमने प्राकृतिक अवश्यम्भावी प्रत्याक्रमणो से बचने के लिए कितने ही कृत्रिम उपायो का अवलम्बन लिया, तथापि इच्छित वस्तु प्राप्त नही हुई। हमने अपनी चिर वांछित शान्ति के लिए नाना प्रकार के संघर्षों तथा क्रान्तियो का आविष्कार एवं शोधन किया, तथापि ये सब क्रियाएँ एक सफलता के पश्चात एक नवीन आकांक्षा लेकर उपस्थित हुई। हमारे असफल नाना प्रयास ही ये सिद्ध करते है कि साधन ही अब तक दोष पूर्ण रहा है, यदि साधन सर्वांग सम्पन्न होता तो साध्य न प्राप्त हो, यह अति असम्भव है। हमको छोटे से सांसारिक वा महान् आध्यात्मिक अनुष्ठान मे असंख्य उदाहरण मिलेंगे, जहाँ साधन सर्वांग पूर्ण सम्पन्न हुआ वहाँ साध्य साक्षात्कार मे अभीष्ट कार्य की सफलता में कोई बाधा नही आई। अतः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साधन का प्रथम शोधन करना है। साध्य तथा साधक दोनो ठीक हैं। 'माँ' श्रीभगवान चाहते हैं कि मेरा बिछुड़ा बालक शीघ्र मेरी गोद में आ जाए, और 'भक्त' बालक भी अपनी 'माँ' श्री भगवान से मिलने को व्याकुल है। परन्तु अन्वेषण प्रक्रिया मे—

साधन काल मे मनन की पद्धति मे अवश्य कोई त्रुटि है। इस कमी को दूर करने के लिए हमे कोई सुनिश्चित साधन पथ अपनाना पड़ेगा। हमें साधन द्वारा श्री भगवान को नही प्राप्त करना है, श्री भगवान तो सभी जीवों को नित्य प्राप्त है। साधन तो केवल अ य विधर्मी साधन, अर्थात् भगवत्प्राप्ति के माग में विघ्न रूप व्यवसाय को दूर करने के लिए करते हैं। रिक्त स्थान देखकर कोई भी बठ सकता है। अत अपने अन्त करण श्री भगवान् के निवास स्थल को खाली मत छोड़ो। श्री भगवान के स्थान हमारे हृदय देश मे मोह, भ्रम तथा अज्ञानादि मलीन तत्त्व प्रविष्ट न होने पावें। श्री भगवान सवत्र हैं, उ्ही की सत्ता चराचर ब्रह्माण्ड के रूप मे प्रकट है। इस तत्व का पूण हृदयङ्गम हमारे जीवन क्षेत्र में हो, इसीलिए साधन करते हैं।

मनसायोग

दयामय श्री भगवान ने हम जीवो को विमुख वा निज विरह मे व्याकुल जानकर अपने पास बुलाने के लिए अनेको बार अनेको माग बताकर उन्होने हमारे ऊपर अपार एवम् अनुपम कृपा की है। सम्पूण विश्व के सन्त मनीषी-आचाय भगवत्स्वरूप ही थे। जब तक उनके प्रति हमारे हृदय मे पूण श्रद्धा भाव नहीं है, तब तक हम कोई साधन अन्त करण से ग्रहण नही कर सकते हैं। विद्युत धारा (इलेक्ट्रिक करेंट) बातो से नही आयेगी। जिसको विद्युत स्पश कर चुकी है, अर्थात जिनके शरीर के कण कण मैं वही दिव्य श्रीभगवत् प्रेम की धारा निरन्तर अखण्ड प्रवाहित है उन्ही के पावन सग तथा श्रद्धा युक्त स्मृति से हम उस शक्ति के अधिकारी होगे। साधन-पथ प्रदाता भी साध्य के समान ही हमारा पूज्य है। यदि हमारे हृदय मे वद्य के प्रति दृढ विश्वास नही है कि यह वद्य हमे आरोग्य कर देगा, यह अच्छी से अच्छी गुणकारी दवा देगा, जिससे हम शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ करेंगे। तो हमारी आस्था-विश्वास दवा से हट जाएगा और हम चिकित्सा के गुणकारी प्रभाव से वञ्चित रह जायेंगे। स्थूल जगत मे तो अविश्वास से कुछ लाभ हम उठा भी लें परन्तु आध्यात्म जगत मानस क्षेत्र मे तो केवल चेतना ही काम करती है। यदि चित्त मे मालिन्य है (यहा सबसे बडा मल सशय है, अविश्वास है) तो हमारी चेतना भी धुधली है। ऐसे क्षीण एवम निबल प्रकाश मे श्री भगवान के दशन नहीं होगे। इन समस्त दोषो को दूर करने का यही शास्त्र सम्मत तथा बुध जन स्वीकृत माग है कि महापुरुष द्वारा उपदिष्ट

साधन का सात्विकी श्रद्धा तथा सुदृढ़ विश्वास सहित हम आश्रय लें।

विश्व मे सदा से अपनी रुचि के अनुसार जीव अपना इष्ट साधन करता आया है। आज भी हम धर्मानुष्ठान श्री भगवान् को पाने का साधन करते है। परन्तु हमारे धर्म का—ईश्वर का—जो स्थान है, वहाँ हम नही पहुचते हैं। धर्म का—ईश्वर का सम्बन्ध मन से है और उसके पाने का साधन भी मन से ही होता है। पेट मे भूख लग रही है और सिर पर मनो लड्डू है, तो इससे क्या लाभ? इसी प्रकार यदि मन मे अनुराग नही, साधन के प्रति दृढ़ आस्था नही, तो निश्चय समझो वह साधन नहीं हुआ। हाँ नही करने से कुछ करना अच्छा है। परन्तु साधन हमारे जीवन मे भोजन से भी अत्यावश्यक है। भोजन के बिना हमारे नश्वर शरीर तथा प्राण मर जाएगे किन्तु साधन शून्य होने पर तो हम स्वयम् नष्ट प्राय हो जाते है। भोजन के बिना हमारा इसी जन्म का शरीर नष्ट होना है परन्तु साधन त्याग करने से हमारे अनन्त जन्म दुःख पूर्ण हो जाते हैं अतः इस साधन सम्पत्ति को सर्वोपरि समझकर आज ही सङ्कल्प करो कि—हम साधक है, एक मात्र साधन के लिए ही यह मानव शरीर मिला है।

हम पहले ही कह आए है कि समय समय पर श्री भगवान् हमे राह बताने के लिए अनेको रूपो मे हमारे समक्ष आते है। इसी नियमानुसार हमे भी यह सौभाग्य प्राप्त है। अभी थोडे ही वर्ष हुए है, श्रीसद्गुरू रूपधारी भगवान ने हमको एक अपूर्व साधन प्रणालिका प्रदान की है। वह साधन आज के लिए विशेष उपयुक्त है। यह 'मनसा योग' साधन के नाम से विख्यात है। इस "मनसा योग" साधन मे केवल मनस्तत्व का ही उपयोग किया जाता है क्योकि—सभी साधनाओ का फल हमारी मानसिक आस्था पर ही निर्भर है।

सत्य को ससार के सभी घम ग्र थों मे सवश्रेष्ठ मान्यता इसीलिए दी गयी है कि इसमे सर्वोत्कृष्ट सम वय है। मन जो सोच, आँख वही देखे, कान वही सुने, वाणी वही बोले अर्थात मन, वाणी तथा कम मे पूण सम वय—सहयोग की आवश्यकता है। ये सभी परस्पर एक दूसरे के पूरक होकर यथा स्थान रहें, यही कल्याणकारी है। यही श्री भगवान के सर्वाराध्य स्वरूप सत्य है। इस सम वयात्मक साधन को ही सत्य व्यवहार कहा जाता है। क्षेत्र कोई भी क्यो न हो, इस प्रयोग का परिणाम सुन्दर ही है। परन्तु अध्यात्म साधन के क्षेत्र मे ये तत्व बहुत अधिक अपेक्षित हैं। जसी—धारणा—सङ्कल्प तथा क्रियाए हुइ बस ठीक वैसी ही वृत्ति हमारे सम्पूण चेतन अगो की अर्थात मन सहित समस्त इन्द्रियो की हो जाए। इस सत्य का फल महा मगल दाता श्री भगवान् ही है। यह सत्य सम वय पूण साधन और श्रीभगवान्—इष्ट पदाथ भि न नही है। जैसा कि श्रमद्भागवत में परात्पर ब्रह्म श्री कृष्ण की गभ स्तुति के समय समस्त देववृ द ने भगवत् स्वरूप का निवचन किया है —

"सत्यव्रत सत्यपर त्रिसत्य
सत्यस्य योनि निहित च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्य नेत्र
सत्यात्मक त्वा शरण प्रपन्ना ॥"

श्रीमद्भागवत १० स्क अ २ पद्य २६

(प्रभो! आप सत्य सकल्प हैं। सत्य ही आपकी प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है। सृष्टि के पूव प्रलय के पश्चात और ससार की स्थिति के समय इन असत्य अवस्थाओ मे भी आप सत्य है। पृथ्वी जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच दृश्यमान सत्यो के आप ही कारण और उनमे अ तर्यामी रूप से विराजमान है, आप इस दृश्यमान जगत के परमाथ स्वरूप है, आप ही मधुर वाणी और

समदर्शन के आद्य प्रवर्तक हैं। प्रभो ! आप सत्य स्वरूप हैं, हम आपके शरणागत हैं।)

क्रिया की सम्पूर्ण सिद्धि इन्हीं सत्यों में सन्निहित है। क्रियाएं तो बाह्य विन्यास मात्र हैं। इस सत्य समन्वयात्मक भाव से हमारी क्रियाएं युक्त है तो क्रिया अवश्य प्राणवान है अन्यथा प्राण हीन शरीर के समान वे कर्म भी प्राण शून्य एवम् प्रगति हीन हैं। इस तथ्य को विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न योग उपासना, प्रार्थना, यज्ञ कर्म, ज्ञान आदि के नामों से कहा गया है। उपरोक्त विषय गम्भीर है। इस में साधन और काल की, ऐसी ही श्रद्धा एवम् धर्य की बड़ी आवश्यकता है। 'मनसायोग' साधकों को ऐसी पद्धति अपनानी आवश्यक होती है। मानस की एकाग्रता तुम्हें चरम सीमा पर लानी पड़ेगी। **श्रीभगवान के साथ मन लगाना नहीं** मन रम जाएगा लीन हो जाएगा। नर ही नारायण हो जाएंगे **मानव भक्त तथा सत्य समन्वय पूर्ण साधक** ही श्री भगवान को प्राप्त कर भगवत रूप में प्रकट हो जाएंगे।

जितने भी साधन विश्व में है, उन सब का फल इतना ही है कि वे असंस्कृत मन को संस्कार सम्पन्न बनाएंगे कारण यह कि सुसंस्कृत तथा सुशोधित मन में ही श्री भगवान के लिए उत्कण्ठा पैदा होगी। 'मनसायोग' के साधन आरम्भ होते ही साधक को उन्नति का ज्ञान होने लगेगा। सब ओर से मन हटाकर श्री भगवान् में ही मन लगाना, इस योग का अभ्यास क्रम है। इसकी प्रक्रिया ऐसी है कि प्रथम मन से ही साधना आरम्भ हो। जैसे एक पक्षी है, हम उसे पकड़ना चाहते हैं। इसके लिए हमे दो उपायों का आश्रय लेना पड़ता है। या तो पक्षी के पंख तथा पाँवों को बाँध दें वा किसी कौशल से उस पक्षी का मन हम अपनी ओर आकर्षित कर लें। पक्ष पाँव बँधे रहने पर भी मानस राज्य मे स्वतन्त्र है। वह मनमाने संकल्प-विकल्प कर सकता है, परन्तु

जिस पक्षी का मन ही आप में रम गया है, वह तो उडाए भी न उडेगा। वह तो सर्वात्मना आपका ही हो गया। बहुत से साधन ऐसे है कि जहाँ प्रथम इन्द्रियो को ही बस किया जाता है। यथा —**"वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता"** (स्थित प्रज्ञ वे ही हैं जिनकी ये बलवती इन्द्रियाँ स्ववश मे हैं।) सुनने मे मधुर युक्ति सगत प्रतीत होता है। किन्तु यह बडा दुस्तर कार्य है। **"इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभ मन"** (इन्द्रियाँ इतनी बलवती है कि ज्ञानी जनो के मन को भी हठात् हरण कर लेती है।) विमान को रोकना कठिन है परन्तु चालक से प्रीति करके रुकवाना अति आसान है। यह अनेको इन्द्रियो से युक्त मानो बहुत से घोडो के साथ यह शरीर रूपी गाडी है और मन इसका चालक है। इस छोटी सी पुस्तिका मे समग्र प्रक्रियाओ का वर्णन असम्भव है और यह योगविद्या तो परस्पर सग से ही प्राप्त होती है। ऐसी ही मर्यादा सदा से आ रही है तथापि पाठको के लाभार्थ दिग्दर्शन मात्र यत्किञ्चित चर्चा यहाँ की जा रही है। जसे बालक को अच्छे आदमी का सग मिल जाए तो बालक में भी अच्छे गुण स्वयमेव आ जाते हैं। एसे ही साधक का मन रूपी बालक जब प्रभु के पास पहुचगा तो अवश्य वहाँ से वह दिव्य गुणों का प्रकाश लेकर आएगा। उस प्रभु प्राप्त मन से हमारा सर्वाङ्ग शरीर तथा समाज मब के सब भागवती चेतना, शक्ति तथा आनन्द का अनुभव करेंगे। मन श्री भगवान का अश है, उनसे बिछुडकर ही वह दीन दुखी है। श्री भगवान की स्मृति मात्र से यह मन जीव ईश्वरीय दिव्य गुणो से ओत प्रोत हो जाएगा। हमारी प्रार्थना जितना शीघ्र श्री भगवान् सुनते हैं, उतना विश्व में कोई अन्य सुनने वाला नही है। जब हम भगवान को पुकारते हैं बुलाते हैं, तो निःसदेह मानिए, तत्क्षण हमें उत्तर मिलता है, वे दयालु बहुत शीघ्र मानो हमारे

अवलम्ब स्वीकार करने पड़ेंगे सिद्धावस्था में तो ये दोनों बातें सहज स्वभाव बन जाती हैं। ये दो हमारे साधनावलम्ब इस प्रकार हैं—एक 'सहन' और दूसरा 'सुमिरन'। प्रत्येक साधक भिन्न भिन्न परिस्थितियो मे अपनी जीवन यात्रा कर रहा है। सभी को प्रतिकूलता का सामना करना पडता है। उन विरोधी आक्रमण के सामने पाषाण हृदय बनकर सब समस्याओ को अप्रतिकारपूवक सहन कर लेना उत्तम माना जाता है। हम यदि सदैव अनुकूलता के ही इच्छुक रहेगे तो हम साधन माग पर नही चल सकते हैं। विश्व मे आज तक कोई ऐसा व्यक्ति प्रकट नही हुआ, जिसका जीवन क्रम एक सा रहा हो। अत इस प्राकृत जगत के उतार चढाव को प्रभु की सहज लीला समझ कर साधक को एकरस—एकनिष्ठ रहना चाहिए।

सुमिरन—नाम स्मरण से हमारा मन श्री भगवान की ओर अधिक लगेगा। सहन शक्ति की आग मे मन रूप स्वण को स्मरण की फूक से शीघ्र शुद्ध बना लो। सुस्मृति के सूत्र मे बधे हुए श्री भगवान शीघ्र ही हमे कृताथ करेंगे। जसे नट, एक स्थान से दूसरे स्थान तक, रस्सी के आधार पर चला जाता है। उसी प्रकार हमारा शरीराभिमानी अहम स्मरण सूत्र का अवलम्ब लेकर महा अहम अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्री भगवान के परम कारुण्यमय निभय सान्निध्य मे पहुच जाता है। साधन और भोजन करने पर ही लाभ दिखाते हैं।

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जितना किसी विषय के स्मरण से उसका सस्कार घनीभूत होता है उतना शीघ्र और प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे मानस क्षेत्र मे अन्य किसी साधन से नही 'मनसायोग' साधन के ये दोनो 'सहन' और 'सुमिरन' मानो बलवान दोनो पाँव हैं। इन अभ्यासो के अभाव से मनसा योग साधक अपनी प्रगति मे शिथिलता का अनुभव करेगा।

आओ ! आओ !

परम दयामय भगवान श्री हैड़ाखान वाले बाबा ने सामाजिक तथा वयक्तिक सभी परिस्थितियो को लक्ष्य मे रखकर यह 'मनसायोग' की साधना प्रदान की है। यदि आपको श्री भगवान के अवतार पर विश्वास नही है, महापुरुषो तथा धर्माचार्यो क वाक्य पर आस्था नही रही, वर्षों से साधन करने पर भी आपको कोई ईश्वरानुभव नही हुआ तथा आज के मठ मन्दिरो एवम् साधु विद्वानो के प्रति आकर्षण नही है—सग की रुचि का अभाव है। तो भी चिन्ता मत करो, मनोराज्य मे ये सब क्रियाए कोई नवीन बात नही है। मन का स्वरूप मनीषियो ने ऐसा ही कहा है। मन और है ही क्या ? इसके यही लक्षण है।

"काम सकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृति र्ह्री र्धी र्भीरित्येतत्सर्व मन एव" (श्रुति)

(काम, सकल्प, सशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धय, अधय, लज्जा, बुद्धि और भय—ये सब मन ही हैं।) हमे श्रद्धा पूर्वक श्री गुरु प्रदत्त साधन द्वारा मन को निग्रह करना है। इतस्तत भ्रमित मन को श्री भगवान की ही शरणाप न करना है। मनसायोग' की यही विशेषता है कि यह सब प्रथम साधक के प्रयास को मनोनिरोध की ओर प्रवत्त करता है। इसकी अपार महिमा है। माण्डूक्योपनिषद के अद्वैत प्रकरण मे मनोनिग्रह की बडी आवश्यकता बताई है। श्लोक इस प्रकार है—

"मनसो निग्रहायत्त मभय सर्व योगिनाम ।
दु ख क्षय प्रबोधश्चाप्यक्षया शान्ति रेवच ।।"

(सभी योगियो के अभय, दु खक्षय प्रबोध और अक्षय शान्ति मन के निग्रह के ही अधीन है ।)

आगे के म त्र मे यह वणन है कि किस प्रकार मनोविग्रह किया जाता है । यथा —

उत्सेक उदधेयद्वत कुशाग्रेणक बिन्दुना ।
मनसो निग्रहस्तद्वदभवेदपरि खेदत ।।

(जिस प्रकार महा धयवान होकर कुशा के अग्र भाग से एक एक बूद द्वारा समुद्र को उलीचा जा सकता है उसी प्रकार सब प्रकार की खि नता का परित्याग करन पर मनो निग्रह सम्भव है ।) यहाँ वेद मत्रो का उदधत करने का यही तात्पय है कि 'मानस शक्ति' को अनादिकाल से सभी तत्त्वान्वेषियो ने स्वीकार किया है । वही मन पूण भागवती सत्ता से ओत प्रोत हमारे पास भी है । हम उसी मन को आधार बना लें और श्री भगवान से मिलने के लिए चल पडें ।

मानसिक चञ्चलता से हम क्षुब्ध न हो । श्रुति हमे धयवान होने की आज्ञा देती है । दशन मे भी यही उपदेश है, 'कश्चिद्धीर' अर्थात कोई धैयवान पुरुष ही इस परात्पर तत्त्व को प्राप्त कर सकते है । **'मनसायोगी'** को भी यह आज्ञा दी जाती है कि— धैय रक्खो । हम रात दिन देखते है कि सरोवर का जल गदला हो जाता है । परन्तु कुछ काल के पश्चात्, स्वयम मलीन तत्त्व नीच आ जाता है और सरोवर का जल स्वच्छ—निमल हो जाता है । इसी प्रकार हमारे हृदय सरोवर मे भी बाहर के मलीन वातावरण से मलापन आ जाता है परन्तु हम विश्वास के साथ धयवान बने । श्री भगवान की कृपा से—श्री भगवान् की सहज शक्ति के प्रभाव से हम अनुभव करेंगे कि हमारा हृदय सरोवर शनै शनै शुद्ध एवम कल्मष हीन हो रहा है ।

श्री भगवान् पर विश्वास न होते हुए भी यदि मन से हम अविज्ञेय तत्त्व के अनुसन्धान मे लग जायँ तो निश्चय ही हमे उस महाशक्ति पर विश्वास हो जायेगा। अब भी ससार मे धर्माचरण बहुत होते हैं परन्तु उन सब धार्मिक कृत्यो का सम्बन्ध बाह्य जगत से अधिक है। हृदय देश के निवासी को हम बाहर कहाँ पा सकते है। व्यवहार दृष्टि से भी देखें तो एक मनही प्राणी को अन्त तक साथ देता है। आज जहा सागर है, कल यदि वहाँ सुमेरु हो जाए तो कोई आश्चय नही। जो जीव आज अपने को सुखी—समृद्धिशाली समझते हैं, कल ही वे ऐसे अनाथ हो जाते हैं कि उनकी अभावग्रस्त दुर्दशा का वर्णन करना भी कठिन है। बताओ, जब ससार की ऐसी अनिश्चित दशा है तब इन सासारिक पदार्थों के सग्रह एवम सरक्षण मे ही यह महत्वपूर्ण मानव जीवन को गवा देना कहाँ तक बुद्धिमानी है। उस विभिन्न-अवस्था में असमर्थ और असहाय जीव कैसे स्वाध्याय करेगा? कहा से यज्ञ करेगा? क्या दान देगा? कैसे वह माला पुस्तक आसन चन्दन पायेगा? उस विभिन्न अवस्था मे उसे वह शुभ अवसर प्राप्त करना असम्भव होगा कि वह किसी स्थान विशेष मे अर्थात् मन्दिर मस्जिद, गिर्जा आदि मे उपस्थित हो अपनी भावनाऽनुसार ईश्वराराधन कर सके। परन्तु जो जीव 'मनसा-योग' के अभ्यासी है, उन्हे कोई चिन्ता नही। वे सब कुछ श्री भगवान् के विधान को समझकर अभ्यास निरत है। उन्हे विश्वास है कि श्री भगवान के अश स्वरूप मन हमारे पास है। हम उसी मन को आधार बनाकर श्री भगवान के लिए बैठे हैं। वे कब तक नही आएगे। इसी विश्वास के साथ श्री भगवान् के लिए अवश्य कुछ समय निकालो और प्रथम मन को सहिष्णु तथा नाम परायण बनाकर 'मनसायोग' द्वारा श्री भगवान के महा महिमा सम्पन्न श्री चरणारविन्द मे अपने को समर्पण कर दो। हे जीव!

यदि तुम ऐसा करने मे आलस्य प्रमाद करते हो तो निश्चय तुम महा विनाश की ओर जा रहे हो। यह कोई कल्पित बात नहीं है, श्रुति भगवती भी इस ध्रुव सत्य को डिण्डिम घोष से प्रतिपादन कर रही है —

"नचेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चे दिहावेदी महती विनष्टि ।"

(केन श्रुति)

(उस ईश्वर को जानने से ही रक्षा है अन्यथा महा विनाश सामने समुपस्थित है।)

अच्छे आदमी अच्छी बातो की ही स्पर्धा करते हैं। यह मत देखो कि दूसरा व्यक्ति क्या कर रहा है। यदि आप दूसरो को देखकर ही अपनी सुख सुविधा का आयोजन करते तब तो किसी अश मे यह मा यता ठीक थी परन्तु सच्चे मन से आप अपने हृदय को टटोलिएगा, तो यह पवृत्ति महा घातक सिद्ध होगी, केवल इसमे मानसिक कपट ही है। अनेको जीवो के पास सासारिक अनेको पदार्थों की कमी है तथापि हम निलज्ज होकर, उन्ही अभावग्रस्त मानव समूह के समक्ष अपने उच्छृङ्खला विलास प्रिय मन को सतुष्ट करते हैं। उस समय हमारा दभी ज्ञान यह नही कहता है कि तुम ऐसे सुखोपभोग मे क्यो मग्न हो ? जिससे हमारे ही बन्धु गण वञ्चित हैं। अत सावधान होकर शीघ्र साधन पथ पर आजाओ। जैसे हो वैसे आजाओ। इस पथ पर आकर ही सत्य, शिव, सुन्दरम की झाकी कर पाओगे और इसका परिणाम यह होगा कि आप स्वय दीन जीव से सर्व प्रभुता सम्पन्न सदाशिव हो जाओगे।

बहुत से पद लोलुप, दुर्वासनाग्रस्त तथा नितान्त स्वार्थी आदमी भी साधको से पूछते हैं कि—इससे जगत का क्या कल्याण होगा ? अरे अज्ञानी मानव ! यही विश्व कल्याण का प्रशस्त राजपथ है। क्षण भर के लिए भी जिसका मन श्री भगवान् मे

लगता है। उससे सारी पृथ्वी धन्य धन्य हो जाती है। उन पुण्यात्मा पुरुषों के—उन आराधक जीवों के पावन सम्पर्क तथा श्रेयस्कर साहचर्य का अनन्त फल है। जैसे कोई व्यक्ति इत्र के घड़े में अपना हाथ डुबाकर आवे तो क्या वहां के उपस्थित जीवों को वह सुगन्ध नहीं मिलेगी ? वैसे ही श्री भगवान से सम्बन्धित जो जीव हैं या जो पदार्थ हैं, वे सभी श्री भगवान की महिमा से महिमान्वित है। जैसे श्री भगवान् अनन्त हैं, सब सुहृद है तथा सर्व व्यापी सर्वेश्वर है। ये सब गुण तदनुरूप ही उपासकों मे आ जाते है।

बहुत खेद के साथ कहना पड़ता है कि मानव ने महान् आश्चर्यजनक आविष्कार किया कहीं कहीं पर मानव प्रयत्न बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ जिससे कहना पड़ा कि आज मानव ने विकास उन्नति तथा सभ्यता के निर्माण में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। परन्तु मानव अपनी मानवता को सुरक्षित रखने मे विफल सिद्ध हुआ है। हमे इस पर बहुत गम्भीरता से विचार करना है। अन्यथा सभी सफलता तथा चरमोत्कर्ष उन्नति मूलक योजनाएँ बेकार हो जाएँगी। मानव मे ही देवत्व तथा दानवत्व है। दानवता को दूरकर मानव मे देवत्व की प्रतिष्ठा हो। यही हम सब मंगल मय श्री भगवान् से प्रार्थना करें।

अतः निःशंक, निर्भय तथा विनम्र होकर आप जिस देश मे, जिस संस्कृति मे उत्पन्न हुए है उसी परम्परानुसार श्री भगवान् की उपासना मे लग जाइये। क्योंकि साधन गौण हैं, मुख्य तो आपका मन ही है। आपकी मनसा ही तो फलेगी। वह सूत्र फिर स्मरण कर लें—

"मनोमयोऽयं पुरुषः यो मनः स एव सः।"

(यह पुरुष मनोमय है जैसा उसका मन है वैसा ही उसका स्वरूप है।

(मनसा योग सूत्र)

आइए । हम इस उदार—आशीर्वाद और सार्वभौम आदेश दाता श्री भगवान् हैड़ाखान वाले बाबा को बारम्बार प्रणाम कर उन्ही से उपदिष्ट साधन सुधा का पान कर अपनी तथा विराट विश्व की कल्याण साधना करें ।

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद दु खभाग्भवेत ।।

(सब सुखी रहे सब निरोग रहे, सब कल्याण भागी बने, ससार मे किसी को दु ख न सतावे ।)

ॐ शान्ति ॐ शान्ति ॐ शान्ति ।।

॥ ॐ श्री सद्गुरवे नम ॥

परिशिष्ट

विनीत निवेदन

श्री श्री सदगुरुजी की पुण्यस्मृति में उल्लिखित यह तथ्य वास्तविक रूप से प्रमाणित हो जाता है कि पूर्णत्व की पराकाष्ठा से स्वाभाविक स्नेहमन्दाकिनी सदैव एवम् सर्वत्र प्रवाहित होती रहती है । अर्थात श्री श्री बाबा ने सब समय के लिए, सब मनुष्यो के लिए, सभी अवस्थाओ मे, हर एक क्षण में एवम् सब साधनाओ के मूल साधन के प्रशस्त पथ का निर्देश किया है। यह भगवान की सनातन रीति है। परम पुरुष श्री भगवान चिरकाल से जीव जगत् को अपनी ओर नाना प्रकार से मधुर आह्वान कर रहे हैं। इसी आह्वान के पथ पर अग्रसर हो सच्चिदानन्द को प्राप्त कर ऋषियो ने पूर्णानन्द के स्रोत मे "शृण्वन्तु विश्वे ते अमृतस्य पुत्रा" कहकर विश्ववासियो को महान् पथ पर चलने के लिए आह्वान किया है। अनाहत ध्वनि से अर्थात मुरली ध्वनि तथा डमरू ध्वनि द्वारा ऋषि एवम महापुरुषगण कृपासिन्धु भगवान् का उनकी अहेतुकी कृपा से चिरन्तन आह्वान कर रहे है । दिव्य-जीवन लाभ के पथ पर जीवो के लिए यही दिव्य पुरुषो का दिव्य सनातन आह्वान है। श्री श्री बाबा का आह्वान भी इसी प्रकार का है। इसे पाठकगण अपने आप ही भली भाँति समझ सकेंगे।

कार्य सिद्धि के लिए शरीर, वाणी एवम् मन का सयोग नितान्त ही आवश्यक है। यह सब जानते हैं। मानव जीवन के

पूर्ण एवम् प्रकृत उद्देश्य सिद्धि के लिए उसकी सभी इन्द्रियो एव शरीर का पूण सहयोग अनिवाय है। इस सहयोगिता या समन्वय की आवश्यकता पर इस पुस्तक मे विशेष रूप से व्याख्या की गई है। मन के आधार से ही साधनक्रम चलाने का निर्देश दिया गया है।

"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"

(अपनी भावनानुसार ही सिद्धि सफलता प्राप्त होती है।) इस गीता वाक्य में भी मन को साधन क्षेत्र मे उच्चतम् स्थान दिया गया है। यह वचन भी सव विदित है

"मन एव मनुष्याणा कारण बन्धमोक्षयो"

(जीव के बन्ध या मोक्ष का कारण उसका मन ही है।) भक्तो एवम ऋषियो ने भी यही कहा है। श्री बुद्धदेव की वाक्यावली में भी इस प्रकार उद्धृत है

"मनोपुब्बगमा धम्म
मनोसेत्था मनोमया"

अर्थात् मन ही धम का आदि है। धम मे मन का ही श्रेष्ठ स्थान है तथा धम मनोमय है। श्री भगवान ने गीता में कहा है

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मता॥

अर्थात् मुझमे मन लगाकर—नित्ययुक्त होकर जो भक्त परम श्रद्धा के साथ मेरी उपासना करते हैं, वे ही मेरे विचार मे श्रेष्ठ योगी हैं। मनसायोग सूत्र मे भी यह श्लोक दिया गया है। यथा

ध्यायेत मनसा पुरुष पर वै,
मध्ये दृढ भावयुत च नित्यम।
आवेश्य सम्यग हृदि वृत्तिवेगम,
योगी तदा ब्रह्म उपैति दिव्यम॥

अहर्निश दृढ भाव से युक्त होकर एवम हृदय मे पूण रूप से वत्ति को निय त्रण कर मन के द्वारा परमपुरुष का ध्यान करने से योगी (उस) दिव्य ब्रह्म को प्राप्त करता है। पूजा श्राचा के व्यवस्थापक महर्षियो ने भी "मानस पूजा" की व्यवस्था की है। अत यह मनस योग सववादी सम्मन एवम सवजनीन है। यह 'मनसा साधन' सब समय मे श्रयस्कर है कि तु वतमान काल के कम व्यस्त युग मे अति हितकर है। इसका अनुसरण सहज सम्भव है।

'श्राशीर्वाद और श्रादेश' ग्र थ का बहुत प्रचार हो, यही कामना करके मैं इस प्रसग का समाप्त करता हू ।

(आगे के पृष्ठो मे श्री श्री बाबा का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है)

॥ सदगुरवे नम ॥

भगवान् श्री हैडाखानवाले बाबा

"आशीर्वाद और आदेश" पुस्तिका मे जो श्री श्री बाबा हैडाखान के विषय मे लिखा गया है उससे पूर्व यह लिखना आवश्यक है कि 'श्री श्री हैडाखानवाले बाबा' उनका वास्तविक अर्थात प्रकृत नाम नही है। वस्तुत सत्य यह है कि श्री श्री बाबा का नाम कोई नही जानता है। श्री श्री बाबा के प्रत्यक्षदर्शी साधको एवम सिद्ध पुरुषो ने आप को श्रीम महामुनी द्र, श्री सद् गुरु, श्री शिवावतार श्री सदाशिव श्री महावतार, तथा त्र्यम्बक बाबा इत्यादि नामो से सम्बोधित किया है। कोई कोई यह भी अनुमान लगाते थे कि श्री श्री बाबा कृपाचार्य, अश्वत्थामा एवम श्री हनुमानजी हैं। तथापि आपके हैडाखानवाले बाबा के नाम से विख्यात होने का भी एक कारण है।

श्री श्री बाबा का लीला क्षेत्र देश काल से सीमित नही है। आप अपनी अपूर्व योग क्षमता से बहुत समय तक मानव दृष्टि से अदृश्य होकर भी रहे हैं, एव आपको जगत् मगलकारी कार्यों मे लिप्त होते हुए भी देखा गया है। इसी प्रकार श्री हैडाखान नामक स्थान पर एक बार प्रकट होकर आपने मन्दिर स्थापना आदि अनुष्ठानिक कार्य किया। श्री श्री बाबा महाराज के दिव्य एव अदभुत योगैश्वर्य के दर्शन से सभी स्नेही सज्जनो को महामगल प्राप्त हुआ और इसी कारण 'हैडाखानवाले बाबा' के नाम से आपकी प्रसिद्धि हुई। हैडाखान कुमायू कैलाश पर्वत के पार्श्व भाग मे स्थित एक छोटा सा ग्राम है। यहाँ पर श्री श्री बाबा ने सन १८९३ ई० के आस-पास एक शिवालय तथा धर्मशाला का

निर्माण कराया था। उक्त मन्दिर के सामने गौतम (गौला-नदी) गगा के पार एक देव निर्मित गुहा है। गुहा के अ दर प्रवेश करने तथा ध्यानपूवक देखने से यह स्पष्ट विदित होता है कि यह एक प्रकृति निर्मित देव मन्दिर है। यह स्थान अत्यन्त मनोरम है।

श्री हैडाखान मे दशन देने के पूव यहाँ से दस बारह मील दूर दक्षिण की ओर एक ग्राम मे आपका आविर्भाव हुआ था। इस ग्राम मे लगभग ढाई मील की दूरी पर वहाँ के ग्रामवासियो को नित्य एक ही समय पर एक पहाड की चोटी पर वृहत् ज्योति के दशन हुए। वह ज्योति कुछ समय तक दशन देकर फिर विलुप्त हो जाती थी। इन दिव्य दशनो से ग्रामवासी बहुत विस्मित हुए और उनकी यह धारणा दृढ हो गई कि यह प्रकाश किसी देवता की दिव्य ज्योति वा प्रकाश है। एक दिन ग्रामवासी जनता उसी स्थान पर एकत्रित हुई और उन अज्ञात देवता की स्तुति प्राथना करने लगी। उसी समय उन्होने एक दिव्यकाति विशिष्ट महापुरुष को उस ज्योति से प्रकट होते देखा, जिनकी आयु उन लोगो की धारणा मे २०-२५ वष से अधिक की नही थी। ग्रामवासियो ने उन दिव्य दशनो का लाभ प्राप्त कर अपने नेत्रो को सफल किया और अत्यन्त विनम्रतापूवक उन महापुरुष से अपने ग्राम में पदापण करने की प्राथना की। वे महापुरुष उन ग्रामवासियो के आह्वान पर उन के ग्राम मे चले आए। श्री धामसिंह नामक फोरेस्ट गाड के घर मे उन्हें ठहराने की व्यवस्था की गई। वह फोरेस्ट गाड उन अज्ञात महापुरुष को नित्य प्रति अपने घर मे ताला बन्द कर बाहर काम-काज को चला जाता था। एक दिन उसकी अनुपस्थिति मे ग्राम के लोगो ने उन अवधूत बाबा जी के दशनो की इच्छा से घर का ताला तोडकर देखा तो स्तम्भित रह गए, क्योकि श्री श्री बाबा घर के अन्दर नही

थे। उसके पश्चात हैडाखान मे प्रकट के दस बाहर साल तक इस अञ्चल मे उनका कोई पता नही था।

"कल्याण" के सतांक मे श्री श्री भोलादत्त पाण्डेय ने लिखा है कि "श्री श्री हैडाखाडवाले बाबा' की आयु अनुमानत डेढ दो सौ वष की प्रतीत होती है। उन्होने और भी लिखा है कि श्री श्री बाबा ने हैडाखान मे मन्दिर निर्माण करवाया है एव वहाँ पर अपनी योगक्षमता भी प्रकाशित की थी। एक ही समय मे अनेको दूर दूर स्थानो मे जाना—प्रकट होना, अदृश्य हो जाना, बाल सूय की तरह ज्योतिष्मान् होकर प्रकाश करना, इसके अतिरिक्त कूर्माचलवासियो ने आपको जलहवन तथा पचाग्नि तपस्या करते भी देखा था। एक समय प्रयाग के मेयोर कालेज के सस्कृत विभागाध्यक्ष महामहोपाध्याय प० श्री आदित्य राम भट्टाचाय एम० ए० आपकी अभूतपूव योगक्षमता की कथा सुनकर ननीताल से ३० ३२ मील दूर 'देवगुरु" पवत पयत दशनों की इच्छा से गए थे। श्री भट्टाचाय जी के अनुरोध स श्री श्री बाबाजी महाराज सन् १६११ मे प्रयाग धाम मे पधारे थे। त्रिवेणी स्नान से लौटते समय स्वर्गीय मेजर बसु साहब के आग्रह से आपके फोटो लिए गए। किन्तु महा आश्चय की बात यह हुई कि प्लेट धोते समय दोनो प्लेटो पर दो प्रकार के चित्र आए। एक कुर्ता टोपी वेष का तथा दूसरा दिगम्बर स्वरूप का था। पांडेयजी ने आप के उपदेशो के विषय मे यह लिखा है कि वे सबको अपने अपने धम मे तत्पर रहने का—स्वधम पालन का उपदेश देते थे। श्री सदगुरु स्तुति कुसुमाजलि मे फोटोग्राफर का नाम "रुस्तम" है, किन्तु वास्तव मे उनका नाम सोराबजी था और वे एक पारसी सज्जन थे।

'श्री पुण्यस्मृति" मे श्री श्री चरणाश्रित बाबा ने एक स्वीडिस महोदय की घटना का उल्लेख किया है। इनका नाम नील्स

ओल्फट क्रिसे डर था ये एक विश्व प्रसिद्ध अभिनेता एवम् जर्मनी की सुप्रसिद्ध युनिवर्सल फिल्म कम्पनी के अधिष्ठाता थे। इनकी आध्यात्मिक गति बहुत बढी चढी थी। ६७ ६८ वर्ष की आयु मे एक समय मास्को मे रात्रि के समय इनको अपने शयन कक्ष मे श्री श्री हैडाखानवाले बाबा ने दर्शन दिए तथा उसी दिन एव उसी समय मे लेनिन ग्राड मे उनकी धर्मपत्नी ने भी श्री श्री बाबा के दर्शन किए थे। इस विषय मे जब परस्पर दम्पति की बाते हुई तो वे दोनो श्री श्री बाबा के दर्शनो के लिए विशेष उत्कण्ठित हुए और शीघ्र ही भारत आ गए।

सर्व प्रथम वे पाण्डिचेरी श्री अरविन्द आश्रम मे आए तत्पश्चात कुछ काल तक उन्होने श्री रमण महर्षि के आश्रम मे भी निवास किया। परन्तु चित्त को शान्ति नही मिली, अन्त अज्ञात प्रेरणावश ये महानुभाव अल्मोडा आए। यहा पर प्राय वे दो साल तक रहे। इन अवधियो मे भी उनको श्री श्री बाबा के दर्शन होते रहे। मि० क्रिसे डर एक महान कलाकार थे। उन्होने श्री श्री बाबा का एक विग्रह निर्माण किया है। यह आज भी अल्मोडा मे विद्यमान है। २६ अप्रल सन १९४६ को मि० क्रिसे डर अल्मोडा से चले गए।

शीतलाखेत के श्री शिरोमणि पाठक को भी श्री श्री बाबा के दर्शन हुए थे। उनको प्राय छ माह तक आप की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्री पाठक जी ने लिखा है कि "श्री श्री हैडाखानवाले बाबा साक्षात ईश्वर थे। यह अवतार बडा ही अद्भुत था। षडैश्वर्य जैसे श्री भगवान मे स्वाभाविक है, उसी प्रकार इस विग्रह मे भी सब शक्तियो का आश्चर्यजनक आश्रय है। असख्य बार चर्म चक्षुओ द्वारा देखा गया कि उन्होने मृत जीवो को प्राण दान दिया तथा निरक्षरो को वाक्पटुता एवम् कवित्व शक्ति प्रदान की। आर्थिक सकटग्रस्त जीवो को आपकी

योग-क्षमता द्वारा दन्य दुखो से मुक्ति मिली। दैवी सुख के इच्छुक सिद्धिकामी साधको को उन्हो ने सब सिद्धियों का पात्र बना दिया। रोगग्रस्त त्रिविध ताप सतप्त प्राणियो को भी महाभाग्य तथा अक्षय शान्ति मिली। अनेको मोक्षार्थी साधको ने केवल भारत के ही नही अपितु युरोप एवम तिब्बत के लामा योगियो ने भी श्री श्री बाबा की उदार शरण प्राप्त कर स्वाभीष्ट साक्षात्कार किए है। भिन्न भिन्न विचारधारा एवम् नाना धर्म सम्प्रदाय के महा महा साधको के मनोरथ पूर्ण हुए हैं।'

नैनीताल जिले मे हलद्वानी कस्बा से लगभग ढाई मील की दूरी पर देवला नामक ग्राम मे परम भक्त स्वर्गीय ठाकुर श्री गुमानसिंह नौला का जन्म स्थान है। श्री गुमानी जी श्री श्री बाबा के अनन्य उपासक थे। श्री श्री बाबा इनके घर मे महीनो रहे थे, जहाँ पर आज भी श्री श्री बाबा की कुटी का चिह्न व अन्य वस्तुएँ सुरक्षित हैं। भक्त जी की रामायण के पृष्ठ पर श्री श्री बाबा ने अपने हस्तकमल से किसी अज्ञात भाषा मे कुछ लिखने की कृपा की थी। वह अक्षर अत्यन्त प्राचीन हैं और यही कारण है कि आज तक उसे कोई पढ़ न सका। श्री सद्गुरु-स्तुति-कुसुमाञ्जलि तथा भगवान श्री हैड़ाखानवाले बाबा नामक पुस्तक मे हस्ताक्षर की प्रतिलिपि दी गई है।

पूर्वोक्त श्री पाण्डेय ने श्री श्री बाबा के साक्षात्कार प्रसङ्ग मे उनकी योगैश्वर्य सूचक एक घटना का उल्लेख किया है। ये महाशय अपने मूल्यवान घोडे पर चढकर काठगोदाम की ओर से आ रहे थे, मार्ग ही मे उन्हे श्री श्री बाबा के दर्शन हुए। श्री श्री बाबा का मुखमण्डल उस समय मृदु हास्य से मुखरित था। पाण्डेय जी ने जब उनको अपनी ओर हँसते देखा तो बडे क्रुद्ध हुए, और कहने लगे कि तुम मेरी तरफ देख कर क्यो हँसे ? श्री श्री बाबा ने बडे शान्त भाव से विनयपूर्वक कहा कि मैं तुम्हे देख

कर नही हस रहा हू श्री बद्रीनारायण मदिर का बडा घण्टा गिर गया है। अनेको व्यक्ति उसको उठाने की कोशिश कर रहे हैं परन्तु उनसे घण्टा नही उठ रहा है। इसी दृश्य को देखकर मैं हस रहा हूँ। ऐसा उत्तर पाकर भी पाण्डेय जी ने श्री श्री बाबा को धमकी दिखाते हुए कहा कि यदि ये बातें सत्य नही हुइ तो हम आपको दण्ड देंगे। उन्होने उसी समय काठगोदाम जाकर टेलीफोन किया और श्री श्री बाबा के कथनानुसार ही सब बातें सत्य थी। उसी समय उन्होने सब दभ (छल कपट) त्याग कर श्री श्री बाबा के चरणो मे अनेको प्रकार से विनय करते हुए क्षमा याचना की, और जीवन पर्यन्त के लिए शरणापन्न हो गए। तत्पश्चात् श्री भोलादत्त जी लगभग २२ वर्षों तक सिद्धाश्रम में कठोर तपश्चर्या करते रहे।

परमहस योगानन्द ने अपनी पुस्तक "एक योगी की आत्म कथा (Autobiography of a yogi) मे अपने गुरु के भी गुरु योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिडी महाशय का जो वृत्तान्त दिया है, उसमे अन्यान्य कथाओ के साथ श्री श्री बाबा के विषय मे भी लिखा है। श्री श्री बाबा हिन्दी भाषा मे वार्तालाप करते थे किन्तु सभी भाषाओ को समझना तथा बोलना उनके लिए सहज था। श्री लाहिडी महाशय एवम् उनके मित्र तथा शिष्यगण इनको महामुनि, बाबा जी महाराज, त्र्यम्बक बाबा तथा शिव बाबा आदि नामो से सम्बोधन करते थे। अनुमानत उनकी अवस्था २० २५ वर्ष की प्रतीत होती थी। उस समय उनके साथ दो अमरीकन शिष्य थे। श्री श्री बाबा कभी सादृश्य रूप एवम् कभी भिन्न भिन्न रूपो मे दर्शन दिया करते थे। कभी उनके सिर पर छोटे छोटे बाल देखे गए तथा कभी बिल्कुल मुण्डित रहते थे।

सन् १८६१ ई० के शरद काल में सर्व प्रथम श्री लाहिडी

महाशय को श्री श्री बाबा के दर्शन हुए थे। यह स्थान रानीखेत से १४ मील दूर द्रोणागिरि के एक उच्च शिखर पर नन्दी देवी (गगास नदी का उद्गम स्थल) के पाद देश मे अवस्थित है। इस साक्षात्कार सम्बन्धी विवरण मे यह भी लिखा है कि ये श्री श्री बाबा जी महाराज लाहिड़ी महाशय के पूर्व जन्म के भी गुरु थे। उन्होंने स्वयं कहा था कि मैं तीन युग से श्यामाचरण की प्रतीक्षा कर रहा था। श्री भगवान् सदाशिव के साक्षात्कार होते ही श्री लाहिड़ी महोदय की पूर्व स्मृति जागत हुई और उसके परिणाम स्वरूप श्री श्री बाबा महाराज जी के जो वाक्य थे तदनुरूप ही उन्होंने प्रत्यक्ष अपनी आँखो से सब वस्तुएँ देखी।

उक्त "एक योगी की आत्मकथा' में श्री श्री बाबाजी महाराज की जो चर्चा है, उसका हिन्दी मे यह भावार्थ है। "श्री श्री बाबाजी महाराज का अवतार कोई एक विशेष कारण से नहीं होता है। प्रत्युत मानव एवम सृष्टि कल्याण हेतु आप नित्य निरन्तर यत्नशील रहते है। इस प्रकार के क्षमतावान् पुरुषो ने मानव की बाहरी दृष्टि से अपने को दूर रखा है। उनमें यह भी शक्ति रहती है कि इच्छामात्र से अन्तर्धान हो सकते हैं। साधारणतया उन्होंने अपने शिष्यवर्गों से तत्सम्बन्धी घटनाओं को गुप्त रखने का ही आदेश दिया है। एक विशेष सम्यक आध्यात्मिक महापुरुष इस जगत् से अज्ञात ही रहे है। यह एक सुखकर मनन का विषय है।'

"एक योगी की आत्मकथा" मे जो श्री श्री बाबा के विषय में कथित है एवम् मौखिक विवरण द्वारा बनाया गया जो चित्र है, श्री श्री बाबा के तत्कालीन जो चित्र है तथा मि० क्रिसेंडर कलाकार द्वारा निर्मित मशाले की मूर्ति एवम् वर्तमान के प्रत्यक्ष

दृष्टान्त दर्शन आदि से यह भली भांति प्रतीत होता है कि ये समस्त लीलाएं एक ही महापुरुष की है।

श्री श्री हैड़ाखान वाले बाबा के अनेको आश्रम है। विशेष कर कूर्मांचल प्रदेश मे, जैसे —हलद्वानी के कठघरिया आश्रम, शीतलाखेत मे सिद्धाश्रम, छेड़ आश्रम तथा श्री हैड़ाखान के शिवा-लय एव गणादालिया (रानीखेत के पास) आदि प्रसिद्ध है। आश्रम के अतिरिक्त श्री श्री बाबा की अनेको गुप्त गुफाए भी है। जैसे —रानीबाग के समीप 'वासुली गुफा, शीतला खेत में मलजा गुफा, रिउणी द्वारसो गुफा और श्री हैड़ाखान की गुफा इत्यादि। सम्प्रति सन १९५८ ई० मै श्री राधाष्टमी के दिन श्री वृन्दावन धाम मे श्री श्री बाबा का एक सिद्धपीठ (आश्रम) सस्थापित हुआ है।

हलद्वानी के कटघरिया आश्रम मे सन् १९५८ ई० की फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी (२४ फरवरी) को श्री श्री बाबा की मूर्ति स्थापना के उपलक्ष्य मे विराट उत्सव हो रहा था। उस उत्सव मे प्राच्य प्रतीच्य, भक्त विद्वान् एवम् सहस्रो स्त्री पुरुष एकत्रित हुए थे। कथा, कीर्त्तन, पाठ, स्तुति, प्रार्थना तथा ध्यान मे सब मग्न थे। सब के सब यज्ञ कार्य मे व्यस्त थे। उसी शनिवार की रात्रि को ११ बजे श्री श्री बाबा के आश्रम मे मानवाकार एक दिव्य ज्योति का आविर्भाव हुआ। दिव्य गंध से वह स्थान परिपूर्ण हो गया। वह दिव्य ज्योति जमीन से दो फीट ऊपर दर्शक जनो को दृष्टिगोचर हुई। उसी ज्योति मे एक व्यक्ति को कुर्ता टोपी धारण किए प्रत्यक्ष श्री श्री बाबा के दर्शन हुए। उस समय दर्शको की ज जै ध्वनि से सारा नभ मडल मुखरित हो गया। बहुत से जीव विमलानन्द के कारण सज्ञाहीन हो गए। वह ज्योति कुछ समय दर्शन देकर, जिस कुटी मे श्री विग्रह स्थाप-नार्थ विराजमान था, उसी मे प्रविष्ट हो गई।

सिद्धाश्रम

सिद्धाश्रम शीतलाखेत से ४ फर्लांग की दूरी पर है। यहा पर श्री श्री बाबा की एक धर्मशाला और श्री वैष्णवी भगवती का एक मन्दिर है। आश्रम मे ही एक अविरत प्रवहमान जल धारा है। सर्वोच्च स्थान पर एक और भी कुटीर है। यहा से नन्दाकोट, बद्रीनारायण तथा नीलकण्ठ आदि हिमालय के गौरवमय दर्शन होते हैं। इसी सिद्धाश्रम मे श्री चरणाश्रित बाबा ने विह्वल हृदय से खोज करते करते श्रीश्री बाबा का साक्षात्कार दर्शन लाभ किया था। श्री श्री बाबा की कृपा श्री चरणाश्रित बाबा पर बाल्यावस्था मे ही हुई थी। परन्तु चरणाश्रित बाबा उनके स्वरूप को नही समझ सके एव उनकी कृपा के मूल्य से भी अनभिज्ञ ही रहे।

सन् १९३७ मे जब वे गुजरात के रूपाल नामक ग्राम मे चातुर्मास्य व्रत कर रहे थे तो अचानक उनकी दृष्टि शक्ति नष्ट हो गई तथा प्रबल ज्वर से भी ग्रस्त थे। इसके दो दिन पश्चात् श्री श्री बाबा ने इन को दर्शन दिया और इन के सिर पर अपना कर कमल फेरने लगे। इसके कुछ क्षण बाद ही श्री चरणाश्रित बाबा की दृष्टि शक्ति आ गई और ज्वर से भी विमुक्त हो गए। श्री श्री बाबा भी वहाँ से अदृश्य हो गए।

इस के अनन्तर श्री चरणाश्रित बाबा श्री गुरुजी महाराज के सन्धान मे तीव्र भाव से भ्रमण करते करते इस सिद्धाश्रम मे आए और श्री श्री बाबा महाराज का दर्शन लाभ कर कृतार्थ एव परितृप्त हुए। पुन श्री श्री बाबा अदृश्य हो गए।

श्री श्री चरणाश्रित के मन मे फिर सन्देह हुआ कि जिनको मैंने पाया है, वे वास्तव मे ईश्वर हैं या नही ? उन को ईश्वर

रूप मे दर्शन न प्राप्त करू, किस प्रकार पूर्ण विश्वास होगा ? इनके सम्बन्ध में मैं जगत को क्या कह कर परिचय दूंगा ? इसी उद्देश्य में रहते रहते श्री चरणाश्रित बाबा ने एक दिन श्री श्री बाबा के त्रिनयन सदाशिव रूप साक्षात्कार किए। उन दर्शन के समय श्री साम्ब सदाशिव कुंज, वृन्दावन के वर्तमान अध्यक्ष तथा पुजारी श्री बाँकेलाल पाठक भी थे। श्री पाठक जी ने उनको मनुष्य के रूप में ही देखा था। श्री श्री बाबा के अन्तर्धान के पश्चात उन को ज्ञान हुआ कि ये "श्री श्री हैड़ाखानवाले बाबा" हैं।

इस दर्शन लाभ के पश्चात श्री श्री चरणाश्रित बाबा का समस्त संदेह दूर हो गया। श्री श्री साम्ब सदाशिव भगवान श्री हैड़ाखानवाले बाबा की सेवा पूजा विधिवत आरम्भ हुई। "श्री श्री बाबा के परिचय से जीव का मंगल होगा" इस कामना के आधार पर श्री श्री चरणाश्रित बाबा के हृदय मे, इस तत्व का प्रसार हो ऐसी इच्छा हुई। श्री श्री धाम वृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड पर सन १९५८ ई० मे श्री श्री बाबा का 'सिद्ध पीठ' प्रतिष्ठित हुआ। भक्तगणों के उत्साह एवम प्रेरणा से आश्रय एवं विग्रह का संस्थापन कार्य पूर्ण हुआ। उसी दिन कठघरिया निवासी श्री कुंवरसिंह को श्री श्री बाबा ने साक्षात् प्रकट होकर कहा कि मैं वृन्दावन जा रहा हूँ। कुर्माचलवासियों तथा सभी श्रद्धालु जीवों का यह अटल विश्वास है कि श्री श्री बाबा प्रच्छन्न रूप से सर्वदा सर्वत्र विचरण करते हैं।

श्री श्री बाबा ने अनेकों जीवों को दर्शन देकर कृतकृत्य किया है। किसी को साक्षात् रूप में, किसी को स्वप्न मे, किसी को चित्र से प्रकट होकर, एवं साधनाओं के आधार पर सभी समस्याओं का समाधान होता रहता है। अनेकों प्रकार के मान-सिक तथा शारीरिक कष्ट दूर होते हैं। अनन्त जीव दिन प्रति-

दिन श्री भगवान को शरणापन्न हो अपना जीवन सार्थक कर रहे हैं।

श्री श्री बाबा के चरित्र सबध मे मैं सक्षिप्त चर्चा कर यह प्रसग समाप्त करता हूँ। उल्लिखित ग्रन्थ समूह से पाठकगण विशेष रूप से सभी बातो को समझ सकेंगे।

इन्स्टिटयूट ऑर ओरियटल फिलासफी वृदावन
१—२—१९६२

विनीत
प्रो श्री उपेन्द्र चन्द्र लेखारू
एम ए बी एल

ॐ

पञ्चम पुष्प—श्री "हैड़ियाखण्डी" नाम महिमा

श्री महेन्द्र महाराज जी द्वारा प्रेरित

सकलनकर्ता
डॉ श्याम बिहारीलाल गौड़

श्री गुरु

प्रस्तावना

भगवान् नाम की महिमा विविध सत महर्षियो, गरुजनो, वदो एव सतशास्त्रो ने अगाध रूप से गाई है। पर इसकी महिमा कहाँ तक बखान की जावे सभी वाणिया अन्त मे मूक हो गइ। जिस प्रकार भगवान् अनत हैं, उसी प्रकार प्रभु का नाम भी अनन्त एव अवर्णनीय तत्त्व है। इसमें मन, वाणी एव बुद्धि की पहुँच नही है। यहा तो केवल स्वय भगवान ही नाम रहस्य प्रकट कर जीवो पर कल्याण करते हैं। वैसे तो राम न सकहिं नाम गुण गा वाली गाथा ही सत्य चरितार्थ होती है।

श्री 'हैडियाखण्डी नाम की महत्ता भी स्वय भगवान् परम पूज्य, परम देव, महाप्रभु श्री सद्गुरु महेन्द्र महाराज जी ने जनहित के लिये इस दास बालक पर कृपा कर प्रकट की है। इसमे किसी मनुष्य की बुद्धि का विकार नही है। ये शब्द स्वय भगवान के श्रीमुख से साक्षात हृदय गुहा मे प्रकट हुए हैं। एव इन्हें लिखने का आदेश हुआ है जिससे जीवमात्र का कल्याण हो। भगवान नाम श्री 'हैडियाखण्डी पाँच वर्णों से युक्त है (है+ड+य +ख+डी) जिसकी व्याख्या एव महत्ता श्री गुरु मुख से निम्न रूप मे श्री गुरु चरणो मे अर्पण है।

डा श्यामबिहारीलाल गौड



श्री 'हैडियाखण्डी' नाम महिमा

(अथ विवेचन)

"है" सद्गुरू भगवान् श्री "हैडियाखण्डी" नाम की महिमा बताते हुए श्री सद्गुरु महाराज परम पूज्य श्री महेन्द्र बाबा कहते हैं कि प्रथम अक्षर है (ह्+ऐ) मे ह् आकाश बीज है। आकाश का गुण सवव्यापकता है। इस 'ह्' की सवव्यापकता के कारण ही भगवान श्री हरि और हर ने भी इस 'ह्' को प्रथम धारण किया, अत भगवान चराचर के ईश अखिल ब्रह्माण्ड नायक जिन्होने समय समय पर अनेक रूप धारण किये हैं वे ही पुन इस भूतल पर 'ह्' बीज स्वीकार कर श्री हैडियाखण्डी नाम धारण कर प्रकट हुए हैं। भगवान का प्रथम नाम हिरण्यगभ है अर्थात् जिनसे सबकी उत्पत्ति हुई है वे ही 'ह्' अक्षर को धारण करने वाले भगवान हिरण्यगभ श्री हैडियाखण्डी रूप से प्रकट हुये है। सष्टि के आदि मे श्री ब्रह्मा जी की तपस्या से प्रसन्न होकर जिन्होने 'हयग्रीव' रूप धारण कर वेदो को प्रदान किया इस 'ह्' से उसी अवतार की याद दिलाते हैं कि वे ही हयग्रीव आदि रूपो को धारण करने वाले श्री प्रभ हैडियाखण्डी रूप से पुन वेद ज्ञान-सत्य ज्ञान को अपने अश जीवो को प्रदान करेंगे, उन्हे सद्ज्ञान देकर सनातन माग पर लगायेंगे एव उनके सब दु खो का नाश करेंगे।

सत्य प्रकट करि ज्ञान प्रकाशो।
जीव अघदु ख वेगि विनाशो॥ (दि० क०)

"दिव्यकथामृत" मे जीव कैसे ईश्वर के सन्मुख हो इसके अनेक साधन शास्त्रो एव आचार्यों द्वारा बताये गये हैं, पर इस

घोर कलिकाल मे कोई साधन सुलभ नही हो पाता और यह जीव अज्ञान, दु ख एव दीनता के अध कूप मे ईश्वर से विमुख हुआ पडा है । अत भक्तवत्सल दीनबन्धु भगवान् ने दयावश हो एक सरल उपाय सोचा और वह है 'पलटउ हृदय यही बडी दाया ।

हृदपरिवतन जेहिविधि होवें ॥
करउ सहष जगत सुख सोव ॥
अन्य उपाय न एहि समकोऊ ।
सद्य सफलता घरे सजोऊ ॥ (दि० क०)

अर्थात् यहाँ 'ह' अक्षर से सम्बोधन करते है कि जो 'ह' अर्थात् जीवो के "हृदय" को पलटते है, जीव को ईश्वर के सन्मुख करते हैं वे ही श्री सदगुरू भगवान् श्री हैडियाखण्डो है ।

'ऐ' (ह+ऐ) जब जब श्री प्रभु ने अवतार लिया है तब तब अपनी आदि शक्ति के सग ही अवतरित हुये है । जसे—गौरीशकर, लक्ष्मीनारायण, सीताराम, राधाकृष्ण, मायाब्रह्म आदि । अत अब भी श्रीमहाप्रभु मा अम्बा को स्वीकार कर ही प्रकट हुये है । यहाँ 'ह' के सग 'ऐ' यह सम्बोधन करती है कि 'ऐ' जो शुद्धशक्ति बीज है वह ही ऐं, ह्री, क्ली, श्री, से युक्त जो मा 'परा अम्बा' है वे 'ह' अर्थात भगवान् के हृदय मे विराजी हुई हैं । जिन्होने आदिशक्ति को हृदय मे धारण कर रखा है वे की है (ह+ऐ) हैडियाखण्डी भगवान् हैं ।

अम्बशक्ति बनि कीन्ह प्रवेशा ।
दया वृत्ति गहि लीन्ह महेशा ॥
हृदय विराजति दया भवानी ।
पाइ समाश्रय हर्षित प्राणी ॥ (दि० क०)

इस प्रकार माँ 'अम्बा' सहित दयार्द्र भगवान् श्री हैडियाखण्डी के दर्शन कर सभी भक्त सुखी एव हर्षित हो गये ।

'ड' यह 'ड' डमरू बीज है अर्थात जो डमरू को धारण करते हैं जिनका डमरू अगम निगम के भेदो को खोलता है वे ही साम्ब सदाशिव 'ड' अक्षर को धारण करनेवाले श्री हैडियाखण्डी नाम से प्रकट हुये है। अथवा 'ड' दण्ड बीज हैं। एव यहाँ यह सम्बोधन करता है कि जो दण्ड को धारण करते है वे ही हाथ मे दण्ड लेकर श्री हैडियाखण्डी नाम धारण कर प्रकट हुये है।

हाथ लकुटि कबहूँ धरि लेहीं।
मनहुँ जीव कह यह सिख देहीं॥ (दि० क०)

ऐसे लकुटी धारण करने वाले शिव पुराण प्रसिद्ध श्री लकुटी अवतार श्री हैडियाखण्डी नाम से प्रकट हुये है। इसमे इकार की मात्रा उसी लकुटी का प्रतीक है।

'या' यावत मात्र जीवो को जो शरण देने योग्य है, शरण देते है वे ही श्री हैडियाखण्डी भगवान है। या (य+आ) जो 'य' अर्थात् यति (ऋषि) रूप मे प्रकट हुये है वे 'य' को धारण करने वाले श्री हैडियाखण्डी भगवान हैं। पर यति तो स्वभाव से ही विरक्त, असग, एकान्त वासी, बस्ती, ग्राम, नगर से दूर जगल पहाडो पवित्र सरिताओ के तट पर विचरण करते हैं उन्हे किसी से क्या मोह! इसलिए परम दयालु सदगुरू भगवान परमपूज्य श्री महेन्द्र महाराज बाबा जी से प्रार्थना करते हैं "अनुरक्त बनो हे विरक्त महा। असमर्थ तुम्हे यह ढूढ़ रहा॥" अपने परम प्राण श्री महाराज श्री परहित जनहितकारी प्रार्थना स्वीकार कर दया भवानी को सगीकार कर लिया और अब वे विरक्त यति अनुरक्त बाबाजी बन गये अर्थात सत से सता बन गये। 'य' मे आ की मात्रा मातृ बीज लगने से 'या' बन गया। ऐसे जो ममत्वपूर्ण भाव से माता पिता के समान अपने आश्रितो, शरणागतो का योगक्षेम वहन करते है, रक्षा एव पालन करते हैं, दया दृष्टि से निहाल करते है ऐसे 'या'

अक्षर को धारण करनेवाले श्री हैडियाखण्डी नाम रूप से प्रकट हुये हैं ।

पल पल लखि प्रभु दया अनन्ता ।
मात पिता सम पालत सता ।। (दि० क०)

'ख' सष्टि के आदि मे जिन भगवान शिव ने ज्योति 'ख' ब रूप से प्रकट होकर अपनी अनन्तता एव अनादि स्वरूपता का परिचय दिया एव भगवान श्री हरि और श्री ब्रह्मा जी को सदज्ञान देकर सष्टि की उत्पत्ति एव पालन का काय सौंपा था वे ही भगवान् साम्ब सदाशिव 'ख' अक्षर को धारण करने वाले ज्योति रूप से प्रकट होकर हैडियाखण्डी नाम धारण करते है ।

चौथ तिथि अरु शनि शुभ वारा ।
फागुन मास सुपक्ष उजारा ।।
युग सहस्त्र सवत दस चारी ।
प्रकटे ज्योतिमय वपु धारी ।। (दि० क०)

जिन्होने भक्त श्रेष्ठ श्री प्रह्लाद की रक्षा के लिये अपनी सर्व-व्यापकता एव भक्तवत्सलता सिद्ध की, वे ही 'ख' ब मे से प्रकट होनेवाले भगवान श्री नृसिंह पुन ख' अक्षर को हैडियाखण्डी नाम से धारण करते है अर्थात ख से प्रकट हुए हैं। अथवा जो हैडियाखण्डी अवतार धारण कर अनेक मतमतान्तरों का खडन कर शुद्ध सनातन धम का उपदेश करते है वे ही 'ख' अक्षर को धारण करने वाले श्री हैडियाखण्डी भगवान् हैं । आज जीव अनेक मतमतान्तरो में भटक रहा है । सभी साध्य एव साधन से रहित हो गये हैं। जीव को अपने प्रेय श्रेय का ज्ञान नही रहा और ना ही जग मे कोई शुद्ध सीख मिलती है । अत जो सब मतो का समन्वय करने हेतु प्रकट हुए हैं वे ही श्री हैडियाखण्डी भगवान् हैं ।

करत सनाथ अनाथ को सरल सन्त सम रूप।
धर्म समन्वय करन हित प्रकटे ऋषिवर रूप।। (दि० क०)

यह सरल सतरूप मे भगवान शिव का प्राकटय केवल जीवो पर दया करने, धर्म का समन्वय, शुद्ध सनातन धर्म की प्रतिष्ठा हेतु ऋषिरूप मे हैडियाखण्डी नाम से हुआ है।

'डी' (ड+ई) 'ड' डरे हुये—डगमगाये हुये। इस कलिकाल मे जब चारो ओर भय एव अस्थिरता व्याप रही है ऐसे समय मे जो 'ड' डरे हुये, भय से कपित जीवो को अभय करने हेतु प्रकट हुये है वे ही श्री हैडियाखण्डी भगवान् है। सारा विश्व विनाश के भय से त्रस्त है। दहिक, दविक एव भौतिक तापो से सभी पीडित है, राग द्वेष की प्रबल अग्नि प्राणि मात्र, नगर नगर, देश देश, जन जन मे व्याप रही है। छलबल विनाशकारी अस्त्रशस्त्रो एव अनेकानेक कुचक्रो द्वारा एक दूसरे पर घात लगाये हुये है। ऐसे 'ड' डगमगाये विश्व को जो त्राण देने हेतु, 'सत्य सरलता एव प्रेम' का अमतमय मत्र उपदेश देने हेतु प्रकट हुये है वे ही श्री हैडियाखण्डी भगवान है। ऐसे 'ड' डरे हुये, डगमगाये जीवो को त्राण देने वाले, अभय देने वाले, जो 'ई' ईश्वर है वे ही श्री हैडियाखण्डी भगवान् हैं। जो भक्तो के भजन करनेवालो के 'ई' ईश्वर है, ईष्ट देव है वे ही श्री हैडियाखण्डी भगवान हैं।

'ई'—ईशान-जो सष्टि के एक मात्र ईशान अर्थात शासन कर्त्ता ईश्वर है वे ही श्री हैडियाखण्डी नाम रूप से प्रकट हुये हैं।

त्राण हेतु जग के तुम स्वामी।
विविधि रूप धर अन्तर्यामी।।

त्रस्त जीवो को जो त्राण देनेवाले स्वामी 'ई' ईश्वर है जो अन्तर्यामी रूप से सब जगह रमे हुए हैं, जो समय समय पर अनेक रूप धारण करते है, भक्तों को सुख देते हैं, अनेक चरित्र

रचते हैं वे ही ई ईश्वर श्री हैड़ियाखण्डी नाम से प्रसिद्ध हुये है, प्रकट हुये हैं।

श्री सद्गुरु साम्बसदाशिव शंकर हरि ॐ

श्री हैड़ियाखण्डी भगवान् की जय हो।

ईश्वर सत् चित् आनन्द बोल।
साम्बसदाशिव साम्बसदाशिव साम्बसदाशिव बोल।
पालक प्रेरक जगपति बोल।
हैड़ियाखण्डी हैड़ियाखण्डी हैड़ियाखण्डी बोल।

श्री हैडियाखण्डी नाम भगवान् की महिमा

(तत्व दर्शन)

१

प्रणवभेद से अर्थ महिमा

इस पचाक्षरी नाम भगवान श्री हैडियाखण्डी की महत्ता प्रकट करते हुये श्री सदगुरू महाराज परम पूज्य श्री महेन्द्र बाबाजी कहते हैं कि भगवान् साम्बसदाशिव ने यह पाच अक्षर का नाम धारण इसलिए किया कि आदि प्रणव अक्षर 'ॐ' भगवान शिव के मुख से सव प्रथम प्रकट हुआ जो भगवान का बोध कराने वाला है। इस 'ॐ' अक्षर ब्रह्म के भी पाँच अवयव हैं। अ उ म् बिन्दु एव नाद। इन पाच अक्षरो स ॐ युक्त है। अत नाम भगवान श्री हैडियाखण्डी ही साक्षात् प्रणव ॐ ही हैं। इ ही पाँच अवयवो के आधार पर ही भगवान् ने यह पाच अक्षर वाला नाम श्री हैडियाखण्डी स्वीकार किया। भगवान् के प्रणव जप से जापक को पाँच प्रकार की मुक्ति—सायुज्य, सामीप्य, सार्ष्टि, सालोक्य एव सारूप्यता प्राप्त होती है एव पाच फल—धम, अर्थ, काम, मोक्ष एव पराभक्ति प्राप्त होती है। अत श्री हैडियाखण्डी नाम से उपरोक्त फल एव मुक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है।

२

मत्र भेद से अर्थ महिमा

भगवान् का प्रसिद्ध वेदोक्त मत्र "नम शिवाय' भी पँच अक्षरो वाला ही है। अत इस पचाक्षरी मत्र के अधिष्ठातृ देवता

साम्बसदाशिव भगवान ही पच अक्षर वाला नाम धारण कर हैडियाखण्डी रूप से प्रकट हुये हैं जो जापक को हैडियाखण्डी उच्चारण करने मात्र से 'नम शिवाय' के जप फल को प्रदान करते है, अर्थात हैडियाखण्डी नाम मत्र एव 'नम शिवाय मत्र दोनो अभेद हैं। दोनो के अधिष्ठातृ देवता एक है, केवल शब्दो एव रूप का ही भेद है। तत्वत दोनो एक ही है। इस पचाक्षरी मत्र से ही मातृकावण प्रकट हुआ है जो मुख्य पाच भेदो वाला है— अ, इ उ, ऋ एव ल ।। इसी प्रकार व्यञ्जन भी पाच पाँच वर्णों से युक्त पाँच वग वाले हैं जसे क, ख, ग, घ, ङ आदि ।।

३

तत्व भेद से अथ महिमा

इस चराचर दृश्य जगत की सृष्टि पाच तत्वो से ही रची गई है, आकाश, वायु, अग्नि जल एव पृथ्वी। इन पाचो तत्वो के प्रेरक एव शासनकर्ता वे ही भगवान् श्री हैडियाखण्डी है।

तत्वरूप तुम, तत्व वित्त तुम।
पच तत्व के प्रेरक हो तुम ।।
सकल तत्व तुम्हारे आधीना।
प्रकटित महिमा यह सब जाना ।। (दि० क०)

पच तत्वो से सृष्टि इस प्रकार है— सृष्टि पृथ्वी मे, स्थिति एव जीवन बृद्धि जल मे, सहार अग्नि मे जो सबको जला कर स्वाहा कर देती है, गमन, आना जाना अर्थात् गति वायु मे एव आश्रय आधार आकाश मे हो रहा है। इस प्रकार पच तत्व एव उनकी पाँच तन्मात्रायें—शब्द, स्पश, रूप, रस, गध मे सारी माया का पसारा श्री साम्बसदाशिव भगवान् ने रच दिया है। पाँच ही शिव तत्व बताये गये हैं—शुद्धविद्या, महेश्वर, सदाशिव,

शक्ति एव शिव । इस प्रकार पच तत्वो के आधार पर भगवान् ने पचाक्षरी नाम श्री हैडियाखण्डी धारण करना स्वीकार किया ।

४

तत्र एव पूजा भेद से अर्थ महिमा

पाँच प्रकार के यज्ञ बताये गये हैं एव पच देवता ही मुख्य पूजनीय बताये गये हैं । पच यज्ञ—अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ अतिथिसेवायज्ञ एव जपयज्ञ । तथा पच देवता—गणेश, भवानी, ब्रह्मा, विष्णु एव महेश । इस प्रकार पाँच अक्षर का नाम श्री हैडियाखण्डी उच्चारण करने मात्र से उपरोक्त पाचो यज्ञो का फल एव पच देवता की पूजा का फल सहज ही प्राप्त हो जाता है। जिसमे ये पाँचो यज्ञ स्थित है, पाचो देवता जो एक रूप मे प्रकट हुए हैं वे ही श्री हैडियाखण्डी भगवान् है।

सब देवमय देह तुम्हारी ।
तुम सम तुम हे प्रभु अवतारी । (दि० क०)

पाच ही पूजा बताई गई है जो पच कम किसी काल मे भी त्याज्य नहीं है—यज्ञ, दान, तप, नामजप एव भगवान् के श्री विग्रह की षोडशोपचार पूजा अर्थात् इन पाँचों कर्मों का श्री प्रभु पाच अक्षर वाला नाम श्री हैडियाखण्डी धराकर उपदेश करते है कि श्री हैडियाखण्डी नाम के सुमिरण मात्र से पाच पूजा का फल सहज ही प्राप्त हो जाता है, एव जो जातक को सदा इन पाचो कर्मों मे तत्पर करते है वे ही श्री हैडियाखण्डी भगवान् हैं। भगवान शिव लिंग की पूजा पाँच मत्रो द्वारा पचशिव ब्रह्म मे होती है जो शास्त्रो मे पूण रूप से वर्णित हैं पच मत्र निम्न प्रकार हैं—

(१) ॐ सद्योजात प्रपद्यामि सद्योजाताय व नमो नम भवेभवेनाति भव भवस्व मा भवोदभवाय नम ॥

(२) ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नम श्रेष्ठाय नमो रूद्राय नम कालाय नम कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नम सवभूतदमनाय नमो मनो म थनाय नम ॥

(३) ॐ अघोरम्योऽथघोरेम्यो घोरघोरतरेम्य सर्वेभ्य सर्वेशर्वेभ्यो नमोस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्य ॥

(४) ॐ तत्पुरुपाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्र प्रचादयात ॥

(५) ॐ ईशान सव विद्याना ईश्वर मव भूताना। ब्रह्माधि पतिब्रह्मणोऽधिपतिब्रह्मा शिवोमेऽस्तु सदाशिवोम् ॥

५

स्वरूप भेद से अर्थ महिमा

भगवान शिव के पच मुख है एव पाच ही कृत्य है। चार मुख तो चार दिशाओ मे एव बीच मे पाचवा मुख है। पाच कृत्य—सृष्टि स्थिति, सहार, तिरोभाव एव अनुग्रह। चार मुख से तो चार कम करते है एव पाचवे मुख से जीवो पर अनुग्रह करते है। प्रथम चार कम तो जीव के बन्धन के हेतु कहे जाते है एव पाचवाँ कम 'अनुग्रह' जीव के मोक्ष का कारण बताया गया है। बिना ईश्वर के अनुग्रह के जीव का बन्धन नही छूटता है। यही ईश्वर अनुग्रह जीव के कल्याण का हेतु बताया गया है। इस प्रकार अपने इस पचाक्षरी नाम श्री हैडियाखण्डी से अपने स्वरूप का लक्ष्य करके भगवान् अपने मुखो एव कृत्यो का बोध कराते हैं। ये परात्पर ब्रह्म सबके आश्रय भगवान श्री हैडियाखण्डी अपने पाँचो कृत्यो को पाचो मुखो से पाच तत्वो मे

व्याप्त करके छाये हुए हैं। सृष्टि कृत्य पृथ्वी मे, स्थिति जल मे, सहार अग्नि मे, तिरोभाव वायु में एव अनुग्रह आकाश मे स्थित है। इस प्रकार अपने इस पचाक्षरी नाम श्री हैडियाखडी धारण कर अपने शिव स्वरूप का बोध कराते है।

मुख्य प्राण पाच प्रकार के हैं जिनसे इस चतन्य जगत का व्यापार चल रहा है—प्राण अपान, समान, उदान एव व्यान। अत श्री प्रभु अपने इस पचाक्षरी नाम से स्पष्ट करते हैं कि प्राणी मात्र मे मै हैडयाखडी ही क्रियाशील हूँ। भगवान शिव से पाँच ही शिवब्रह्म प्रकट हुए है (१) ईशान, (२) तत्पुरुष, (३) अघोर (४) वामदेव एव (५) सद्योजात ये ही पच ब्रह्म पचतत्वो मे पच कृत्यो द्वारा कायरत है। इस प्रकार यह सारी सृष्टि ही पच शिव ब्रह्म स्वरूप है, अर्थात् श्री हैडियाखण्डी स्वरूप ही है। इसीलिए भगवान् ने यह पाच अक्षरो वाला नाम श्री हैडियाखडी ही धारण करना स्वीकार किया।

भगवान् शिव पर चढाया जाने वाला शिव प्रिय पुष्प (आक) भी पच दलो वाला है एव उसमे पाच बीज ही ब्रह्म पुरुष रूप से बठे हुए है। मानो पाँच दल (पखडियाँ) तो पाँच तत्व एव कृत्य हो एव उसमे प्रतिष्ठित पच बीज पच शिव ब्रह्म के साक्षी हैं। पाँच ही जीव के कोष बताये है अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एव आनदमय जिसमे स्थूल एव सूक्ष्म रूप से ईश्वर की ही सत्ता व्याप्त है। भगवान् शिव की पाच ही शक्तियाँ है—(१) सवकतृत्वरूपा, (२) सवतत्वरूपा (३) पूर्णत्व रूपा (४) नियत्वरूपा एव (५) व्यापकत्वरूपा॥

जीव की भी पाच कलायें शास्त्रो मे विशेष वर्णित है—कला, विद्या राग, काल एव नियति। ईश्वर प्राप्ति मे पाँच ही साधन जीव के लिए, सन्त एव शास्त्र वर्णित है—(१) नाम,

* ॐ श्री गुरु *

सङ्क्षिप्त-परिचय

श्री मुनीन्द्र भगवान् के सर्व प्रथम दर्शन आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व कुर्माञ्चल वासियों को श्री हैडाखान की गुफा में कुर्ता टोपा वेश में हुए थे और उसी समय से इन अनामी व सर्वनामी को लोग श्री हैडाखान वाले बाबा के नाम से पुकारने लगे। आपके जन्म तथा अन्य प्रारम्भिक चरित्रों के विषय में अभी तक कुछ ज्ञात नहीं हुआ है। प्रकट रूप से आप की दिव्यतम लीलाओं का विस्तार लगभग तीस वर्ष से रहा और उस समय में लोग नाना प्रकार के अनुमान करते थे, कोई आप को अश्वत्थामा तथा कोई श्री हनुमान जी का स्वरूप समझते थे, एवं कतिपय महानुभाव इन्हें श्री सदा शिव शङ्कर समझ कर आराधना करते थे, किन्तु वास्तविक स्वरूप का ज्ञान किसी को नहीं हो सका। भारत के कोने कोने से सन्त व भक्त जन हिमालय के इस सुदूर प्रान्त में आपके दर्शनों के निमित्त आते थे और आप मौन व्याख्या से उनकी सब शङ्काओं को निर्मूल कर उनके मनोरथ पूर्ण करने की कृपा करते थे। तिब्बत के अनेक शतायु सिद्धलामा भी अपने योग की पूर्ति के लिए लगातार महीनों तक आपकी सेवा में रहते देखे गये, किन्तु अन्त में उनके भी ये ही शब्द थे कि श्री मुनीन्द्र भगवान योग की उस उत्कृष्टतम अवस्था में रहते हैं जिसका भान भी सिद्ध योगियों को नहीं हो सकता और वे श्री चरणों में सर्वदा नतमस्तक होते देखे गये।

आपकी अनेक चमत्कार पूर्ण लीलाओं से न केवल कूर्माञ्चल

निवासी ही स्तब्ध हुए किन्तु उन दिव्य लीलाओ का विस्तार अनेक पाश्चात्य देशो मे भी समय समय पर हुआ, जसा कि स्वीडन के निवासी महातत्त्व चिन्तक दार्शनिक श्री नील्स औल्फ क्रीजैण्डर महोदय तथा उनकी धम पत्नी का एक ही समय मे लेनिनग्राड और रूस की राजधानी मास्को मे दशन देने की कृपा की। जिससे प्रभावित होकर वे दम्पति भारत के अनेक आश्रमो मे होते हुए अलमोडा पहुँचे और कसार देवी नामक निजन स्थान मे उनको मुनीन्द्र भगवान् के दशन हुए जिससे वे पति पत्नी कृतकृत्य हो गये।

एक समय अयोध्या निवासी एक सिद्ध सन्त श्री गगोत्तरी से गगाजल लेकर श्री रामेश्वर धाम की यात्रा के निमित्त जाने क प्रस्तुत थे किन्तु उनके इष्ट भगवान् श्री राम ने स्वप्न में आदेश दिया कि श्री हैडाखान वाले बाबा साक्षात् श्री साम्ब सदाशिव के अवतार हैं, इसलिए तुम वहा जाकर श्री गगाजल से उनका अभिषेक करो, अपने इष्ट की यह आज्ञा शिरोधाय कर वे सन्त अलमोडा आये और श्री मुनीन्द्र भगवान के दशन करके कृत कृत्य हो गये। श्री गगाजल से अभिषेकके समय उनको साक्षात त्रिनेत्र धारी शिव के रूप मे दशन हुए और जहा श्री प्रभु विराज रहे थे वह स्थान दिव्य धाम श्री कलाश के रूप मे परिणत हो गया। आप की कृपा से अनेक मतको को जीवन दान व असाध्य रोगियो के कष्ट निवारण हुए, जो जिस सकल्प से श्री चरणोकी शरण मे जाता उसके सकल्प की स्वय पूर्ति हो जाती थी। दया और अगाध शान्ति के आप साक्षात् अवतार थे। अन्य अवतारो से आप के अवतार मे यह विलक्षणता थी की अन्य अवतारो मे दयामय भगवान ने अपने क्रोधावेश का भी यत्र तत्र प्रसगानुकूल दिग्दर्शन कराया है, यथा श्री चतन्य महा प्रभु ने एक समय अपने भक्त का कष्ट देखकर अकस्मात ये शब्द श्री मुख मे कहे कि

"मेरा चक्र सुदर्शन कहाँ है" किन्तु यहा एसा देखा गया कि लोगो ने आप को पागल समझ कर आप पर प्रहार किये कि तु आप के श्री मुख से केवल आशीर्वाद ही निकलता रहा और विषाद व क्रोध के तनिक भी चिह्न प्रकट नही हुए, यह थी भागवती शक्त्यावतरण की अलौकिक महिमा।

भव भय सत्रस्त अनन्त जीवो का उद्धार कर आप अचानक अन्तर्ध्यान हो गये और आप के शरीर छोडने के विषय मे अनेक शोध करने पर भी किसी को कुछ भी ज्ञात नही हुआ, इसके पश्चात भी समय समय पर भक्तजनो को उसी दिव्य रूप मे आपके दर्शन होते रहते हैं। विक्रम सवत २००६ मे आपने अनुपम कृपा करके निजजन भी चरणाश्रित देव को जो आपके अन्तर्ध्यान होने के पश्चात आपके विरह मे कूर्माञ्चल प्रदेश मे व्याकुल व व्यथित हृदय से भ्रमण करते रहते थे, श्री सिद्धाश्रम मे साक्षात श्री साम्ब सदाशिव के रूप मे दर्शन देकर उनके मनोभिलाषित सङ्कल्प की पूर्ति करते हुए विश्व को अपने दिव्यतम प्राकट्य का भान कराने की कृपा की और उसी समय मे भक्त जनो का दृढ विश्वास हो गया कि श्री हैडाखान वाले बाबा श्री साम्ब सदा शिव के अवतार है जो दया से प्रेरित होकर विश्व सुमगल हेतु जीवो के कल्याण के लिए इस धराधाम पर ब्रह्म चारी के रूप मे प्रकट हुए थे। श्री पूज्यपाद महेन्द्र बाबा ने अपने भक्ति रस पूर्ण काव्य श्री दिव्य कथामृत मे बडे मार्मिक शब्दो मे इसका वर्णन सारगर्भित निम्न लिखित पद्य मे किया है —

"विविध विश्व लीला रची, भाँति भाँति सुख दैन।
अश शुद्ध कँह विमुख लखि, आवत शिव सुधि लैन॥

मेरी तुच्छ बुद्धि मे भी पूज्य महेन्द्र बाबा ने गागर मे सागर की भाँति इस पद्य मे श्री मुनीन्द्र भगवान् के इस धराधाम पर अवतार के कारण का स्पष्ट उल्लेख करने की कृपा की है। यह

श्री साम्ब सदाशिव देव के अवतार की महिमा है कि जो भटके हुए अनन्त जीवो के उद्धार के निमित्त समय-समय पर कृपा करते रहते हैं। अन्त मे मैं इसी दृढ निश्चय पर पहुँचा हूँ कि यह सब श्री पूज्य पाद श्री महेन्द्र बाबा की श्री चरणो मे अगाध श्रद्धा भक्ति और अनुपम प्रेम व अनन्त जन्मोपार्जित सेवा का फल है कि इस कलिकाल मे भटके हुए जीवों के कल्याणार्थ श्री साम्ब सदाशिव ने अपने दिव्य अवतार का स्वय परिचय प्रदान करने की कृपा की। इस लघु पुस्तिका मे उसी मेरे भगवान की स्तुतियो का सग्रह है जो समय समय पर ग्राह ग्रस्त गज के उद्धार की भाँति हम पाप त्रिताप सन्तप्त जीवो पर अनुकम्पा करते हुए हमे घोर सकटो से विमुक्त करते है। ये सरल स्तोत्र भक्त जनो के नित्य पाठ के लिए श्रीप्रभु कृपा से लिखे गये हैं और आशा है कि भक्त जन इनका पाठ कर अपनी ऐहलौकिक और पारलौकिक कामनाओ की पूर्ति कर श्री भगवद् भक्ति रस का आस्वादन कर आनन्द प्राप्त करेंगे।

श्री भगवान का क्षुद्र जन

गिरधारीलाल मिश्र

श्रीमन्मुनीन्द्र मन्दाक्राता–रत्नाष्ठकम्

सत्य-सत्य शिव शिव भज सु दर सु दराणाम
भव्य भव्य भवभय हर भावनातीत रूपम् ।
द्व द्वातीत तरुण तरणेर्दीप्ति दीप्तम त्रिनेत्र—
सिद्धाधीश सुरमुनिगणव दित त नमाम ॥१॥

हे देवाधिदेव श्री मुनी द्र भगवान ! आपका परम दिव्य स्व रूप ससार के निर्माण से पूव प्रलय के पश्चात् और ससार की स्थिति के सयय की असत्प्राय अवस्था मे भी सवदा सत्य तथा पचमहाभूत आदि दृश्यमान सत्यो का कारण और उनमे अ तर्यामी रूपी से विराजमान है। हे सत्य स्वरूपधारी श्री मुनी द्रदेव ? आप परम कल्याणकारी साक्षात शिव और सु दरो से भी परम सु दर दिव्यातिदिव्य स्वरूप सप न, सासारिक भय को हरण करने वाले, इ द्रिय मन और वाणी से सवथा अतीत स्वरूप को धारण करते हैं। आपका वह दिव्य स्वरूप सुख दुखादि द्व दो से अतीत, मध्याह्न कालीन तरुण सूय की दिव्य ज्योति के समान भास्वर तथा तीन नयनो से सुशोभित है, सुर मुनिगणो से वदना किये गये सिद्ध सिद्धेश्वर श्री भगवान् हैडाखान वाले श्रीमुनी द्र देव हम आप को बारम्बार प्रणाम करते हैं। ॥१॥

मायातीतोऽप्यणुषु रमते राजयन हृत्सरोजम्,
आत्मरामोऽप्युपशम रतिस्सव सिद्धि प्रदाता ।
लोकाध्यक्षोऽप्तनु विभवो दीन ब धुदयालु—
हैडाखाने विहरति शिव श्री मुनीन्द्र स्वरूप ॥३॥

हे भगवन ! आप माया से परे होते हुए भी प्रत्येक परमाणु के अन्तराल को अपनी दिव्य सत्ता से चमत्कृत करते हुए उनमे रमण करते है। आत्माराम होने पर भी शाति के प्रेमी तथा सपूण सिद्धिया प्रदान करने वाले हैं। सपूण विश्व के एक मात्र अधीश्वर तथा विश्व ब्रह्माण्ड वभव के मात्र अधिपति होते हुए भी दयालुता के कारण अकिंचन दीन प्राणियो के ब धु है हे श्री साम्बसदाशिव देव ! आप श्री मुनी द्र के स्वरूप मे श्री हैडाखान क्षत्र मे विहार करने की कृपा करते है ।।२।।

ध्येय ध्येय प्रतिपल भज श्री मुनी द्र स्वरूपम,
गेय ज्ञेय प्रकृति मधुर शाम्भव श्री चरित्रम ।
जाप्य जाप्य मधुर मधुर नाम शम्भो पवित्रम
नेय नेय चरण शरणे चचल चित्त भृगडम ।।३।।

श्रीमुनी द्र महाराज का स्वरूप जो अजर अमर है, वह सद योगियो के भी ध्यान करने योग्य है, श्रीशकरावतार श्री मुनी द्र भगवान् का स्वाभाविक मधुर चरित्र गान करने तथा जानने योग्य है, श्री साम्ब सदाशिव देव के पवित्र तथा मधुरातिमधुर नाम का जप करना चाहिए, श्री मुनी द्र भगवान के श्री चरणारविंदो की शरण मे अपने चित्त रूपी चञ्चल भृङ्ग को ले जाना चाहिये ।।३।।

साक्षात्सत्य हृदि तल गत यत्तमोघ्न दुरूहम्
द्व द्वातीत सुरमुनि गणव दिताघ्रिसरोजम ।।
सिद्धाधीश भुवन विभवस्सेवित सिद्धयधीश
वन्दे नित्य सदय हृदय श्री मुनी द्र महेन्द्रम ।।४।।

भक्तो के हृदय में वतमान अज्ञान रूपी निबिड अ धकार को नाश करने वाले, सत्य स्वरूप, सुख दु खादि द्वन्दो से दूर देवता

और मुनिगणो से जिन के चरणारविंद की व दना की गई है, सिद्धो के अधीश्वर, सांसारिक विभूति से सुसेवित और अष्टसिद्धियो के स्वामी दयालु हृदय से सुशोभित मुनियो मे महे द्र स्वरूप श्रीप्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ।।४।।

पूर्णा चा द्रीं विमल सुषमा बिभ्रत च द्रचूड
चूडान्ते स्वे भुजग यमितान कुन्तलानुद्वहन्तम ।
वेष शात नयन सुखद विश्वशा त्य वह तम्,
आत त्राणे प्रतिपल रत श्री मुनी द्रम भजाम ।।५।।

पूर्णिमा के च द्रमा की भाति विमल का ति को धारण करने वाले च द्रमौलिक को, जो अपने मस्तक पर सर्पों से बँधी हुई जटाओ को धारण किये हुए है समार की शाति के लिए नेत्रो को आन द देने वाले शात स्वरूप को धारण कर दुखियो की रक्षा के लिए प्रतिपल तत्पर है, ऐसे श्री मुनी द्र महाराज को हम सादर भजते है ।।५।।

ज्ञानाना त्व त्रिपुर विजयिन् ! श्रेयसां वा निधानम
धी ह्री कीर्ते परम निलय ज्योतिषा चाद्य ज्योति ।
दीनार्तार्ति प्रशमन फल विद्यते ते स्वरूप
दीने हीने मयि कुरुदया श्री मुनी द्रावतारिन ! ।।६।।

हे त्रिपुरासुर मद मदन श्री सद्गुरु साम्बसदाशिव देव ! आप सपूर्ण ज्ञान तथा शिव कल्याण के एकमात्र अधिष्ठान है बुद्धि, लज्जा और कीर्ति के परम निधान और च द्र सूर्य आदि दिव्य ज्योतियो को अपने दिव्यतमस्वरूप से निर्मल दिव्य ज्योति प्रदान करने की कृपा करते है, अत आप ही सव प्रथम परात्पर ज्योति स्वरूप हैं, आपका यह मुनी द्र स्वरूप दीन हीन सासारिक प्राणियो की आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदविक पीडाओ को

शान्त करने के निमित्त ही आपने धारण किया है, हे श्री मुनीन्द्र महाराज ? मुझ दीन हीन पर भी दया कीजिये ॥६॥

त्वं दीनानां भवभय हरो पारिजातोऽसिदेव ?
स्वर्गस्था वै सुरमुनिगणास्त्वां कृपालुं भजन्ति ।
भूमिस्थानां ननु जनिभृतां भूयसी भाग्य सिद्धि
र्यस्मात्ते त्वां सहज सुहृदं प्राप्य जाता कृतार्थाः ॥७॥

हे देव ! आप दीन प्राणियो के सासारिक भय को हरण कर उन की सम्पूर्ण कामना पूर्ति करने के लिए कल्पद्रुम स्वरूप है, स्वग मे निवास करने वाले देववृ द और दिव्य मुनि मण्डल भी आप के परम कारुणिक कृपामृतवर्षी रूप का ही भजन करते हैं, भूमि पर जन्म लेने वाले प्राणियो का अहोभाग्य है जो वे आप के सहज कृपालु अवतार को प्राप्त कर सफल ज म हुए हैं ॥७॥

अन्तस्साक्षी सकल जगता ज मदाता विधाता
ध्याता ध्येयस्त्वमसि भगवान् ध्यान रूपी महेश ॥
कारुण्याब्धि सदय हृदय प्राप्य नून भवन्त
नान्यद्याचे वरद ? विभव देहि पादाब्ज रेणुम ॥८॥

ह भगवान् ? आप सम्पूण विश्व ब्रह्माण्ड स्थित जड चेतन जीवो को ज म देकर उनके हृदय मे प्रतिपल साक्षी भास्य रूप निवास करने वाले परात्परतम स्वरूप है, हे महेश्वर ! आप ही ध्यान करने वाले, ब्रह्म रूप मे ध्यान करने योग्य और ध्यान समाधि स्वरूप है ! हे वरदायक देव ? करुणावरुणालय ? दया हृदय से विभूषित, सत्य सरलता प्रेम की साकार श्री मूर्ति आपके दिव्यतम स्वरूप को प्राप्त करके अब मैं आप से अन्य क्या वर-दान चाहूँ, (सम्पूण विश्व वभव तो आपकी कृपा दृष्टि से प्राणियो को स्वत प्राप्त हो जाते है) श्री चरणारविन्दो की रजकणिका प्राप्ति की ही एक मात्र अभिलाषा इस हृदय मे शेष

है अत श्री चरणारविन्द रज कणिका प्रदान करने की कृपा कीजिये ।।८।।

हैडाखानी त्वमसि शिव भोस्त्व गुमानि प्रियोऽसि
भक्ताना व भरण रसिक सिद्ध सिद्धाश्रमी त्वम ।।
ध्येयस्त्वभो सकल भुवन क्षेम सकल्प कारी
वन्दारण्ये निजजन–वशस्त्व महेन्द्रस्य नाथ ।।६।।

हे प्रभो ? आपने यह अभिनव श्री सदगुरु अवतार श्री हैडिया खानी बाबा के रूप मे विश्व सुमगल हेतु धारण करने की कृपा की है, आपकी भक्त गुमानी के परम प्रिय आराध्य, अपने भक्तो का भरण पोषण करने के रसिक, श्री सिद्धाश्रम निवासी श्री सिद्ध सिद्धेश्वर है । चौदह भुवन निवासी प्राणियो के कल्याण का शुभ सकल्प मय ("बाबा मनसा फल तुम्हारी' शुभाशीर्वाद देने वाला आपका दिव्य स्वरूप ही एक मात्र ध्यान करने योग्य है । हे हे अनाथनाथ! आप अपने श्री चरणाश्रित निज जन के अनुपम प्रेम के वशीभूत होकर उन पर दया करत हुए श्री वृन्दा वन धाम की श्री साम्ब सदाशिव कुञ्ज मे श्री महेन्द्रनाथ (महेन्द्र के स्वामी) के रूप मे दर्शन देने का विश्व का कल्याण करने की कृपा करते है ।।८।।

श्री सदाशिव स्तोत्र

श्री चरणाश्रित श्री चरण,
रज कणिका सुखसार
सकल सुमगल दायिनी
भव रुज भूरि उदार ॥१॥ (क)
तिहिं रज कणिका तिलकतें
खुलं हृदय के द्वार
तब श्री सदगुरु दिव्य छवि
निरख हिय दरबार ॥२॥ (ख)

* चौपाई *

जय जय हैड़ाखान विहारी । जग कल्याण हेतु अवतारी ॥
साम्ब सदाशिव कुञ्ज विहारी । निज रुचिव द विपिन सञ्चारी॥
जय मुनीन्द्र सुखधाम गुणाकर । सकल सिद्धि दायकसुख सागर ॥
प्रणत कल्पतरु करुणाकन्दा । सब सुखदायक मुनिकुल चन्दा ॥
विश्व सुमगल नर तनु धारी । जय सुखधाम शम्भु त्रिपुरारी ॥
ब्रह्म सनातन घट घट वासी ।ऋधि सिधि सम्पति सब तव दासी ॥
शकर साधु रूप शुचि धामा । अशरण शरण सदाशिव नामा ॥
भालचन्द्र सिर गग तरगी । अवढर दानि शिवा अरधगी ॥
किहि विधि जीव करैगुण गाना । अनुपम छविधर श्री भगवाना ॥
कुरता देह मनोहर राजै । सुन्दर टोपा सिर पर साज ॥
रूपराशि छवि निधि सुकुमारा । विप्रवश अवतस कुमारा ॥
भाल त्रिपुण्ड अनूप सुहाव । छवि निधि चितवन नयन लुभावै ॥
राका पति शय सम मुख शोभा । निरखत सुषुमा हिय अतिलोभा ॥

गौर तेज गिरि गुहा बिहारी । सरल स्वरूप बाल ब्रह्मचारी ।।
सिद्धासन आसीन विराज । सहज समाधि सुरस सुख साज ।।
आदि पुरुष अनुपम छवि खानी । दर्शन मात्र सुमंगल दानी ।।
जन रञ्जन भञ्जन भव भीरा । सुमिरत हर सकल तन पीरा ।।
मन मोहक छवि हृदय लुभाव । त्रिगुण यज्ञ उपवीत सुहाव ।।
विद्या वारिधि गुण गण गेहा । अशरण शरण दीन पर नेहा ।।
दयाधीन शिव संत सुजाना । कर मोह-मद विष कर पाना ।।
सहज कृपानिधि मुनि अवतारी । कलिदव दहन सुशीतल वारी ।।
निज ऐश्वर्य सकल जग पाला । मधुर मधुरतम दरस रसाला ।।
शुक सनकादिक निरंतर ध्याव । शेष शारदा गुण गण गाव ।।
पुरुष अकाल कालकह भक्षक । सब विधि समरथ निज जन रक्षक ।।
राम कृष्ण शिव रूप अनंता । तुय तत्व सदगुरु भगवंता ।।
प्रति युग नूतन चरित अपारा । अगणित जीव किये भव पारा ।।
हैडाखान धाम कह वासी । बस सकल उर पुर शुभकासी ।।
अणु अणु व्यापक छवि सरसाव । कठघरिया महँ रूप दिखाव ।।
तापस तरुण यज्ञ योगीसा । सिद्ध विबुध मुनि नावहिं सीसा ।।
सिद्धाश्रमी सिद्ध सिद्धेशा । हर प्रणत कह भ्रम भय लेशा ।।
छिन महँ कृपा करत वर देही । शरणागत कहँ सहज सनेही ।।
श्री मुनीन्द्र सब भाँति सुहाये । परानन्द रस पूरित भाये ।।
कूमाञ्चल महँ सदा विहारी । ज्ञान भानु संसृति तम हारी ।।
पल महु भ्रमैं सकल त्रै लोका । दीन जानि जन करहिं विशोका ।।
निज बल कर विश्व रखवारी । जगदम्बा संग पिता पुरारी ।।
जय महेन्द्र मन मानस हंसा । जीव चराचर जग तव अंसा ।।
जय-जय-जय गुरु देव दयाला । दया सुधा बरसहु सब काला ।।
सब संकट पल माँहि बिलाव । जे धरि ध्यान हृदय गुण गावै ।।
नाशत जनम जनम कह रोगा । नामहिं जपत सुलभ सुखभोगा ।।
साम्ब सदाशिव परम विवेकी । एक काल वपु धरहिं अनेकी ।।

घर-घर जाइ भक्त बहु तारे। किये दीन सब भाति सुखारे॥
भक्त गुमानि, शिरोमणि, दूला। करि दशन मेटे भव शूला॥
साधक सिद्ध स त बहुतेरे। पल महँ किये निहाल घनेरे॥
चरण कमल रज जिन्ह अपनाई। अनायास सब सिद्धो पाई॥
पद पकज जे ध्यान लगाव। अष्ट सिद्धि युत नव निधि पाव॥
आदि गुरु जग मगल दानी। दया दृष्टि तव सब सुख खानी॥
साम्ब सदाशिव सब घट-बासी। मम जीवन धन प्रभु अविनासी॥
प्रतिपल हिय बसि हिय सुधि लेही। मन अभिलाष-झोरि भर देही॥
तजि भव सभ्रम भय दुख आसा। मन मधुकर पद-पकज दासा॥
चतुवग मकरन्द छकायो। तुम्हरी कृपा जनम फल पाया॥
अन्य दृश्य नयननि नहिं भाव। अनुपम प्रभु छवि दृगन रमाव॥
सब रस तजि रसना गुण गाव। प्रभु गुण गान मधुरिमा भाव॥
जनम जनम मोहि पद रति दीज। स तत वास हृदय मह् कीज॥
हौं बालक प्रभु परम अनाथा। श्री पद पद्म नवावउँ माथा॥
प्रभु मोहि चरण शरण महँ लीजै। पाद पद्म रज कणिका दीज॥
अब वरदान अ य नहिं भाव। मन मधुकर पद पद्मनि धाव॥
तुम्हरे चरित्र-चित्र पनवारा। जिहि बल होहिं जीव भव पारा॥
जप तप सयम बल नहिं आना। द्रवहु दयावश श्री भगवाना॥
बोलत वचन सदा भय हारी। "बाबा मनसा फल तुम्हारी"॥
दया सुधानिधि देव दयाला। दया सुधा दे करिय निहाला।
कृपा तुम्हारी सकल आनन्दा। मिट सकल दुख दारिद्र द्व दा॥
काल कष्ट सपने नहिं व्याप। रोग शोक भव ब धन कॉप॥
जय सदगुरु शिव परम कृपाला। हरहु कष्ट दुख दारिद्र काला॥
स्तुति मणि माल कण्ठ जो धार। नित प्रित गाइ हृदय छवि सार।
पढ सुनै सुमिर हिय ईसा। लहै सिद्धि नावत नित सीसा॥
दीन विप्र दासन कउ दासा। सन्तत हिय बसि पूरउ आसा॥
'विष्णु' सदा चरनन सिर नाव। पाद पदम पै बलि-बलि जावै॥

दोहा

हैडाखानी सत शिव
श्री मुनीन्द्र अवतार ।
श्री चरणाश्रित हृदय मँह
निरखौ रूप तुम्हार ।।३।। (क)
श्री मुनीन्द्र मुनि मन अगम
सदगुरु शिव सुर भूप ।
श्री चरणाश्रित सग प्रभु
बसो हृदय सुख रूप ।।४।। (ख)



श्री मुनीन्द्र-आरती

आरती करो श्री मुनीन्द्र भगवान् की
कन्चन थार दिव्य दीप सजि आरती करो भव कणधार की।
हृदय दीप मह मन बाती मजि धार भरो नव नेह आज्य को।
चन्दन केशर चन्द्र चन्द्रिका भूषित अनुपम दिव्य भाल की।
चन्द्र अंग चन्द्रानन चम्पा कुसुम सारस पेलव सब नाम की।
दिव्य ज्योति समलकृत सुन्दर मन मोहक सुषुमा निधान की।
स्मित सुरेख सुषुमा समलकृत मुद वर्षक नयनाभिराम की।
विप्र वंश अवतंस संत कुल हंस-वन्दित चरण ललाम की।
श्री चरणारविन्द नख चन्द्र भूषित-दिव्य-द्युति ज्ञान भान की।
रोम रोम ब्रह्माण्ड विराजत प्रति अणु व्यापक प्रभु महान् की।
श्री विग्रह की परम दिव्य द्युति सब गुण सुन्दर छवि निधान की।
ब्रह्म-विष्णु-शुक-शेष-शारद मे नही शक्ति गुणगान की।
प्रकट परात्पर रूप भास्वर श्री चरणाश्रित हृदय धाम की।
जय कलि पावन अवतार बाबा भगवान् श्री श्री हैडाखान की।

ॐ श्री सद्गुरु साम्बसदाशिव शंकर हरि ॐ

श्री मन्मुनीन्द्र स्तुति लहर

दया झरी नित बरसत, जन हिय सरसत ए—
हिय सरसत ए
अनुपम रूप ललाम
जय गुरुदेव हरे ।।१।।
देव दनुज मुनि वन्दित, जग अभिनन्दित ए—
अभिनन्दित ए

हर धत मुनिवर रूप
जय गुरुदेव हरे ।।२।।

दुख दावानल गञ्जन, जनमन रजन ए—
मन रञ्जन ए
धत मुनी द्र शुभ वेष
जय गुरुदेव हरे ।।३।।

टोपा छवि शशि लज्जित, कुरता सज्जित ए—
कुर्ता सज्जित ए
हर धृत रूप अनूप
जय गुरुदेव हरे ।।४।।

हरण सकल भवभ्राति, शाति व्रतधारी ए—
व्रत धारी ए
सत्य सरलता प्रेम
जय गुरुदेव हरे ।।५।।

हैडाखान विहारी कलि अवतारी—
अवतारी ए
धृत सद्गुरु अवतार
जय गुरुदेव हरे ।।६।।

परम पुरुष अधिकारी नरछवि धारी ए—
छवि धारी ए
अभिनव धृत अभिराम
जय गुरुदेव हरे ।।७।।

पण निकेतन बिहारी भवभयहारी ए—
भय हारी ए
प्रकट परात्पर रूप
जय गुरुदेव हर ।।८।।

बसत सदाशिव काशि मुक्ति पददासी ए—

पद दासी ए
दया द्रवित योगीश ए
जय गुरुदेव हरे ॥९॥

पोषक ब्रह्म पुरारि सृष्टिलयकारी ए—
लय कारी ए
प्रलयकर प्रलयेश
जय गुरुदेव हरे ॥१०॥

श्री महेन्द्र मुनिवन्दित, सुर अभिनन्दित ए—
अभिनन्दित ए
सिद्धाश्रम शुभ छाँहि
जय गुरुदेव हरे ॥११॥



* ॐ श्रीसद्गुरवे नम *

षष्ट पुष्प—श्री दिव्य कथामृत

श्रीचरणाश्रित कृत

श्री कैलाश खण्ड

चौपाई

आज अपूव उछाह बढायो। सत चित् घन प्रभु सरल लखायो ॥
उमगि उमगि हिय हौस बढाव। आनद अमित अजस्र बहाव ॥
हेतु रहित लखि आनद च दा। चित चकोर मन लहत अनन्दा ॥
सत् चित घन प्रभु आनदराशी। अमल अनन्त आदि अविनाशी ॥
सब हिय मँह सब काल विराजं। सब मँह सम स्वरूप ह्व राजं ॥
जो अतीत मन बुद्धि गिरा के। सुखद सूक्ष्म सत्ता भूमा के ॥
मनन करत जग के मुनि हारे। टेरि टेरि श्रुति कहत नकारे ॥
पालक औ प्रलयङ्कर दोऊ। सत अरु असत् कहत कोउ कोऊ ॥
निज स्वभाववश रहत सदा ही। प्रकृति बिम्ब तँह परसत नाही ॥
सब प्रकार अज्ञेय अनामय। दीनब धु आतुर करुणामय ॥
आतत्राण तत्पर भगवाना। त्राण हेतु नित रचत विधाना ॥

दो०—विविध विश्व लीला रची, भाँति भाँति सुख दन।
अश शुद्ध कँह विमुख लखि, आवत शिव सुधि लन ॥१॥

अमन्त जीव जब पच रस चाखं। रसाभास कँह रस कहि भाखं।
बुद्धि विपयय विपिन भुलानी। प्रेय श्रेय सुधि रह न थिरानी ॥
छिन छिन नवनव सुखकहँ धाव। गुनि गुनि हरष विषाद बढाव ॥
अस्ति भाति प्रिय रूप प्रकाशं। तदपि अविद्या तम नहि नाशं ॥
माग खोजत दिन राती। चरित विरति नहि दृढमति माती ॥
दम्भ दैन्य दुख आगे आव। रोग शोक भय ग्लानि सताव ॥
ममता महा मम दुख जननी। अकथनीय यह दारुण कथनी ॥
च्चितित चित थिति कतहु न पाव। भ्रमत योनि बहु भेष बनाव ॥

सत् प्रधान यह नरबपु आही। सकल सृष्टि वन्दत पुनि जाही ।।
अपर योनि जे देह धरावं। भोगायतन शास्त्र बुध गावं।।

दो०—पूर्व कृत्य फल पूर्ण करि, पुनि वपु धरत अनेक।
वा प्रभु श्री पद पद्म को, पावत करुणा एक ।।२।।

मनुज रूप अस सत्य सुसुन्दर। शान्त सदाशिव सकल विन्घहर ।।
इष्ट प्रविष्ट रहत नित जाके। वशीभूत विभु निज रचनाके ।।
विभु वैभव सवस अधिकारी। दयापात्र शुचिसाधु अघारी ।।
कोटि कोटि कल्पित सब वैभव। ज्ञान मृत्यु मोह औ शैशव ।।
दया दैन्य अनुराग बिछोहा। मन्द श्रेष्ठ अति उग्र अकोहा ।।
अज्ञ विज्ञ नरनाथ मलीना। यश अपयश भाजन अति दीना ।।
सकल अहं जब आश्रय आवं। अहमाश्रित नर बहु दुख पावं ।।
सदल अहं हिय मे कियो डेरा। उचरयौ शब्द प्रथम 'मैं' मेरा ।।
मम नाना विधि मनहि नचावा। शांति हीन मन कह सुख पावा ।।
शान्ति विलुप्त भई हंसा की। दुस्तर सरित् असत् ममता की ।।

दो०—ममता बन्धन बंध नहिं, कहहिं अकोविद लोग।
योग मार्ग तजि यत्न रत, जेहिं पाव बहु भोग ।।३।।(क)
भोगि भोगि भव भव भ्रमैं, भ्रान्त भवातप दग्ध।
मोहित मन भ्रमरा बन्यो, जग पंकज मे बद्ध ।।३।।(ख)

यदपि विमूढ विवस अति हीना। ज्ञान हीन सब साधन खीना ।।
तदपि आत्म सुख विसरत नाही। आनँद अवधि सुमोक्ष कहाही ।।
अस असहाय जीव सुनु भ्राता। परमेश्वर बिन कोउ न त्राता ।।
दुखी जीव जेते हैं जग के। हर दैन्य दुख वे ही सब के ।।
सर्वेश्वर सर्वज्ञ सुराधिप। शाश्वत सत्य अकाम महाधिप ।।
पादहीन पर्वत पर धावं। मूक मुखर ह्वै श्री गुण गावैं ।।
दयाशक्ति माँ गोद खिलावं। दया विवश गुरु अलख लखावैं ।।
दयाशक्ति सुन्दर शिव रूपा। शक्ति परात्पर परम अनूपा ।।

दशा देखि दयनीय जगत की। नित नूतन अभिवृद्धि असत् की ॥
सत्य तत्त्व प्रच्छन्न लखावै। असत बिमोहि सुसत्य बतावै ॥

दो०—ऐसे सम्भ्रम भँवर मे, आय फँस्यो जब जीव।
तबहि दया करि बद्धकर, समुझावति श्री सींव ॥४॥

कहति दया सुनु हे दुखभञ्जन। दयानाथ आरत मन रञ्जन ॥
त्राण हेतु जग के तुम स्वामी। विविध रूप धर अन्तर्यामी ॥
विषय बद्ध असमर्थ महा ही। पाय दुराश्रय दुखित कहाही ॥
क्षुब्ध कियो बहु व्याधि असाधा। ताप तिहूँ दुख देत अगाधा ॥
भान अस्त सग निजपन खोयो। शून्य चतुर्दिक लखि बहु रोयो ॥
सब दुख घेरि रहे चहुँ ओरा। मध्य जीव सन्त्रस्त किशोरा ॥
एक आदि ईश्वर सब जग के। शरण्य सदाशिव सब भूतन के ॥
अज्ञ बाल क्रीडा रत होवे। मल निज कर तेहि जननी धोवे ॥
पान करावति जब शिशु माता। काटै दाँत करत उत्पाता ॥
शिशुहि दोष क्रीडा करि मानै। चूमि हृदय धरि बहु सुख जानै ॥

दो०—सहज भाव ये जीव के, जगदीश्वर जग जाना।
दयादान देवेश दो, पावै सब कल्यान ॥५॥

दया शक्ति घोषित वर बानी। श्रवन सुनी श्री औढर दानी ॥
कहहि दया तू अति प्रिय मोरी। सकल सृष्टि शरणागत तोरी।
सवशक्ति मम रहति अधीना। पालति आज्ञा परम प्रवीना ॥
प मोहि तू अति लागति प्यारी। दीन हीन जन की महतारी ॥
रङ्क उपेक्षित शक्ति विहीना। अबुध अकरमी कुटिल मलीना ॥
कैसेहू कोउ कबहू ढिग आवै। ताहि तुरत तू हृदय लगावै ॥
पतित बात तब चित्त न आवै। सन्मुख निरखि सुमोद बढावै ॥
दया हेतु मम नाम महेश्वर। आशुतोष भोला भद्रेश्वर ॥
भीति भवार्णव जब बढि जाई। असुर अराति बढ़ बहु आई ॥
हाहा करि हर हर सब बोलै। प्रेरि तुही मम मानस खोलै ॥

दो०—मम मन सहज समाधिरत, क्लेश अविद्या नाहिं ।।
सदा अनन्द अखण्ड अति, योगी याचत जाहिं ।।६।।

परानन्द जेहिं जाँचत योगी । स्वप्नहुँ सो सुख पाव न भोगी ।।
सोइ सुखपूर्ण सकल संसारा । तदपि महाधम सह दुख भारा ।।
सहज स्वभाव सुरति मम हेरी । मोरि सुरत तजि चाह घनेरी ।।
चिन्ता गहि चिन्तामणि खोव । अन्ध बधिर इव सिर धुनि रोव ।।
है अमोघ औषध एक सुन्दर । दयाशक्ति हिय सोच निरन्तर ।।
हृदयपरिवर्तन जेहि विधि होवै । करहु सहर्ष जगत सुख सोवै ।।
अन्य उपाय न एहि सम कोऊ । सद्य सफलता धरे सजोऊ ।।
अन्ध होय तो शब्द जगावै । बधिरन कू संकेत जतावै ।।
कोटि शास्त्र आचार्य अनन्ता । व्यापक व्याप्य अखिल भगवन्ता ।।
द्रष्टा रूप अवस्थित सबही । परम दयार्द्र न कछु करि सकही ।।

सो०—सकहिं न करि कमवेश, कोटि उपायन नित करत ।।
नित नित होत नवीन, जो जो यहि मारन चहत ।।७।। (क)

दो०—करत ज्ञान उपदेश, रंचक हूँ नहिं मन लगै ।।
रंग्यो चित्त पर रङ्ग, निज रङ्गरस कसे पगे ।।७।। (ख)

दो०—साध्य साधना हीन सिख, सिखवत सङ्ग समाज ।।
शुद्ध सीख जग मे कहाँ, जस न्हावत गजराज ।।७।। (ग)

जिन मधि जीव रहत दिनराती । कटु मधु सुजन सुजाति कुजाती ।।
वहा साधना उल्टी होवे । क्षणिक सुक्ख हित सवस खोवे ।।
तहाँ ज्ञान चर्चा किमि होई । ध्यान धर्म सेवा नहिं कोई ।।
दृढ़ मत मम जानहुँ यह माया । उलटउ हृदय यही बडि दाया ।।
पुलकि दया हिय हर्ष बढ़ाई । नयन सजल करि हृदय दृढ़ाई ।।
तुम पालक करुणामय दाता । नव स्वभाव नहिं जग विख्याता ।।
जब जब नाथ विपति अति बाढी । लोक अनाथ मौन मति ठाढी ।।
सत्वर तब तुम तब ही धाये । नर पशु विविध सुवेश बनाये ।।
आजहिं भल अवसर है भोला । चलहु करिय प्रभु कृपा अमोला ।।

अब न विलम्ब करिय श्री बाबा। दानव सकुल जीव पर धावा ॥
(वाणि विनय अपि दु सह प्रभु को। अति कोमल मानस है विभु को ॥

दो०—ल चलु ल चलु साथ मोहि, मग मे रहु मम साथ।
दशन करि सब धाइहैं, जानि दया के नाथ ॥८॥

दया अग्र करि कीन्ह पयाना। अण्ड अण्ड प्रति हने निशाना ॥
दिवि भुवि सुखद पुण्य ऋतु आई। जय धुनि घनि धुनि सरस सुहाई ॥
भयौ नाद सुस्वर ससारा। नील कण्ठ जग मध्य हमारा ॥
सुनत अलौकिक गिरा सुहाई। न दी चकित विलोकेउ जाई ॥
मम बिनु नाथ कहा पगु धारे। चरण सुकोमल प्राण हमारे ॥
मम अपराध लख्यौ कहा साइ। जेहि कारण मोहि तजेउ गोसाइ ॥
सपदि चरण गहि अस्तुति कीन्ही। दुखित देखि आज्ञा प्रभु दीन्ही ॥
सेवक तुम सम लखौ न कोऊ। कृपा पात्र प्रिय लागत मोऊ ॥
शीघ्र सूचना सब कहँ देहू। कहिहहु जाय वचन मम एहू ॥
जीव दु ख अति दुखित दयाला। व्याकुल अधिक शात सब काला ॥
कहत सदय परिकर मम प्यारे। मम हिय बसहु गगन जिमि तारे ॥
मोर सुभाव के तुम बड ज्ञाता। पशुपति नाम मोर विख्याता ॥

दो०—जीव सकल पशुरूप हैं, पशुपति गये भुलाय ॥
पशुप्रिय मै हूँ तात हौं, मिलि हौं कण्ठ लगाय ॥९॥

शान्ति सदन जहं मातु विराजै। सपति अतुल अनाम सुसाजै ॥
गोद गणेश सुमोद खिलावै। सेनाधिप मोरन चढि गावै ॥
व्याघ्र बैल विस्मित हो जोवै। होत निबाह न मनु सचु खोवै ॥
च द्रमौलि के हार भुजङ्गा। मूषक लखि भचवत नित दङ्गा ॥
ब्रद्ध दीन छिन ही छिन बाढै। देव महर्षि सिद्ध गण ठाढै ॥
कहत पुर दर जय जय बानी। ब्रह्म विष्णु रट शम्भु भवानी ॥
विश्व ईश्वरी पालन कारिणि। विश्व विनाशिनि अरु महिधारिणि ॥
विश्वनाथ तोहि नावत माथा। आश्रय दो मा जानि अनाथा ॥

होहु प्रसन्न प्रणत दुख हारिणि। अखिल अण्ड ब्रह्माण्ड बिहारिणी ॥
पावन कोमल चरण सुचारिणी। नितसनति हित हेत विधारिणि ॥
दो०—पाऊँ मैं नहिं अन्यथा, आश्रय करुणा कोर ॥
श्री रज तव पद पद्म की, अम्ब एक निधि मोर ॥१०॥
लखि प्रियगण मा मन मुसकानी। सदय सनेह कहति मृदु बानी ॥
आज एकाकी सुत क्यो डोलौ। मम वचन निज मुख से बोलौ ॥
वृषभ विनय कर जोरि सुनायौ। दयानाथ गुण बहु विधि गायौ ॥
गिरजा गिरा सुधा सम बोली। अहो वत्स तव मति है भोली ॥
शङ्कर सवरूप सब पारा। सर्वेश्वर कूटस्थ उदारा ॥
आशुतोष पुनि शव सुदानी। निज पर ज्ञान रहित विज्ञानी ॥
भूतनाथ भरव भवनाथा। भव भञ्जक गरिमा गुणगाथा ॥
षटमुख सग गजानन जाओ। चरण परसि मम विनय सुनाओ ॥
करहु विलब क्षणिक हो ताता। सहित समाज हैं आवति माता ॥
सो०—उमा देखि शिव रूप, सतत दयाद्र सुसौम्य तन ॥
उमगत भाव सुभूप, निज सुत कँह कल्याण लखि ॥११॥ (क)
दो०— हरषति यह जिय जानि, चले रुद्र मगल करन ॥
पाणि पिनाक पुराण, चन्द्रमौलि भव भय हरण ॥११॥ (ख)
दो०— सती शम्भु सन्मुख भई, आदर दियो महेश।
साम्ब सदाशिव रूप लखि, मुदित गणेश गुहेश ॥११॥ (ग)
दो०— नेत्र तीन शशिभाल शुभ, श्वेत रक्त शुचिगात ॥
चरणाश्रित चरणन परयौ, साम्ब सदाशिव मात ॥११॥ (घ)
बहु रमणीय शिवाशिव वासा। को कवि बरण विभव विलासा ॥
सकल सिद्धि दासी तह ठाढी। चन्द्रचूड मन चिन्ता गाढी ॥
सुमिरत जाहि सकल सुख पाव। ज्ञान धाम तुरतहिं तँह आव ॥
सोइ अखिलेश अनामय शकर। दुरित दूर करि पालन किंकर ॥
करत गरल अज्ञान निकन्दन। सुमिरत सुलभ भक्त उर चन्दन ॥
यदपि सदाशिव सब सुख पावा। आश्रित दुख लखि नहिं कछु भावा ॥

आशुतोष हर गिरा उचारी। जग प्रगटन हित आतुर भारी॥
मम मन आश्रित है अब नाहीं। जीव ताप सुख पावत नाही॥
धाइ धाइ धरिधरि सब प्रानी। करौं विमुक्त इहै मन ठानी॥
सम्पति सब ही भोग रमावै। परम विरक्त जीव मोहि भावै॥

दो०—षट भग त्यागि विरक्त बनि, बिचरौं महि निज तन्त्र।
विप्र रूप धरि अवनि मे, शासन करौं स्वतन्त्र॥१२॥ (क(
शासन अति निर्दोष है, ग्रन्थ है वेद महान।
सतत सनातन धम गहि, पाव जन निर्वान॥१२॥ (ख)

परम उछाह अम्ब मन माही। निज सन्तति पर प्रीति सदाहीं॥
बहुत प्रशसि कीन्ह पद पूजा। आरतिहर को हर बिन दूजा॥
शुभ सकल्प कीन्ह मम नाथा। होइ पूण सब होंहि सनाथा॥
सकल सुदेश सहित प्रभु जाओ। प्रणतारतिहर देर न लाओ॥
मम मन यह अभिलाष पुरारी। करउ सहाय महाव्रत धारी॥
विहसि विश्वपति सादर बोले। सुधा सिक्त मधुरस अति घोले॥
शलसुता मैं तव अवराधऊँ। साधन सुफल पाइ तोहि मानऊँ॥
तव अनुकम्पा कण मैं पावा। तव अनुगत मोहि लागि सुहावा॥
परा परेश्वरि मम उर धामा। शाति तुष्टि मेधा बहुनामा॥
मम तुम अ तर नेकहुँ नाही। अग्नि उष्णता एक समाही॥

दो०—मोहि तोहि कछ भेद नहिं, भेद अविद्या माहिं।
नित्य तहा मै रमि रहू, जहां चरण श्री जाहिं॥१३॥

तदपि ललित लीला अनुहारी। धरो मनुज तनु मगल कारी॥
निज आचरण प्रबोधि बताऊ। थापि सेतु भव पार लगाऊ॥
जिहि अवलम्ब जीव सुख पइहैं। पार भवोदधि बिनु श्रम जइहैं॥
आत्म प्राप्ति चह अनरथ करई। मोहि भुलाय भ्रमित मति मरई॥
आत्म तुष्टि दुलभ ससारा। सोइ सिद्धि यह योग हमारा॥
योगी अरु एकाकी रहिहौ। दीन हीन बनि जग मे चरिहौं॥
सब कह सुलभ होउ केहि भाती। यत्न सोइ करिहहु दिनराती॥

धारत जो अस निमल रूपा। जय जय श्री जय जयति अनूपा ।।
एतहि मह सब गण दल धाये। श्वेद श्रवत रोमाञ्चित आये ।।
और प्रकट भए धाम कृपाला। नटत जहा शिव बाहु विशाला ।।
सब गरिमा महिमा की रासी। साम्ब सदाशिव के पुरवासी ।।
पायौ दिव्य अनूपम ठामा। साम्ब सदाशिव रटि प्रिय नामा ।।
कत तव दया कहौ किमिस्वामी। दियौ शरण मोहि अशरण स्वामी ।।
सुनेउ आज एक अप्रिय बानी। जात कतहु सग मात भवानी ।।
पुन भुजग भूमि पर आयौ। सिर धुनि निज सताप जनायौ ।।
कहै भुजग भूतपति स्वामी। कहौ कहा तोहि अन्तर्यामी ।।
जानउ एक हृदय मे तोही। अधम जानि राखो सिर मोही ।।
जानत दुष्ट स्वभाव हमारे। हिंसारत अति निदय भारे ।।
उठि सुधाशु धावत तह आयौ। परसि चरण बहु सुयश सुनायौ ।।
मैं तव शरण कलक को टीकौ। दोषागार मयक प्रभू कौ ।।
गरल दूर करि अमिय पिलायौ। शशिशेखर प्रिय नाम धरायौ ।।
जात अचानक कह मदनारी। चन्द्रकान्त मम कान्त सुखारी ।।

दो०—आकृति श्री त्रिपुरारि की, अक मयक सुशोभ ।।
दयाचन्द्र हियचन्द्र ढिग, जन तम करत सुछोभ ।।१४।।

जानि गग निज नाथ गमन की। करति बिनय भव ताप शमन की ।।
शान्ति अशान्ति सुशान्ति कहावै। यह रहस्य शिव बिन को पावै ।।
देखु जीव यह द्वन्द्व मनोहर। क्रीडत केशव प्रिय बहु सुन्दर ।।
परा शान्ति कँह जो इक ठामा। सदा व्यग्र कर सरस सुधामा ।।
अस ईषाण भाल श्रुति गाव। दग्ध जीव कह दहन मिटाव ।।
शीर्ष स्वय तहँ आनि बिठावा। करि करुणा बहु लाड लडावा ।।
चचल चारु चूडशशि राख। चचल चित्त असत करि भाखै ।।
गगाधर मृत्युञ्जय नामा। जटा बारिधर शोभा धामा ।।
कहति देव सरि सुनु वष भेशा। तरल तरग विमोहित वेशा ।।
लुटत रत्न जह मुक्ति सयाने। साधक पाव सिद्धि मनमाने ।।

तव प्रदत्त ऐश्वय न शका । रक्ष चराचर प्रभु अकलका ।।
शीघ्र गमन सुनि होय अंदेशा । पायौ कहा नाथ स देशा ।।
यह तव नीति पुरातन स्वामी । मोरेहु चित यह दृढ करि जामी ।।
आतनाद नाथहिं हिय साल । किसलय दल पै वज्र प्रहारै ।।
तदपि किंकरी जडमति मोरी । थामऊ चरण दया लखि तोरी ।।
बाहु अजानु कमडलु हीना । कबलौं रहहिं सुदक्ष प्रबीना ।।
करत प्रकाश अनूपम भाई । श्री कर परसित परम सुहाई ।।
समरथ कर को भूषण भ्राता । पान पात्र रचि दीह विधाता ।।
केवल कर नहिं होठहु चाख । रसना परसि सुगवित भाख ।।
कल्प कोटि जब कीह तपस्या । जगत जनक मन घोर समस्या ।।
अवलोकेउ दुख हृदय मझारी । दीह कमण्डलु श्री अधनारी ।।
ब्रह्म कमण्डलु कहि सब जान । यहि प्रभाव विधि वे बखानै ।।
क तु अकतुम् बल अधिकारी । विरची विश्व सुखासुखकारी ।।
नहिं तद्भिन्न कमण्डल ख्याता । अग्र चरण चचत मन राता ।।
चारु चरण धोव मन लाई । शुद्ध मौन गहि सुरति भुलाई ।।
बिल्वपत्र अक्षत शुचि दुर्वा । मनहु नियोजित सुघर सुसर्वा ।।
कुकुम कलित सुकेसर भीनी । बहु बहु सुमन सुग ध महीनी ।।
धरि नैवेद्य सुदीप जलायो । आत्म निवेदन करि सुख पायौ ।।
पूजि प्रणत मति अति हुलसानी । कर्ण निकट विनवत कछु बानी ।।
नाद एकाएक छायौ घोरा । रविहय विमग चलत बरजोरा ।।
करहिं विचार सुदिग्गज भारी । है भैरव रव यह भयकारी ।।
तबहिं प्रगटि परिचय निज दीन्हा । प्रीति पूण पद ब दन की हा ।।
हरण शूल हर के रह साथा । कोमल कर धारत गिरिनाथा ।।
शम्भु वीय शिव शस्त्र महाना । नाम त्रिशूल सबहिं मनमाना ।।
करत तीन विधि सयम भारी । काय वचन मन प्रभुपद वारी ।।
ध्यान धारणा सयम भेदा । प्रगटि बतावत रहस विभेदा ।।
पुनि जप योग सुज्ञान बतावै ।। माग त्रयी कहि सबहि रिझावै ।।

कबहु क्रिया अरु योगहिं मानं । दोउ मिश्रित करि कबहु बखान ॥
क्रिया योग विश्रुत पथ भाई । तप प्रणिधान सुपाठ कहाई ॥
अस शिवशस्त्र गहेउ पद आई । नखद्युति लखि रज नयनन्हि लाई ॥
नाथ सुनेउ कछु अटपटि बानी । चकित विलोकत गण अरु प्रानी ॥
धरिहहु रूप धरा नर जाई । द्विभुज शान्त मुख एक कहाई ॥
बटु वपु अधिक सुशोभन शीला । दोष हीन प्रिय बाल सुनीला ॥
आज्ञाहित आगे मैं ठाढौ । जगत दुख बाढयो है गाढौ ॥
केहि विधि सेवक सेवा पाव । त्यागत चरण न धीरज आव ॥
तबहिं भूति भवभूति प्रदानी । कहति मम हिय की वह बानी ॥
नाथ सकल अंग मोहि रमावो । मम भूषण भूषित सुख पावो ॥
करहु सनाथ भूति से वसुधा । रोग अविद्या दारिद चहुधा ॥
नख सिख नाथ रहत लिपटाई । त्याग न मोर करहु गुरुराई ॥
अस सम्वाद चहू दिशि माचा । जाहिं मत्य शिव साचहु साँचा ॥
खिन्न हृदय नहिं मुख कुछ बानी । एक टक देखहिं औढर दानी ॥

दो०—मूक विनय सब गण करं, कहैं भव्रवर वीर ।
चाह यहै अनुचर हिये, बसो दया के तीर ॥१५॥

भैरव बटुक बाल सग आये । साम्ब सदाशिव लखि सुख पाये ॥
यज्ञ सुरक्षक विघ्न सुहर्ता । सदय समथ सुदक्ष अकर्ता ॥
कृष्ण कान्ति कमनीय सुदेहा । किंकिणि रव वादत नव नेहा ॥
रक्त बस्त्र अति दिव्य सुशोभा । देखि अम्ब मन उपज्यो लोभा ॥
मुण्डमाल गल कौतुक धारी । चन्द्र भाल शिशु रूप पुरारी ॥
श्वान सुवाहन असि लिये हाथा । वरद हस्त लखि भक्त सनाथा ॥
परम सलोने सुख निधि कारे । साम्ब सदाशिव दृग के तारे ॥
बाल बटुक लखि धरि सिर पानी । कहत सप्रेम सदाशिव बानी ॥
नटहु जाय भैरव सब काला । द्रवहुँ दया करि देव दयाला ॥
बालरूप जेते हैं ताता । तिन महँ तोहि अवलोकउँ गाता ॥
देखि बिकल शिव निज परिवारा । कछुक लहेउ दुख करुणागारा ॥

पृष्ठ पचानन अरु बृषभेशा। चितवहि शान्त सुसमय सुवेशा।
मूषक अभय न सर्पहि भावै। सर्प मोर प्रति द्वेष न लावै॥
शिव सान्निध्य क्षणहु जो आवै। सो जन असि मति सहजहि पाव॥

चखु भोला के तीन, हरन त्रयताप महा है।
तीसर हर के नन, हरत हिय अन्ध महा है॥
हरत तिमिर अविवेक, दयाकर शात महा है।
ज्योतिमय अति शुभ्र, सुसमरथ शक्ति महा है॥
अनुपम अमल अक्लान्त, अनामय आश महा है।
आदि नाथ गुरु नाथ, पालक प्रबल महा है॥
विद्याधर! विबुधश!, विकल तव बाल महा है।
सार तत्व विधिता हरिता के शिविता सींव महा है॥

दो०—हहरि हिये अवलोकि हर, धारत निज मन धीर।
धरहु धीर सुवीर गण, हैं मम अमित शरीर॥१६॥

सदा रहौं अणु अणु मे भाई। मन विन अणु सब व्यर्थ कहाई॥
मनमा विग्रह विबुध बखान। मन अनुरूप स्वरूप को मान॥
तुम सब दिव्य धाम के बासी। दिव्य दृष्टि तुम दिव्य उपासी॥
वाणी दिव्य मनोहर बोला। साम्ब सदाशिव हर हर भोला॥
तुमहि छाँडि मैं कत सुख पाऊ। प्रीति अकाम कहाँ जग पाऊँ॥
जो चह चलन साथ मम भाई। करहु पयान जो लखहु भलाई॥
अब विलम्ब अनुचित है नाथा। दया हेरि मुख नावति माथा॥
सुनत प्रसन्न सबहि सग लागे। नाचहि गावहि भागहि आगे॥
जस उदार शङ्कर श्रुति गावा। नस उदार सेवक शुचि पावा॥
चले सकुल आनन्द मन भारी। को न चहत सुख सग पुरारी॥
देखि दशा शिव मनहि विचारा। शून्य होत कैलाश विहारा॥
अति सशक वषभध्वज आजू। चलत होइ सब नष्ट समाजू॥
कोउ न धीर धरि राखहि प्राणा। केहि विधि होइ विश्व कल्याणा॥
दुविधा मध्य दयावश नाथा। त्रिभुवन गुरु त्रैलोक्य सुनाथा॥

शल सुता पिय हिय की जानी। कहन चहति एक कथा सुवानी ।।
सरस सुमगल दिन सुधि आवा। वल्लभ लखि तप नेम सिरावा ।।
चन्द्र चूड मन प्रश्न अनेका। सभयातुर शिव उमहिं विलोका ।।
प्रिया हास अवलोकि गिरीशा। मन मुसके समरत्थ महेशा ।।
अम्ब आइ ढिग कहति सुबाता। भुवि मधि धाम एक विख्याता ।।
कीहेंउ हम तुम तहाँ निवासा। सुदर सुखद सुतारस वासा ।।
सदा सुमन पल्लव युत सोहा। शुचिता अवधि सुगन्ध सुमोहा ।।
निरत समाधि सदा सिद्धीशा। सकल सम्पदा नावति शीशा ।।
शैल सुश्रृंग सुविस्तृत आही। सकल विश्व वदत है जाही ।।
परम रम्य पवत कैलाशा। करत पूण सब की मन आशा ।।
चलिय चरण धरि चरित विचारी। यथा योग्य सब बाटि सँवारी ।।
सो०—यहा वहा दोउ एक, नहिं कछु अन्तर हे प्रभो ! ।।
यथा नाथ बहु रूप, तिमि तव नाम विविध विभो ! ।।१७।। (क)
सो०—रूप अनेक प्रकार, प्रकटत जस सिर सपधर ।।
तस तव धाम अपार, पूज्य सदा हर भूधर ।।१७।। (ख)
विद्याधर सुनि विद्या वानी। लहेहु शान्ति जस प्राकृत प्रानी ।।
सादर वचन कहति श्री अम्बा। कोमल करुण हृदय जगदम्बा ।।
सब गण सुख युत समय बितइहै। चरित चारु करि बहु सुख पइहैं ।।
सुधि भुलिहहिं प्रभु एहि कैलासा। रहिहहि सुखी सुसत्त्व विलासा।
तहहु विभव अस है सुरसांई। अपर कलास कि जान न जाई ।।
सुनत बन सुख देन सुहाई। मग्न भये सुख सिधु गुसाँई ।।
अश्रु प्रकम्पित गात सुहावा। करुणा सिधु सुबन्धु कहावा ।।
वीर भद्र वर आज्ञा पाई। आएउ देखि कहेउ प्रभुताई।
यदपि नाथ वह मत्य प्रदेशा। कण कण दिव्य सुभास परेशा।
कान्ति क्षाितमय पूण भण्डारू। वन औषधिफल पूण पहारू।
जल सुस्वाद सुधासम धारा। कल्पवक्ष वन पूण उदारा।
श्रेय प्रेय फल सबहिं लुटावा। श्री पुर महिमा को सक गावा।

छं०—महिमा न कहि सक शेष शारद और को वर्णन करैं ।।
शिव धाम शृंग सुशोभ शंकर अम्ब युत करुणा करें ।

श्री पाद भूषित भूमि कण की भव्यता गुरुता महा ।
आश्रित सदा परितृप्त हो मुनिराज मन रमते जहाँ ।।

दो०—वीरभद्र कर बन मुनि, सहित भवानी मात ।
दया मग्न शिव दीन्ह सिख, करहु प्रयाण प्रभात ।।१८।।

श्री कैलाश खण्ड सम्पूर्ण

—o—

अथ श्री कूर्माञ्चल

चौपाई

सहित समाज सोह शुभ धामा। साम्ब सदाशिव जग अभिरामा॥
बसहि तहाँ शिव सहित गणेशा। देत प्रदक्षिण मुदित दिनेशा॥
देव सकल सम्पति कर धारे। करि अर्पण जय जयति उचारें॥
सब गण हरषित पाइ सुदेशा। सोह सुदेश विबुध बहु वेशा॥
मातृ शक्ति मन मोद उदारा। लखति सनेह सुसृष्टि अपारा॥
ऋद्धि सिद्धि निज भाग्य मनावा। सकल सुरन्ह सुख वसुधा छावा॥
छाई रही महि शांति सुहाई। सुमति सुनीति सुराज सुपाई॥
महादेव पालित पुर राई। भुक्ति मुक्ति पद चूमति आई॥
सदा शङ्करी अम्ब भवानी। हेतु जगत कँह कह विज्ञानी॥
साम्ब सदाशिव वसि सुख पावा। पाइ सुठाम सुमोद बढावा॥
चकित चतुर्दिक जोवत ताता। अखिल विश्व कर आप विधाता॥
रचति सृष्टि अनुशासन पाई। त्रिगुणमयी शिव माया भाई॥

दो०—शिव माया महिमामयी, कौतुक करत प्रचण्ड।
माया मायी एक ह्वै, विलसत सदा अखण्ड॥१॥

तबहिं चतुमुख नावत माथा। अञ्जलिबद्ध जानि निज नाथा॥
अहो देव देवेश गोसाई। दया तुम्हारि प्रकट श्रुति गाई॥
नीलकण्ठ करुणा की राशी। दानी तू चेतन अविनाशी॥
जबहिं दुसह दुख लह नर नारी। तुमही तब सुधि लेत पुरारी॥
शिव कल्याण ईश कापाली। नृत्यत ताण्डव सग वैताली॥
सष्टि प्रलय अरु पालन लीला। पद सचार सुव्यक्त सुशीला॥
रचत नाटय नव नव जग त्राता। साम्ब सदाशिव आदि विधाता॥
हूँ तव एक नाटय कर साधन। सुनहु दयामय समरथ रजन॥

आज्ञा धरि तब सृष्टि बनावा। लोक चतुर्दश विरचि बतावा ॥
लोक लोक प्रति भेद अनेका। कथनी करनी भिन्न सुटेका ॥

दो०—मन वाणी अरु कम से, भिन्न भिन्न सब भूत।
दीन हीन भव भूत को, आश्रय श्री पद पूत ॥२॥

सदा सदाशिव बड तुम त्यागी। दिव्य रूप तजि नर अनुरागी ॥
उमाकान्त उठि मिलेउ कृपाला। कहेउ शम्भु जय ब्रह्म विशाला ॥
जगत जनक हैं तुम्हरे नामा। जग कल्याण एक तव कामा ॥
अन्तर्हित ह्वै निज पुर जाहू। यह रहस्य कहिहहु जनि काहू ॥
ताहि मध्य मधुग ध सुहाई। प्रविसि द्वार प्रभु आसन आई ॥
शम्भु ब्रह्म दोउ सादर देखा। लच्छि चतुर्भुज सुन्दर वेषा ॥
शङ्ख चक्र अरु कमल विशाला। गदा हस्त शोभित शुचि लाला ॥
रम्य माल शुचि हार रतन की। वस्त्र पीत सुषमा अति प्रभु की ॥
सब शोभा की जो शुभ खानी। महा लच्छि जगदम्ब बखानी ॥
विष्णुप्रिया हर धाम विलोका। कहति मनहिं यह धाम अलोका ॥
भुवन चतुदश से यह यारी। ध य भूमि शिव लागति प्यारी ॥
औचक शिवा सुनी श्री आई। मुदित गणेश सहित उठि धाई ॥
साम्ब सदाशिव बहु सुख पावा। आदि नारायण छिप कर आवा ॥
सोह सुआसन हरिहर रूपा। शब्द गम्य किमि भाव अनूपा ॥

दो०—एक आसन आसीन दोउ, निरखि देव मुनि वृन्द।
वरषि सुमन विनवत दोउन, जय जय जय युग च द ॥३॥

देखि शम्भु कहैं निमल रूपा। दया युक्त शुचि शा त अनूपा ॥
मानव रूप आज मदनारी। वैभव हीन वेष ब्रह्मचारी ॥
लोकत्राण हित त्याग सिखावा। त्याग बिना नहिं कोउ सुख पावा ॥
व्यास रूप धरि मैं यह भाषा। दया धम सम और न राखा ॥
दयावास सब भूतन माही। त्याग हीन वह विफल सदा ही ॥
त्याग दया दोउ चरण तिहारे। धरहु हृदय जनके सुख सारे ॥

रमानाथ की सुनि प्रिय वाणी । हरषि उमेश गहेउ निज पाणी ।।
मिले दोऊ एक रूप कहाव । बुद्धि अगोचर सुख दुहुँ पावं ।।

दो०—रमाकान्त निज शक्ति को, आयसु दिये बुलाय ।
'जाइ सुरक्षण सृष्टि की, करो दया हिय ।।४।। (क)
बाबा के शरणन रहो, अहो विभूति विराट ।
ये अरूप अपरूप है, सदा सुछन्द सुराट ।।४। (ख)

छद्म वेष श्री शिव अवतारी । भोला सरल दयाद्र अघारी ।।
सिंधुसुता अरु मैं वनमाली । रूप दुराय चलो नर चाली ।।
जग कल्याण हेतु अवतारा । अपर हेतु नहिं एक विचारा ।।
शिव कर ध्यान धरो दिन राती । साम्ब मूर्ति मोहि अधिक सुहाती ।।
प यह रूप अकथ है भाई । दया रूप आये गिरि राई ।।
वन्दनीय श्री श्री ब्रह्मचारी । मानुष तन गिरि गुहा विहारी ।।
गद्गद् कण्ठ कहत श्री नाथा । जयति जयति जय जय जगनाथा ।।
सकल सुसम्पति पूर्ण भंडारा । जगद् गुरू जग नाथ अपारा ।।
तदपि नेह लखि राखो नाथा । नर तन धरि रहिहहुँ नित साथा ।।
आश्रित रहि लीला रस चाखू । अद्भुत रूप हृदय धरि राखू ।।
सुनेउँ प्रेम पूरित उद्गारा । हृदय लाय हर हर्ष सवारा ।।
ब्रह्म मुदित ह्वै गिरा उचारी । श्रीपति रुख लखि भए सुखारी ।।
हमहूँ तुम सँग चलिहहुँ नाथा । आयसु देहु मुदित मुनिनाथा ।।
मनुज धर्म लक्षण समझाउ । ब्रह्मनिष्ठ जग कँह बतलाउ ।।
यज्ञ प्रधान सृष्टि तुम राखा । यज्ञ अधार सृष्टि श्रुति भाषा ।।
जाप यज्ञ युग यज्ञ बताऊँ । साधन नाम सप्रेम सिखाऊँ ।।
जानि समय शुभ आए सुरेशा । भयौ धन्य लखि उमा महेशा ।।
चहत महेन्द्र करन सेवकाई । सकुचत हीन दशा निज पाई ।।
यहाँ इन्द्र सुख लज्जित होवै । मघवा मद मन ही मन रोवै ।।
कृत्रिम सुख अशान्ति कर दाता । ईश विमुख सुख कतहु न पाता ।।
भगवत्सुख बिन सब सुख भ्राता । झुलसावत जस आतप वाता ।।

तदपि सुरेश शम्भु ढिग जाई। चरण चापि विनवत सकुचाई ।।
सन्त सदाशिव हिय गति जानी। सब सन्मानहिं कहि मृदु बानी ।।
विधि मुख निरखि सुतेज विशाला। ज्ञान भान प्रकटत सब काला ।।
पुनि हरि हृदय लखेउ करुणाई। जगत पाल प्रभु वैकुण्ठ राई ।।
अमर अनन्त दसहु दिग पाला। किन्नर यक्ष पिशाच कराला ।।
और सकल गण मम पुर वासी। सिद्ध मुनीन्द्र अगम्य प्रवासी ।।
देवी देव जगत के जेते। असुर नाग नर अगणित केते ।।
वन्दौं सब कह आज सुदेवा। आज महाव्रत दृढ करि लेवा ।।
करौ जाई सब की सब सेवा। सब सुख लहैं मन्त्र सोइ देवा ।।
सुख सर्वांग लहैं इमि देही। पाइ श्रेय जिमि होइ विदेही ।।
सोइ साधन शुभ धर्म कहावा। सेवत जहिं निःश्रेयस पावा ।।
यह प्राकट्य मधुर तम होई। युद्ध संहार शत्रु नहिं कोई ।।

दो०—रहौ साथ मम बन्धु सब, मैं अङ्गी तुम अङ्ग ।।
लख न कोऊ मम यह, क्रीडहु नित मम संग ।।५।। (क)
रूप तुम्हारे प्रकट नहिं, जानहि कोउ मति धीर ।।
एक रूप में प्रकट ह्वै, लीला करूँ गभीर ।।५।। (ख)

रूप छिपाइ रहो मम साथा। निज निज कर्म गहो शुचि हाथा ।।
तुम सब तृप्त अकाम अभोगी। व्याकुल जीव अधम सुख भोगी ।।
करु करुणा मन पलटहु जाई। तुम्ही नचावत सृष्टि गुसाईं ।।
सत्य प्रकट करि ज्ञान प्रकाशो। जीव अन्ध दुख वेगि विनाशो ।।
पाइ विपर्यय बुद्धि विशाला। जात विमुख पथ कठिन कराला ।।
आप्त वाक्य कोउ मानत नाहीं। क्षुद्र तर्क गुण ज्ञान कहाहीं ।।
सब अपराध मग्न जग सोवै। मत हमार अस कहि सब खोवै ।।
प्राज्ञ वचन सोपान सोहावा। पर सुख पाव कर जो भावा ।।
कृष्ण वचन सुन्दर कहि गावा। श्रद्धाहीन सत्य नहिं पावा ।।
सुकृत करै जो नर मन लाई। तेहि फल श्रद्धा आव सुहाई ।।

दो०—अज्ञ अकोविद शक युत, हो श्रद्धा से दूर।
जीवन रत्न लुटावहीं, व्यथ गुमानी कूर ॥६॥
श्रद्धामयी सृष्टि श्रुति गावैं। श्रद्धामय यह पुरुष कहाव॥
जाकी जह श्रद्धा हो जावै। सो जन तैमहिं रूप धरावै॥
श्रद्धामात दयामयि रूपा। पालति प्राणि ह धरि बहु रूपा॥
सोइ श्रद्धा सञ्चोरहु जाई। मल विक्षेप कषाय विहाई॥
शुद्ध हृदय शुभ सदन हमारा। श्रद्धा मा बहु बार उचारा॥
श्रद्धा बुद्धि समवित होवै। साम्ब सदाशिव मुख प्रिय जोवै॥
जीव शुद्ध पुनि विज्ञ स्वरूपा। वत्ति मलीन असत दुख रूपा॥
देहु जाइ सद् वत्ति सुहाई। ज्ञान हीन मन मुग्ध लुभाई॥
मानस शुद्ध विमुक्त उदासी। तुष्ट पुष्ट शिव शान्त उपासी॥
जिहि विधि होय यतन सोइ करहू। सम्मुख जीव लखत सुख लहहू॥
महा दिव्य वरदान स्वरूपा। अखिल शक्ति आशीष स्वरूपा॥
हेतु जगत कँह अलख अनूपा। आनँद सरित सरल सत् रूपा॥
सो श्रद्धा सुख शाति की खानी। आवति हृदय जानि निज प्रानी॥
हृदय हीन यदि दम्भ कुकरमा। धारत नित मनुकर दस धरमा॥
कायिक धम कहावै भाई। शुद्ध भाव कण प्रकटै आई॥
तब मानस सन्बुद्धि निहारा। सत पावन कँह करत विचारा॥
चिन्तन चारु चरण जो लावै। भक्ति माग बुध ताहि बतावै॥
चितक चिन्त्य अभेद लखावै। ज्ञान पथ श्रुति शास्त्र कहावै॥
कम हीन नहिं कछु ससारा। ज्ञान भक्ति सब कँह आधारा॥
दोउ पथ पठवत प्रभु प्राणी। कहेउ वेद अति निमल वाणी॥
अति सक्षेपहिं कहेउ सुजाना। शब्दज्ञान अति तुच्छ बखाना॥
तुम्हरहिं कृपा पाइ सद्धर्मा। शुद्ध वत्ति युत करहि सुकर्मा॥
तेहि कर फल जस आगे गावा। श्रद्धा पाइ शाति जग छावा॥

दो०—छाइ रही सवत्र महि, चिदानन्द की गध।
मन कुरङ्ग मद मुग्ध है, जस सावन के अन्ध ॥७॥

अब अविलम्ब जाहु सुर त्राता। मानस निग्रह सब सुखदाता ।।
ईश अश मानस कहलावा। तदपि मलिन मन बोध न आवा ।।
सुरन सुनेउ आयसु वर बाता। हाथ जोरि पूछत निज बाता ।।
कहहिं सकल सुर सुनहु महेशा। जानि प्रपन्न करहु उपदेशा ।।
विश्वनाथ विद्या वर दाता। योगीश्वर हर सब सिधि दाता ।।
विहँसि मुनीन्द्र विबुध मुख जोवा। मोह निशा सब जग सुख सोवा ।।
धर्म कर्म श्रुति शास्त्र विरागा। यज्ञ योग जप कर्म विभागा ।।
ये उत्तम गुण हेय बतावें। तर्क कोटि करि बुद्धि गवावें ।।
मति विपरीत सकल विपरीता। मित्र शत्रु अघ होहिं पुनीता ।।
ऐसी चित्त दशा जब आई। को सुनि है उपदेश दृढाई ।।
एक साध्य साधन हूँ एका। दृढ गहि राखो नाम सुटेका ।।
नाम प्रचार करो जग जाई। एहि सम धर्म न दूसर भाई ।।
कोउ काहू विधि कबहू लेवै। नाम चिन्तामणि सब सुख देवै ।।
बिनु श्रम साध्य सुलभ करि पावें। जपत नाम नामी ह्वै जावें ।।
कीट भृङ्ग उपमा बुध दीन्हीं। नाद सुनाय एक करि लीन्ही ।।
नाम नाद अति घोर भयङ्कर। बाधत बाधा महा शुभङ्कर ।।
जप योगी नहिं नाम सनेही। विरह आँच परसत नहिं तेही ।।
दीन हीन नहि सब सुर नाथा। नाम सुधन लहि भये सनाथा ।।
नाम वारि मन मीन बनाये। मानव दिव्य अलेप सुहाये ।।
धर्म कर्म श्रुति शास्त्र सुचेता। जानत हूँ नित रहत अचेता ।।
नामाकार सृष्टि लखि पावा। नाम रूप नामी धरि आवा ।।
शुद्ध हृदय करि गहि मम नामा। लहहिं अछत तनु धाम ललामा ।।

सो०—नाम प्रताप महान, थोरहि मह जानहुँ विबुध ।
देहु सबहिं प्रिय नाम, नीच कुटिल क्रोधी अबुध ।।८।।

यद्यपि प्रभु कृत सकल सुदेशा। भरतखण्ड एक खण्ड विशेषा ।।
होत जहा अस शुभ सम्वादा। हरत ग्लानि महौघ विषादा ।।
विष्णु विरञ्चि सुरेश प्रवीना। शारद लच्छि सुशची नवीना ।।

नाशत पाप पुण्य चहु धायो। पुण्य प्रकट शुभ श्रेय सुहायो ॥
श्रेय सुखाकर सब श्रुति भाख। जीव शरण हो रस वर चाख ॥

दो०—रस ही ब्रह्म स्वरूप है, पूण अनन्त अपार ॥
चरणाश्रित हो पाव कोउ, चिद घन शान्त उदार ॥१०॥

चिदानन्द श्री श्री ब्रह्मचारी। करत केलि शिशुमध्य पुरारी ॥
बाल प्रेरि निज पास बुलाव। गौतम गङ्गा पार घुमाव ॥
हास विलास अनेक अनूपा। क्रीडत लीला धर बहुरूपा ॥
परम शुद्ध शिशु भाव कहावा। सनकादिक तप साधि कमावा ॥
अहो धन्य कूर्माचल वासी। पाए तुम शिव मत उदासी ॥
बहुत प्रशसि कहहिं गुण ग्रामा। सकल परस्पर पूछहिं ठामा ॥
उत्तर गिरि हिम रम्य सुहाई। तह एक भाग परम रुचिराई ॥
हैडाखान नाम सब जानै। श्री कलाश तलटो मान ॥
करि करि कष्ट आव नर नारी। होहिं दरस मुद मङ्गल कारी ॥
वाञ्छित फल सब काहू पावं। अधिक अधिक अनुराग बढाव ॥
दिव्य नाद छायो चहुँ ओरा। प्रकटे कोउ एक बटुक किशोरा ॥

दो०—क्या किशोर बटु रूप अति, सुषमा सुघर सुशान्त।
ज्ञान धाम वितराग निज, सकल विश्व के कान्त ॥११॥

उत्थित कर सब नाचि सुबानी। कहहिं परस्पर हँसि मृदु बानी ॥
देखु देखु ब्रह्मचारी बाबा। दया रूप प्रभु आप बनावा ॥
सरल दयामय नर अनुहारी। पालक जीव सदा उपकारी ॥
सुन्दर वदन अमिय सम बोला। धारत अग सुसुन्दर चोला ॥
परम सौम्य तन रूप लुनाई। रचना सीव विरञ्चि बनाई ॥
देत दरस करुणा करि भारी। को समथ सक रूप निहारी ॥
श्री कर गन्ध सुगन्ध सुहाई। जीव मत्त जिमि प्रभुपद पाई ॥
देह सुकोमल सुमन समाना। नव नव रग विविध विधि नाना ॥
भक्त माल गल माल सुहाव। भाल सुदीप्त सुतेज बताव ॥

अरुण ओष्ठ अनुपम मन आव। एहि सम कहँ जेहि उपमा लावै ॥
चिबुक चन्द्र सम करत प्रकाशा। धरत ध्यान हिय भान प्रकाशा ॥
दो०—अमल अलौकिक अंग सब, दिसत सदा सब काहु।
सुनि सुनि जन उमगत हिये, करौं दरस अब जाहु ॥ (क)
सो०—महा चकित चित होत, अवलोकत,जे रूप वर।
बरनत सहित समाज, अहो धन्य नृवश वर ॥१२॥ (ख)
तुम मम नाथ अपार, अहो सुन्दर तन स्वामी।
शुचि शोभा की खानि, परम गुरु अन्तर्यामी ॥
जग कह बहुत प्रशंसि, शांति जस कमलापति में।
शाश्वत शान्ति प्रसार होत, पल पल अणु अणु में ॥
जो जन जात आतप्त, त्रिविध सुख से अतिभारी।
पावत अति सुखशान्ति, विविध विधि है नर नारी ॥
बिनु बोले संशय सबन को, दूरि करो गुरु ज्ञाता।
अति समर्थ करुणामय कोमल, हेतु रहित जग त्राता ॥
एहि विधि आवत नर बहुतेरे। देश देश के वेष घनेरे ॥
पालक आज्ञा दक्ष सुशीला। नाम परायण रत प्रभु लीला ॥
यद्यपि रूप बहु सरल बनावा। तदपि शक्ति निज रूप लखावा ॥
दया वृत्ति विनवति प्रति श्वासा। भोला भरो दुखिन की आसा ॥
भ्रमण हेतु मन कीन्ह विचारा। गौतम तट यह शब्द उचारा ॥
शिवथापन करि लीक बताऊँ। ईश उपासन मग बतलाऊ ॥
तहाँ एक शिव थान बनावा। भव्य कलात्मक सरल सहावा ॥
जब निर्माण मग्न नर नारी। उत्सव मग्न अशक बिहारी ॥
तब प्रभु महिमा लखि सकुचावा। सकल तत्त्व प्रभुता बस लावा ॥
मनसा सिद्ध होत सब देखा। लखि लखि विस्मित होहिं विशेषा ॥
अन्न धन परिपूर्ण भण्डारा। लुटत नित्य अक्षय भण्डारा ॥
मन्दिर अष्ट कोण बनवावा। कला कलाधर जग बतलावा ॥
शिखर सुसोह सुधुजा समेता। कलस त्रिशूल सुसजेउ सचेता ॥

पीपल तरु एक वृद्ध विशाला। भाग्यवान सुयशी सब काला ॥
तेहि छाया बाबाजी बासा। करत विनोद सुहात सुहासा ॥
दो०—कुरता टोपी वेष धरि, बिहरत विप्र महान।
वन्दत पद खग सिद्ध जड, पावत पद कल्यान ॥१३॥

"श्री मुनीन्द्र स्तव"

सिद्धासनासीन विविक्त वासी,
ज्ञानाम्बुधे नाथ ! आनन्द राशी।
शान्त स्वभाव शुचि सौम्य विमुक्तकारी,
श्रीमन्मुनीन्द्र जय जय जन तापहारी ॥
गौराङ्ग सुन्दर सुस्मित श्री मुखारविन्द,
भाल विशाल त्रिकुटी अति तेज पुंज।
नयन सुदीर्घ परिपूरित स्नेह वारि,
श्रीमन्मुनीन्द्र जय जय जन तापहारी ॥
न पश्यामि तव रूप मोहान्धकारे,
न स्मरामि तव नाम आपत्ति काले।
नार्चित नाथ ! श्रीपाद मोहापहारी,
श्रीमन्मुनीन्द्र जय जय जन तापहारी ॥
महिमा अनन्त विभु सम भुवि मे विराज।
ऐश्वर्य माधुर्य की कीर्ति गाज ॥
करुणा करो देव कल्याणकारी।
श्रीमन्मुनीन्द्र जय जय जन तापहारी ॥
पालक समर्थ प्रभु त्व निज-आश्रितो के,
दाता सुबुद्धि मतिमन्द उपासको के ॥
विघ्नेश हो विघ्न विच्छेद कारी,
श्रीमन्मुनीन्द्र जय जय जन तापहारी ॥
होती जभी धर्म की ग्लानि जग मे।

करते तभी धर्म रक्षा जगत मे ॥
दुगुणो को करो दूर हे हे अघारी ।
श्रीमन्मुनीन्द्र जय जय जन तापहारी ॥
शरणागतोऽहं गति मे त्वमेकम् ।
माता पिता बन्धु सर्वस्वमेकम ॥
लोकेषु वेदेषु त्वं मम पुरारी ।
श्रीमन्मुनीन्द्र जय जय जन तापहारी ॥
औदाय आर्द्र करुणा परिपूर्ण दृष्टि ।
सन्तुष्ट हो नाथ ! सम्पूर्ण सृष्टि ॥
लीला विचित्र तव हे नर रूप धारी !
श्रीमन्मुनीन्द्र जय जय जन तापहारी ॥

परसि चरण विनवत कर जोरी । अहो नाथ मम मति है थोरी ॥
तुम करुणा करि दरस दिखाये । लखि सन्तति दुख आप सिधाये ॥
महिमा तुम्हरी जान को पावै । चरित देखि विस्मित हो जावै ॥
कहहि ग्राम्यनर विविध सुवानी । सुनहि सप्रम बाल अनुमानी ॥
मुनि मन खीचि रहे जनु कोऊ । जन्मातर कर प्रिय जन सोऊ ॥
नाम गुमानी भक्त कहावा । परम विनम्र सुकोमल भावा ॥
यदपि गहस्थ पाव सुख सारा । युवा वेश पत्नी सुत प्यारा ॥
तदपि मनहि एक भाव समायो । प्रभु निरखन हितमन ललचायो ॥
जानि अगम मन चिंता भारी । पल पल सोचत हृदय मझारी ॥
व्यथ जन्म प्रभु बिनु जग जावा । मानुष तनु लहि नहिं कछु पावा ॥
ईश कृपा यह नर तन पावा । पाइ कृपा अपि प्रभु नहिं भावा ॥
चिंता वन अति गहन गम्भीरा । आदि न अन्त देत सब पीडा ॥
विरह ज्वाल हिय अधिक जलावा । रटि प्रिय नाम सुदिवस बितावा ॥
भक्त हृदय सुधि पाइ दयाला । भक्त मिलन हित भए विहाला ।
एक दिन जात भक्त कुछु काजा । मग निरखे अनुपम मुनि राजा ॥
करत विकल्प बहुत मन माही । बंदि चरण बठेउ प्रभु पाही ॥

दशा उच्च अविकल्प समाधी । चेष्टा हीन मौन व्रत साधी ॥
आवत ही जन चरण समीपा । 'तत्' पायउ अत्युच्च अनूपा ॥
कछुक काल कियो सत्पुर वासा । जेहि पावन मुनि करत प्रयासा ॥

दो०—करि प्रयास बहु कल्प लौं, कोउ पावत मति धीर ॥
सो सुख भक्त प्रयास बिन, चखत तृप्त हो वीर ॥१४॥

पावन करहु देव गह जाई । रूप अनूप न सकौं भुलाई ॥
तुम ही हो मम सद्गुरु देवा । अलख अगोचर शिव महादेवा ॥
भक्ति भाव पूरित मृदु बानी । सुनत समाधि तजेउ मुनि ज्ञानी ॥
आज्ञा कीन्ह चलन शुभ ग्रामा । पहुँचे आइ मुदित शुभ धामा ॥
पण कुटी दुइ तीन सुहावा । आम्र वृक्ष चहुँ ओर लगावा ॥
अन्य विविध तरु पल्लव सोहा । शल समीप सकल मन मोहा ॥
भक्त भवन बसि भूधरनाथा । भक्त प्रम बस भे मुनिनाथा ॥
ग्राम ग्राम बडि दूर लौ भई । चरचा मचि रहि सब ही ठाईं ॥
नौला सन्त एक कहु पावा । आनि धामा बहु लाड लडावा ॥
अष्टयाम पूजा मन लावा । पराभाव सेवा कह आवा ॥
त्रिविध ईषणा से मुह मोडी । सेवत ब्रह्म दुहूँ कर जोडी ॥

दो०—जिज्ञासू जिमि गुरु भज, भज बाल जिमि मात ॥
तसहि ठाकुर सेव्य भज, श्री मुनीन्द्र महाराज ॥१५॥

नित प्रति भोर करत परणामा । एक दिन अद्भुत रूप ललामा ॥
लखेउ भक्त जस लखा न काहू । देखा हर नर रूप सुनाहू ॥
आभा दिव्य दिव्य कर सोहा । वसन भाल दग लेत सुमोहा ॥
सत कर सत्य प्रमाना । परम मुदित निज गह शिव जाना ॥
इष्ट भाव अब दृढ होई आवा । मनहिं समेटि चरण तल लावा ॥
मानस ध्यान मग्न दिन राती । परम अकिञ्चन सरल सगाती ॥
योग क्षेम वर दायक देवा । सशय त्यागि नित्य कर सेवा ॥

दिव्य सम्पदा हिय धरि राखा । सरबस अरपि सेव्य सुख चाखा ॥
अपर भक्त गण बहुतक आये । मनसा फल सब काहू पाये ॥
आजहुँ देश विदेश मे छावा । जानत सब प्रभु केर प्रभावा ॥
आशुतोष नर रूप प्रतापी । सत्य सनातन कण कण व्यापी ॥
ताकी शक्ति सकल श्रुति गावा । शास्त्र अचारज अ त न पावा ॥
तातें वरणत अति सकुचाउ । लखि महिमा निज शीश झुकाउ ॥
सुनेउँ बहुत प्रभु की प्रभुताई । लखेउ बहुत प्रभु की गुरुताई ॥
पल पल लखि प्रभु दया अनन्ता । मात पिता सम पालत सन्ता ॥
अपनावत सब भांति अनाथा । सदय मृदुल चित सब कर नाथा ॥

दो०—करत सनाथ अनाथ को, सरल सन्त सम रूप ॥
धर्म समन्वय करन हित, प्रकटे ऋषिवर रूप ॥१६॥

निज निज धर्महिं सबहिं लगावा । साम्ब सदाशिव गुरु बनिआवा ॥
सन्त एक मिथिलापुर वासी । राम भक्त शुचि दक्ष उदासी ॥
रामेश्वर दर्शन चह कीन्हा । आयसु इष्ट स्वप्न अस दीन्हा ॥
अलमोड़ा गिरि सुन्दर ठामा । विचरत सन्त एक शुभ नामा ॥
सचल सदाशिव पूजहुँ जाई । अस अवसर दुर्लभ जग भाई ॥
इष्ट वचन सुनि कीन्ह पयाना । ल गङ्गाजल बहु सुख माना ॥
चलत पंथ मुख नाम उचारे । हर हर शिव शिव दै दै नारे ॥
देखि नगर पर्वत बिच बासा । अनुमानत मन श्री कैलाशा ॥
विप्र सदन विरमे महाराजा । पा दर्शन सब सुखी समाजा ॥
सबहिं सरल मानुष तन देखा । दिव्य रूप वह साधू पेखा ॥
दरसायो शिवरूप मनोहर । लखि पायो निज आज धरोहर ॥
जीव अतृप्त रूप रस भूखा । तृप्त होहिं जो पाव पियूषा ॥
सत्य सुधा शिव रूप बखाना । लखत रूप सब रूप भुलाना ॥
कछुक काल रहि श्री प्रभु संगा । भा कृतकृत्य पाइ सत्संगा ॥
यह रहस्य जब सब सुनि पावा । गद् गद् कह सब जय श्री बाबा ॥

दो०—अस लीला अगणित भई, किये कृतारथ जीव।
विरहानल मे दग्ध को, दे दर्शन बनि पीव ॥१७॥

अस गाथा घर घर रहि गाई। सत विलक्षण प्रकटे आई ॥
एक समय बहु ठौर विराज। एकहिं रूप बहुत करि भ्राज ॥
कबहु रुग्ण गह जात गोसाई। चरण चापि सेवत मन लाई ॥
दे औषधि तन व्याधि मिटावा। पथ्य खिलाय भ्रमत मन भावा ॥
कबहु विवाद करत विद्वाना। समाधान सच पाव सुजाना ॥
विफल मनोरथ मन जन आवा। सफल होत मन काम सुहावा ॥
देखि चरित अचरज सब पावा। जीव बुद्धि सीमित कहलावा ॥
दरस हेत मचलत कोउ प्राणी। प्रभु समझावत कहि प्रिय वाणी ॥
लीला विविध सुमङ्ग मूला। मनन करत नाशत सब शूला ॥
प्रभु चरित्र सब भाति अगाधा। अगम रूप वरणत सब साधा ॥

दो०—महा अलौकिक कर्म सब, प्रतिपल करत प्रचार।
दौड़ि दौडि जन आइके, पावत शरण उदार ॥१८॥ (क)
अस्तुति करि सब भक्त जन, पाव सुक्ख महान।
करि आदर जग जे पढ़ें, तिन कह सुधा समान ॥१८॥ (ख)
स्वर्ग सुधा श्रवणन सुयो, शब्द सुधा जग माँहि।
अति पावन सुख श्रेय प्रद, पावत जन मन माँहि ॥१८॥ (ग)
श्री गुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधार।
वरनउँ श्री गुरुपद विमल, जो दायक फल चार ॥१८॥ (घ)

प्रणवउँ श्री गुरु चरण सुहाई। महिमा जासु न जानी जाई ॥
सब गुण सागर सत महाना। आदि अत जेहि काहु न जाना ॥
रम दयामय हृदय तुम्हारो। शरणागात को शीघ्र उबारो ॥
कौन सो कष्ट मुनीन्द्र है जग मे। दूर न होय दया से छिन में ॥
ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न गोसाई। पालत जन को दुख छुड़ाई ॥

मृदुभाषी मुनि परम उदारा। बोध वाक्य है ज्ञान को सारा॥
हैडाखान विचित्र है धामा। पावन अमित सुखद विश्रामा॥
गौतम गगा गजति निशि दिन। सिद्ध सुरासुर अ्रचत अनुदिन॥
श्री कलाश शिखर की शोभा। देखत ही मन उपजत लोभा॥
तेहि गिरि तल एक रम्य गुहा है। श्रुति प्रतिपाद्य गुहा ही महा है॥
विविध प्रसून सुपल्लव सोहा। जानत सो जो नयनन जोहा॥
वन मृग विहरत कानन माही। वर परस्पर सकल भुलाही॥
परम अहिसा व्रत के धारी। श्री मुनि कृपा स्वभाव विमारी॥
प्रभु जब से यहाँ कीन्ह निवासा। नदन वन मनो लगत उदासा॥
सुलभ सकल सुख क्षेत्र के सेये। काय वचन मन प्रभु पद देये॥
श्री मुनि निज मुख करी बडाई। महिमा गुप्त जो प्रगटि जनाई॥
निरखि मुनी द्र मनहि अति भाये। कीन्ह निवास हरषि उर लाये॥
परम पवित्र शात यह गिरिवन। आकर्षित हो साधक जन मन॥
धय धय यह तीथ हमारा। जहा सचल शिव करत विहारा॥
रूप अनूप महा छवि छाज। शुद्ध सत्य सौंदय विराज॥
चारु चरण नख द्युति तमहारी। पद्म युगल सम पद सुखकारी॥
श्रीचरण शरण मे अटक्यो मन है। चपल चित मे चिंतन यह है॥
नख सिख सुभग है काति अपारा। बरन को कवि पाव को पारा॥
यह जिय जानि चरण चित लाव। श्रीचरण कृपा ही स्वरूप लखाव॥
आन भरोस न है मन माही। दास अज्ञ असमथ सदा ही॥
तत्व रूप तुम तत्व वित्त तुम। पच तत्व के प्रेरक हो तुम॥
सकल तत्व तुम्हरे आधीना। प्रगटिन महिमा यह सब जाना॥
तुम्हरी आज्ञा जड चेतन पर। विभु सम शासक सब भूतन पर॥
अणु अणु मे व्यापक सर्वेश्वर। महामहिम परम परमेश्वर॥
सब सकल्प सिद्ध हो ताके। जो जन चरण शरण गहे आके॥
त्रिकालज्ञ त्रिगुण के पारा। त्रिवेद तत्व के मूर्ति साकारा॥
निज सकेत ही सृष्टि नचावो। द्रव्य स्वभावहि उलटि बतावो॥

जल और अग्नि विरुद्ध परस्पर। श्रीकर परसि मित्र एक एक कर॥
दिव्य तत्व निर्मित तव देहा। अविकारी पर हृदय सनेहा॥
एक अनुग्रह करि जग प्रगटे। दयाधीन ह्व गिरि बन भटके॥
दीनबन्धु तुम दीन पियारे। दीनन के सँग रहत सुखारे॥
दया दृष्टिकर जाहि विलोका। सोइ जन व य भये त्रै लोका॥
रोग शोक दारिद्र दु ख से। किये मुक्त अगनित जन भव से॥
चरित अनूप अपार महा है। समुझत ही मन मोद बढा है॥
मन मधुकर हो मत्त चरण मे। बाल विनय सुन राखो शरण मे॥
पद पद्म परात्पर रूप लखावै। साध्य सबन को श्रुति है बतावै॥
पद पद्म उपासक है जे जग मे। तिनके जीवन नित हैं मुद मे॥
पद पद्म प्रभा अति उज्ज्वल है। साधन पथ का प्रिय सम्बल है॥
नित आनद सौख्य की व ष्टि वहा। मुनिराज विराजत होय जहा॥
शुचि मोहक गध है छाय रही। छवि छाय रही मँडराय रही॥
महिमा तहँ की कहो कैसे कहैं। प्रति सास विलक्षण भाव लहैं॥
गुरु गोविंद गान श्रेयस्कर है। सब साधक को अति हितकर है॥
मम मानस मे तुम मीन बनो। हम विमुखो मे तुम लीन बनो॥
अनुरक्त बनो हे विरक्त महा। असमथ तुम्हे है ढूढ़ रहा॥
अब जीवन अल्प अधार न आना। आप सहाय करो भगवाना॥

सो०—श्री चरण जलज नवजात, रहत सदा बरबस मनहिं।
करत नेह निज जानि, कृपा रूप समझौं तुमहिं॥१६॥ (क)

तुम मुनि परम उदार, सुमिरत सुख आवत निकट।
करु हिय शुद्ध सुशात, रहौं नाथ चरनहिं लिपट॥१६॥ (ख)

कृश शरीर तन तेज विराजै। शुभ्र ज्योति चहु ँओर है राजै॥
अति कमनीय कला है ऐसी। आजु लगे नहिं देखी जसी॥
शब्द गम्य नहि भाव गम्य वे। सत्य सनातन प्रकट देव वे॥
भूत भविष्यत के द्रष्टा वे। मम मानस के शुभ स्रष्टा वे॥

जग हित तत्पर श्री शङ्कर वे। अखिल विघ्न मे अभयङ्कर वे ॥
नित नूतन अभिवृद्ध काम वे। विश्ववन्द्य विभु श्री विरचि वे॥
पालक कोमल अति कृपाल वे। क्षमाशील भगवान् विष्णु वे॥
सब रूप समूह अरूप है वे। उन रूप जगत जग रूप हैं वे॥
सब रूप विसारि यह रूप गहौ। यदि रूप अरूप सो मुक्ति चहौ॥
तव रूप निहारि निचेष्ट भयौ। पुनि देखन को अभिलाष रह्यौ॥
तुम आवत ओर हमारी प्रभो। हम जानत हूँ सकुचात प्रभो॥
तुम पुण्य पयोधि अपार प्रभो। पर दीन दयामय देव प्रभो॥
शिव सुन्दर सत्य स्वरूप प्रभो। अज व्यापक अगुण अनादि प्रभो॥
अनुमान प्रमाण से दूर प्रभो। निज भक्त हृदय प्रत्यक्ष प्रभो॥

दो०—जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति मे, तव सत्ता प्रख्यात।
श्री सुषमा सुख राशि की, मोपै कही न जात ॥२०॥

दिव्य वदन अति मोहि लुभावै। श्री पद पद्म अब परम सुहावै॥
श्री चरण चारु चिन्मय उजियारा। सुभग सौम्य पावन अति प्यारा॥
चरण प्रभाव अपार महा है। रेणु पुनीत सुचित्त चढा है॥
चरणाश्रय यदि दृढ हो जावे। सब साधन का फल वह पावे॥
चरण शरण मे रति जाकी। सुरति सुमति शुभ मति है बाकी ॥
चरणाश्रित का कर प्रभु पालन। दलन दोष समरथ नारायन॥
चरणोदक प्रभु देहु दया करि। आओ आओ आओ हे हरि॥
हर हर ओम् श्री सदगुरु हर। सवसुखाकर प्रणतारतिहर॥
अम्बा अम्बा जय जगदम्बा। सव रूप एक तू ही अम्बा॥
जगत जनक हे विधि कमलासन। वेद भनत तुम हो चतुरानन॥
सव देव मय देह तुम्हारी। तुम सम तुम हे प्रभु अवतारी॥
श्री चरण कमल को नमन करूँ मैं। हाथ जोड सिर चरण धरूँ मैं॥
श्री चरण सुकाति मनहि को बाधै। कहत मनहि मन तजौ सुसाँधै॥
अब तजि जनि तुम जाहु मीत मन। यह क्षण अब फिर आवै केहि छन॥

चरण कमल सिर कमल मे लावौ। हम तुम भूलि प्रीतम पद ध्यावौ॥
श्री विग्रह मूल चरण कहाव। मूल गहेते सब फल पाव॥
और फलन को फल ही कहा है। सकल सुकृत फल चरण महा है॥
दया दृष्टि करि देहु चरणरति। आन उपाय न पाऊँ विमल मति॥
चरण सनेह शीतल मधु शुचि है। जीव मात्र की थिर अभिरुचि है॥
स्नेह सलिल सिंचित हिय थल हो। बोध वृक्ष की छाँह सघन हो॥
सुस्थिर छाह सघन हो अविचल। त्रिविध ताप को कर सुशीतल॥
सदगुण सुमन सुगन्ध बढावै। मल मानसिक तुरत हटावै॥
पल्लव फूल फलन युत डारी। योग क्षेम पूरित मन हारी॥
शाति सरित की ध्वनि हो कलकल। प्रीति प्रवाह बहै नित छलछल॥
सघन विपिन वन मृग है डोलत। मधुर स्वरो मे पक्षी बोलत॥
छत्र चवर युत सेवहिं लोका। पाइ दरस सब होहिं विशोका॥
ज्ञान वद्ध तप वृद्ध मुनी द्रवर। है आसीन अजिन आसन पर॥
यही ध्यान रस रहै मत्त मन। सदानन्द शिवधाम रूप हर॥
मङ्गल भवन अमङ्गल हारी रे। प्रभु तेरे चरण कमल बलिहारी रे॥
तुम परम पुरुष अविकारी रे। श्री सद्गुरु जाउँ बलिहारी रे॥
नाथ अचल मे चञ्चल भारी रे। तुम तीव्र गति मम मद मती रे॥
तुम देखत नाथ यह मोरी गती रे। करहु कृपा होय नाम रती रे॥
तुम देखन चाह रहै मन मे रे। तुम देत दिखाई सदा सब मे रे॥
कहुँ कोमल कमल समान हैं रे। कहुँ ककश कठिन कपान हैं रे॥
श्रीमोहक रूप धस्यौ हिय आय रे। करौ कोटि उपाय नही निकस रे॥
नही देखत जो गुण औगुण है रे। ऐसो उदार कहो जग को रे॥
जग जात जेते जगती तल रे। जन जीवन प्राण है वे सब रे॥
मन मीत है मोर भयो अब रे। निज लक्ष्य सुथिर भयो जब रे॥
चिदानन्द वा अन्य कहूँ रे। अनुमानि हिये अनुपमेय कहूँ रे॥
अनुदिन आवत नाथ कहूँ रे। छन पल पल सुखराशि कहूँ रे॥
ज्योति जगत बिच जाग रही रे। जयति जयति जग धूम मची रे॥

प्रभु करन कृपा ही देह धरी रे। सुख करन दलन दु ख भ्राति हरी रे॥

दो०—गौर देह सुन्दर लसत, कुरता टोपी भाल।
चरणाश्रित निज बाल के, काटो सब जग जाल ॥२१॥ (क)

सो०—नित उठि देखौं राह, कब आव श्री मुनी न्द्र जी।
सत्य धम आचाय, ब्रह्मचारी हैडाखान के ॥२१॥ (ख)

श्लो०—ॐ नमोऽस्तु ते देव दयालु मूर्ते, शिष्यानुरक्त शिव श्रेय कारिन ॥
पापानि दु खानि संहारकर्ता, प्रणतोऽस्मि नित्य करुणावतारिन ॥

अस्तुति करहिं मुदित नर नारी। पाइ चारि फल होहिं सुखारी ॥
कछुक काल ह्व अन्तर्द्धाना। अन्तर्यामी कर कल्याणा ॥
दिव्य सुअवसर एक दिन आवा। परमाह्लाद चतुर्दिश छावा ॥
श्री बाबा की मूर्ति मनोहर। थापन हित आयोजन सुन्दर ॥
शिखर सुशोभित भव्य विशाला। निज मंदिर लखि दीनदयाला ॥
आज विश्व मह संशय छावा। भौतिकवाद चरम फल पावा ॥
ईश आज निज दरस दिखाओ। नास्तिकता कहँ दूर भगाओ ॥
होइहैं प्रकट अवसि इहिं बारा। अस विश्वास बहुत उर धारा ॥
करहिं जागरण नर अरु नारी। बाल वृद्ध मन हरषित भारी ॥
यज्ञ धूम धूमिल महि छाई। आश्रम सुषमा वरणि न जाई ॥
पाठ अखण्ड नाम धुनि सोहा। गिरा अतीत दिव्य मन मोहा ॥
तिथी चौथ अरु शनि शुभ वारा। फागुन मास सुपक्ष उजारा ॥
युग सहस्र सम्वत् दस चारी। प्रकटे ज्योतिमय वपुधारी ॥
होइ सत्य थित निज गति खोवा। एकहिं एक धन्य करि जोवा ॥
भक्त शास्त्र जे लक्षण गावा। आठौं सात्विक भाव लखावा ॥
सकल सुभाग सराहहिं अपना। लखी आज जिन्ह अनुपम घटना ॥
औरउ कथा विचित्र सुहावा। कवि कोविद बहु भाँति सुगावा ॥
महा पव प्राकटय मनावा। लोक वेद सब भाँति सुहावा ॥
प्राकट पव द्वितीय जब आवा। श्री वन धाम सुधाम बनावा ॥

सो०—दिव्य धाम सुख धाम मे, साम्ब सदाशिव कुञ्ज।
परम सुरम्य सुशान्त थल, भजत दूर अघ पुञ्ज ॥२२॥ (क)
सत्य सरलता प्रेम की, धार बही चैतन्य।
अवगाहत सत रूप लख, चिद घन सरस अनन्य ॥२२॥ (ख)

प्रति सम्वत् शुभ पर्व मनावा। प्राकट उत्सव प्रभु कहलावा॥
चिन्मय विग्रह आप बनावा। पावत दर्शन जन मन भावा॥
सत्य सनातन धर्म उदारा। ज्ञान निहित शुचि कर्म उचारा॥
सबहिं स्वधर्म श्रेय कर दाता। द्वेष घृणा नहिं धर्म कहाता॥
प्रेम सरलता सतयुत भ्राता। यहै धर्म मानव सुख दाता॥
नाम भजो हिय शोधो भाई। प्रभु अभ्यन्तर बैठयौ आई॥
अन्तर हृदय शुद्ध शिव वासा। पहिचानहुँ तजि अज्ञ दुराशा॥
उत्तम जन कहँ लक्षण एहा। स्वप्नहु करहिं न अन्य सनेहा॥
जस कोउ व्यक्ति व्यसन बस होवे। प्राण मान धन सहजहिं खोवे॥
तसि स्वाभाविक रति हो जावे। साम्ब सदाशिव के मन भावै॥
नाना क्लेश पूर्ण संसारा। सब नर खोजत सुखद अधारा॥
जननि जनक सों ज्यो सुत भाखे। देय न देय हेत सोई राखै॥
अन्य एक भिक्षुक कहलावा। बिना मिले कछु बहु झुंझलावा॥
सब भांति सब त्यागि शुभाशा। केवल एक चरण कर आशा॥
कसेहु विपति मध्य नर होई। असन हीन सम्भव नहिं कोई॥
तैसेहि ईश भजो नरनारी। मानव बनो न बन व्यापारी॥
क्षुद्र सहायक जे जग माही। तिनकर ध्यान रहत मन माही॥
सकल जगत के आश्रय प्यारे। कस न भजो नर सांझ सकारे॥
भोर निशा जिमि प्रतिदिन होवे। दुख सुख युत निज आयू खोवै॥
[illegible] अभाग्य की यह बलिहारी। नाम भजत नहिं नाह निहारी॥
नाम रटो रटु होहु अशंका। कृषक बीज वपि सोव निसङ्का॥
क्षेत्र बीज सम्बन्ध अनोखा। आपहि आप बढत अति चोखा॥
गुरु प्रदत्त श्री नाम जो साधा। सो साधक सुख लहै अगाधा॥

बार बार विनवौं सब काहू। भजो नाम हिय राखि सुनाहू ।।
गुरु प्राप्ति दुर्लभ संसारा। खोजी मन नहि शुद्ध हमारा ।।
महाभाग्य वश जो गुरु पावा। पाइ सब सुख निज पुर जावा ।।
क्षुद्र जीव गुरु सँग जो आवै। समय पाइ साधन फल पावै ।।
साध्य साधना साधक रूपा। नटत नटेश धारि बहु रूपा ।।
व्यापेउ जग प्रभु सब स्वरूपा। अमित नाम नाना विधि रूपा ।।
जेहि विधि देहु जनाय अनामा। चरणाश्रित लह रूप ललामा ।।
सब सामर्थ्य हीन मैं ताता। राखु शरण सचराचर त्राता ।।

राखौ शरण सर्वेश अब, जन योनि भटकत बहु फिर्‍यो।
पायो कहूँ नहि शांति स्वप्नहुं, यत्न बहु बहु करि मर्‍यो ।।
भवताप दग्ध वियुक्त को, श्रीपाद में आश्रय दियो।
अपनाय करि करुणा महा, सब पूर्ण मनसा प्रभु कियो ।।

दो०—पूर्ण परात्पर ब्रह्म तू, मैं आश्रित श्रीपाद।
सकल श्रेय सुख प्राप्त हो, चिंतत यह संवाद ।।२३।। (क)

तीन प्रहर की अवधि मे, प्रकटे ग्रन्थ अनूप।
साम्ब सदाशिव कुञ्ज मे, विहरै श्री हर रूप ।।२३।। (ख)

श्री कूर्मांचल खण्ड सम्पूर्ण

सप्तम् पुष्प—श्रीहैडियाखण्डी सप्तसती

निर्माता

आचार्य विष्णुदत्त मिश्र

"विष्णु विप्र"

मगलाचरणम

श्रीस्रग्धरादेवस्तव

श्रीउपजातिदेवस्तव

श्रीअनुष्टुपयोगीन्द्रस्तव

श्रीशार्दू लविक्रीडितसिद्धेन्द्रस्तव



आरती

* * *

ज जै हैडाखण्डी बाबा, जै ज हैडाखण्डी।
यावर वास कठघरिया तेरो, अरु हल्द्वानी मडी ।। जै ।।
कूर्मा चल कैलास बसेरो देव गुफा ब्रह्माण्डी।
हैडाखान के अष्ट कोण मे, भाव रहे निद्व द्वी ।। जै ।।
सिद्धवन के कण कण तेरा ध्यान करे योगी बसेरा ।
सुरियादेवी अन्चल तेरा, आवागमन का लागे फेरा ।। जै ।।
को जाने प्रभु माया तेरी, मूख हृदय प बादल घेरी ।
भवसागर मे डूब रहा हूँ, पार करो प्रभुकरत निघोरी ।।
ज जै हैडाखण्डी बाबा, जै जै हैडाखण्डी ।।





ॐ ह्री हडाखङ्गाय नम

श्रीहैडाखण्डविहारिणे नम ॥

श्रीम मुनीन्द्रपदपद्मपरागराग
लुब्ध मधुव्रतव्रतायितम तरालम् ॥
सतावतारममरार्चितपादपद्म
श्रीम महेन्द्रमुनिपुङ्गवमानतोऽस्मि ॥

—विष्णुमिश्र

॥ मगलाचरणम् ॥

यस्य कृपावीक्षणलेशतोऽपि
वाणी स्वय धावति नृत्यतीव ।
विद्या समस्ता यमनुव्रजन्ति
तस्मै नम श्रीचरणाश्रिताय ॥ १ ॥

सुरा योगीश्वरा सिद्धा सर्वे मङ्गलकाक्षिण ।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यजगन्मातरमम्बिकाम् ॥ २ ॥
हैडाखण्डेश्वरी देवी सदगुरोर्हृदयस्थिता ।
अभीष्टसिद्धिदा दुर्गा, सवदेवनमस्कृता ॥ ३ ॥
हैडाखण्डगुहासीन परमेष्ठीगुरु शिवम् ।
नत्वा देवगणा सर्वे उपतस्थुस्थाम्बिकाम ॥ ४ ॥
ऊचुर्देवगणा सर्वे जयस्व जगदम्बिके ।
प्रसीद परमेशानि, प्रयच्छ सुखसम्पद ॥ ५ ॥

श्रीस्रग्धरादेवस्तव ॥

हैडाखण्डे शिवस्य त्वमसि श्रुतिनुता शक्तिरुग्रा कराला
भक्ताना व्याधिमाधि प्रशमय शिवदे बिभ्रती मन्दहासम ।
मोहध्वा ते मदीये हृदि वस नियत भास्वरा ज्ञानमूर्ति-
र्भक्ति हैडीश्वरी त्व निजपदकमले भावपूर्णां मनोज्ञाम ॥६॥

योगीना योगमाया त्वमसि धनवता श्री स्वय विश्वभर्त्री
हर्त्री मोहान्धकार निजखरकिरणैर्ज्ञानिना शारदा त्वम् ।
माहेन्द्री त्व मनोज्ञा निजजनजयदा शक्ति रौद्रात्वमेव
हैडाखण्डेश्वरी त्व सकल सुरनुते देवि मातप्रसीद ॥ ७ ॥
शक्ति श्री वैष्णवी त्व विधि हर हरिभि सस्तुते विश्वधात्री
सावित्री वेदमाता तपनतरुणभा विश्वव द्या विभासि ।
काली त्व शत्रु सन्य कवलय सगण छिन्धि शस्त्रप्रहारै-
र्दीन मा रक्ष नित्य तव चरणनत दासदास त्वदीयम् ॥ ८ ॥

माहेन्द्री त्व सुराणा सकलभयहरी सिद्धिदात्री नराणाम्
भक्ताना भीतिहन्त्री मणि मुकुटधरा वारुणी त्व कृपाली ।
अम्बे ! ध्यायन्ति ये त्वा स्तवनजपपरा शुद्धभावेन पूर्णा
स्तेषा रक्षापरा त्व विचरसि भुवने सवमागल्यदात्री ॥ ९ ॥

दुर्गे विश्वार्तिहन्त्री जय जय त्वरित शत्रु स य मदीयम्
पीत्वा पीत्वा प्रहार कुरु कुरु सतत छिन्दि शूलप्रहारै ।
भक्ताना भीतिह त्री शरणमुपगत त्राहि दास प्रप नम्
सर्वेषामिष्टदात्री त्रिभुवन जननी त्वत्समा न द्वितीया ॥१०॥

नित्ये ध्यायन्ति ये त्वा सततजपपरा शुद्धभावेन पूर्णा
निद्व न्द्वा देहगेहे चरणकमलयोर्दास्यपीयूषतृष्ता
पादाब्ज ते मनोज्ञ भवभयहरण सश्रिताऽन यभक्त्या
तेषा कल्याणदात्री शुभ वरफलदा मातृवद्रक्षिका त्वम ॥११॥

ऐश्वर्येणाभिपूर्णा त्वमसि भगवती सर्वसम्पत्प्रदात्री
रक्षित्री भक्तवृ द सबलनिजभुजैरस्त्रशस्त्रौघपूर्णै ।
लक्ष्मी पद्मालया त्व त्वमसि सुरनुता शारदा वेदमाता
त्व काली रौद्ररूपा जयसि सुररिपून् भीतिहन्त्री त्वमेव ॥१२॥
शत्रूणा सैन्यमुग्र जहि जहि सबले तीव्रकुन्तप्रहारै
र्मुञ्चती बाणवर्षं दल दल त्वरित पातयन्ती त्रिशूलम् ।

त्राहि त्वं मां शरण्ये शरणमुपगतं बालकं तावकीनं
दीनं हीने कृपात्वं कुरु कुरु वरदे देहि पादाब्जदास्यम् ॥१३॥
हैडाखण्डेश्वरी त्वं सकलसुरनुते देवि विश्वार्तिहन्त्री
दीनार्तानां सदा त्वं भवभयहरणे प्रोद्यता मातृशक्तिः ।
त्वं गौरी सर्वदेहे पदकर-अधरे शोणरूपा विभासि
भासा श्रीदन्तपक्तेनखद्दगसुषुमा भास्वरा भासि गौरि ॥१४॥
मातर्दैन्यार्तिहन्त्री हर हर सततं दैन्यदुःखं मदीयं
शत्रूणां मर्दनं त्वं कुरु कुरु रभसं तीव्रशूलप्रहारं ।
दीनं मां रक्ष क्षिप्रं तव चरणनतं बालकं तावकीनम्
लोकेशैर्वन्दितां त्वां सततं जयपरां चण्डिकामाश्रयेऽहम् ॥१५॥

॥ इति श्रीस्रग्धरादेवस्तव ॥ १ ॥

* *

॥ अथ श्रीउपजातिदेवस्तव ॥

भवार्णवे भीतितरंगपूर्णे
मोहान्धतामिस्रसमाकुलोऽहम् ।
मां रक्ष अम्बे, जगदावलम्बे
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि दुर्गे ॥ १ ॥
नाऽन्योस्ति संसारसमुद्रमध्ये
त्राता ऋते त्वां जननी शरण्ये ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि पाहि
त्राहीश्वरी तारय तारयाम्ब ॥ २ ॥
दयामयी त्वं जननी मदीया
अहं त्वदीयोऽस्मि सुतोऽतिदीनः ।
कृपां कुरु त्वं जननी शरण्ये
प्रदेहि भक्तिं वरदे त्वदीयाम् ॥ ३ ॥

प्रसीद राजेश्वरि राष्टवद्ध नि
त्रिलोकसत्राणपरे सुरेश्वरि ।
प्रयच्छ भक्ति निजपादपद्मयो
प्रसीद मातर जगता नमोऽस्तु ते ।। ४ ।।
नमोऽस्तु सर्वेश्वरि शाङ्करी शिवे
जयङ्करी त्व जहि शात्रव बलम् ।
कृपासुधावर्षणि लोकर्वा दते
प्रसीद मातजगता नमोऽस्तुते ।। ५ ।।
अनि द्य सौदयस्वरूपशालिनी
अन तससारसमुद्रतारिणी ।
मुनीन्द्रहृत्पद्म—धगुहाविहारिणी
नमोऽस्तु दुर्गे ! दुरितापहारिणी ।। ६ ।।
आनदरूपा चितिशक्तिदीप्ता
विद्या परा ब्रह्मरसानुभूतिम् ।
कारुण्यपूर्णा गुरुमूर्तिरूपा
देवी नमाम जगदीश्वरी त्वाम् ।। ७ ।।
मा रक्ष नित्य जगदावलम्बे
त्वमेव सत्य जगज्जीवनी मता ।
ससारजन्मज्वररोगवैद्या
माद्या भजे हैडकखण्डवासिनीम् ।। ८ ।।
।। इति श्रीउपजाति देवस्तव ।। २ ।।

* *

।। अथ श्रीअनुष्टुपयोगीन्द्रस्तव ।।

ऊचुर्योगीश्वरा सर्वे, नानोपायनपाणय ।
विनम्रशिरसो देवी, नत्वा भक्तिपुरस्सरा ।। १ ।।
हैडाखण्डेश्वरी पायात सवलोकमहेश्वरी ।
दयामूर्तिधरा नित्य, विश्वसत्राणतत्परा ।। २ ।।

परावाक परमा विद्या, शिवस्य हृदयेश्वरी।
सर्वश्रुतिनुता दिव्या, ऐंकारी मूर्तिरक्षरा ॥ ३ ॥

स्फटिकाच्छप्रभा गौरी, शशितुल्यवरानना।
ईषत्स्मेरमुखी भव्या, अमृतौघप्रवर्षिणी ॥ ४ ॥

पूर्णेन्दुवदनं चारु बिभ्रती सुस्मिताधरम।
आदर्शाच्छकपोलाभ्यां सृजतीमैंदवी प्रभाम् ॥ ५ ॥

शोणशुभ्रमसीवर्णनेत्रपद्मविभूषिता।
भक्तानां हृदयध्वान्तं तापं पापं च निघ्नती ॥ ६ ॥

भास्वरापाङ्गसुभगा, प्रसादसुमुखी शिवा।
नारंगकलिकाचारुबिम्बोष्ठसुविराजिता ॥ ७
राजिता दन्तलेखांशुस्वच्छाधरसुभास्वरा।
सरोजमुकुलाकारचिबुकेन विराजिता ॥ ८ ॥
शरणागतसन्त्राणप्रार्थनाश्रवणातुरे।
श्रोत्रे श्रुतिस्तुतिधरे, राजेते मणिभूषणे ॥ ९ ॥
अम्बिके सततं सिद्धैः संस्तुते परमेश्वरी।
देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे सुखसम्पदं ॥ १० ॥
त्वं पूर्णा परमा विद्या, त्वमाद्या जगदीश्वरी।
त्वं माया शिवदा नित्या, जगत्त्रयहितैषिणी ॥ ११ ॥
पादपद्मं सदा भक्त्या, ध्यायन्ति तव योगिनः।
देहि मे विमलां भक्तिं भवसंतापहारिणीम ॥ १२ ॥
तापत्रयहरी नास्ति, त्वत्समा भुवनत्रये।
देवि त्र्यम्बकपत्नी त्वं, मातस्त्रैलोक्यवन्दिते ॥ १३ ॥
जय सर्वगते दुर्गे कात्यायनि नमोऽस्तु ते।
नमस्ते जगदानन्दकारिणी भवतारिणी ॥ १४ ॥
सर्वसम्पत्प्रदे देवि हैडाखण्डविहारिणी।
रिपूणां दर्पदलिनी, भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ १५ ॥

सर्वव्याधिहरी दुर्गे, सर्वदुर्गतिहारिणी ।
तारिणीतरणिप्रख्ये, तारे दुःखनिवारणी ॥ १६ ॥
दाडिमीपुष्पसंकाशवदनाम्भोजभूषिते ।
शत्रूणां मोहिनी माये, महाविद्ये नमोऽस्तु ते ॥ १७ ॥
पूर्णे दुसुषमापूर्णे सदा पीयूषवर्षिणी ।
पद्मे देहि श्रियं पूर्णां नमस्तुभ्यं सुरेश्वरि ॥ १८ ॥
शिवे शरण्ये भक्तेशी, भव्ये शत्रुभयङ्करी ।
शत्रूणां दर्पदलिनी, जयं देहि रिपुं जहि ॥ १९ ॥
माहेन्द्रि मथ मे शत्रून क्रोधशोणितलोचने ।
पद्मे देहि श्रियं मह्यं, देहि भाग्यं महेश्वरि ॥ २० ॥
शिवे शरण्ये शिवदे, शिवदूती शिवप्रिये
ईश्वरेश्वरि सर्वज्ञ सर्वाध्यक्षे नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥
नमस्ते दक्षतनये गौरी महिषमर्दिनी ।
जय देवि महामाये, महाविद्य नमोऽस्तु ते ॥ २२ ॥
नमः परमहंसानां हृदयाब्जनिवासिनी ।
शब्दब्रह्ममये नित्ये, परमेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥
संसारतापशमनी, ज्ञानज्ञेयस्वरूपिणी ।
नादबिन्दुमये नित्ये, जगत्काये नमोऽस्तु ते ॥ २४ ॥
नमस्ते हैडियाखण्डे शिवस्य हृदयस्थिते ।
सिद्धाश्रमवनोद्देश विहाररसिकेऽम्बिके ॥ २५ ॥
नमस्ते सिद्धसिद्धेशवन्दिताङ्घ्रिसरोरुहे ।
'चरणाश्रित' सर्वस्वे, कृपारूपश्वरेऽनघे ॥ २६ ॥
नमस्त्रैलोक्यसंत्राणतत्परे परमेश्वरि ।
सर्वज्ञे सर्वनिलये, सर्वसाधनसिद्धिदे ॥ २७ ॥
वाञ्छाकल्पलते दिव्ये, कदम्बकुसुमप्रिये ।
मोहिनी त्वं महामाये, माहेश्वरि नमो नमः ॥ २८ ॥

नर्माश्च मयरूपायै, भुवनेश्वर्यै नमो नम ।
ज्ञेयज्ञानस्वरूपायै, सिद्धिदेव्य नता वयम् ॥ ५५॥

नमस्ते सवदेवाना रक्षिके भयमोचनी ।
रक्षो दानवसै याना मर्दिनी रणचण्डिके ॥ ५६ ॥
नमस्ते सीधुपानेन, अरुणायितलोचने ।
निशुम्भमथिनी रौद्रे, महाकाये नमोस्तुते ॥ ५७ ॥
नमस्ते वेदवादेन सस्तुते भयनाशिनी ।
अभीष्टवरदे मात सवसिद्धिप्रदायिनी ॥ ५८ ॥
नम पीताम्बरे देवि, पीताशुकसुशोभिनि ।
पीतपुष्पाङ्गरागश्च, भूषिते सिद्धिदायिनी ॥ ५९ ॥
नमस्ते सवलोकाना, सदा दुगतिनाशिनि ।
त्रिकालदशनि मातर्, नमो कालविनाशिनी ॥ ६० ॥
जय शलेन्द्रसत्पुत्री, नमस्ते ब्रह्मचारिणी ।
नमो दक्षसुते देवि, सती मङ्गलदायिनी ॥ ६१ ॥
पावती परमोदारा, अपर्णा त्वा नता वयम् ।
भवानी जगदम्बे त्व, नमस्ते भवमोचनी ॥ ६२ ॥
नमो वीणाधरे देवि, सुधास्त्रावे नमो नम ।
शब्दब्रह्ममयी मात, श्वेतपुष्पसुशोभिते ॥ ६३ ॥
जय श्वेताम्बरे देवि, जय शुभ्रेऽघहारिणि ।
नम श्रीरामभद्रस्य प्रिये जनकनन्दिनि ॥ ६४ ॥
नमस्ते अवधान ददायिनि मथिलात्मजे ।
ससाराणवमग्नाना, तारिणी भवहारिणी ॥ ६५ ॥
नम श्रीकृष्णचन्द्रस्य, हृदयाब्जनिवासिनि ।
ह्लादिनि चिन्मयि राधे, सच्चिदानन्ददायिनी ॥ ६६ ॥
नमस्ते विश्वजननि, नमस्ते विश्ववासिनि ।
अजरामरे नमस्तुभ्य, अजिता त्वा नता वयम् ॥ ६७ ॥

भयङ्करे नमस्तुभ्य, नमो विश्वमनोहरे ।
घोररूपे नमस्तुभ्य, जय ती पापनाशिनी ॥ ६८ ॥

नमस्ते शबरीमातर्, किरातिनि नमो नम ।
अभ्यन्तरे नमस्तुभ्य, मुद्रे अभयदायिनि ॥ ६९ ॥
अपरे अमले देवि, अमिते त्वा नमो नम ।
नमस्ते शाङ्करी देवी, अमृते प्रतिमे नम ॥ ७० ॥
आकर्षणि नमस्तुभ्य, आवेशिनि नमो नम ।
नमस्ते ओजपुञ्जे त्वा, तीक्ष्णे देविनमो नम ॥ ७१ ॥
नमो ऋद्धिस्वरूपे त्वा, वद्धिरूपे नमो नम ।
ओजस्विनि नमस्तुभ्य, कल्याणिनि नमो नम ॥ ७२ ॥

कस्तूरीतिलके देवि, श्रीकेशवनुते नम ।
कस्तूरीरसलिप्ताङ्गी, कामचारिणि ते नम ॥ ७३ ॥
नमो कीर्तिमती मातर्, नमस्ते कीर्तिमालिनी ।
कामेश्वरी कामरूपे, कामदायिनी ते नम ॥ ७४ ॥

नमस्ते कालिके भद्रे, कुलध्येये नमो नम ।
क्रूरे शूरे च कूटस्थे, शर्वे देवि नता वयम ॥ ७५ ॥
नम कृपामयी मातर, कमनीये कलावती ।
नमस्ते शान्तिसयुक्ते, क्षमे खपरधारिणि ॥ ७६ ॥
दिगम्बरे नमस्तुभ्य, शूलिनी अरिनाशिनी ।
नमो गर्दिनि घोरतमे, तमहारिणी ॥ ७७ ॥

नमश्चक्रधरे देवि, चटुले चारुहासिनी ।
चण्डमुण्डबधे कृष्णे, नमश्चण्डी प्रचण्डिके ॥ ७८ ॥
चतुर्वर्गप्रदे देवि, चन्द्ररुपिणि ते नम ।
नमश्च न्द्राननें सुभ्रु, चन्द्रकान्ते नमो नम ॥ ७९ ॥

नमश्चिन्मयि चित्रे त्वा, चित्स्वरूपे जगद्धिते
नमो विश्वमयी मातर्, जगत्पूज्ये नमो नमः ॥ ८० ॥

जयङ्करी नमस्तुभ्य, नमस्ते जयदे जये ।
उत्पलाक्षी नमस्तुभ्य, मणिभे गरिमे नम ॥ ८१ ॥
च द्रचूडे नमस्तुभ्य चेतने वि व्यवासिनि।
ज्येष्ठे श्रेष्ठे नम प्रे ष्ठे, ज्वाले जागतिके नम ॥ ८२ ॥
करालिनि नमस्तुभ्यमेकवीरे नमो नम ।
नमस्ते दुर्गमालोके, दुर्गे दुर्गतिहारिणी ॥ ८३ ॥
नमस्ते माधवीन दे, भ्रामरी भ्रमरी नम ।
नमस्ते वत्रशमनि, मृगावति नमो नम ॥ ८४ ॥
नमस्ते सगरहिते, शाम्भवी स्फटिकप्रभे ।
दुरत्यये नमस्तुभ्यमात्मरूपिणि ते नम ॥ ८५ ॥
नमस्ते धारणे धात्री, धारिणी धरिणी नम ।
नमस्ते निर्गुणे मातर, निरजनि नमो नम ॥ ८६ ॥
प्रीते पातालनिलये, प्रियदर्शिनि ते नम ।
वायसी त्व बिडाली च, भवहारिणि ते नम ॥ ८७ ॥
नमस्ते मोदनी मातर, मधुमालिनि ते नम ।
भिषकवरे मेरुदण्डे, मणिद्वीपनिवासिनि ॥ ८८ ॥
म मथे च महाभागे, मेदिनी महिमे नम ।
माण्डवि च महादेवि मञ्जुले त्वा नता प्रियम् ॥ ८९ ॥
नमस्ते योगिनी सिद्धवत्सले बालपोषिणि ।
नमो विश्वार्तिहारिणी, विश्ववन्द्ये नमो नम ॥ ९० ॥
नम शाकम्भरि दुर्गे, शताक्षि त्वा नता वयम् ।
नमस्ते शोभने चण्डि, शिवचण्डि नमो नम ॥ ९१ ॥
सच्चिदानदरूपा त्व, लोकपावनि ते नम ।
सर्वाङ्गसु दरि देवि, सिंहिके सत्यवादिनि ॥ ९२ ॥
हरिप्रिये हिमसुते, हरिभक्तिप्रदायिनि।
नमो हरिप्रिये दिव्ये, पद्मे त्वा नता वयम् ॥ ९३ ॥

हिरण्यवर्णे हरिणि, क्लीकारि ते नमो नम ।
ज्योत्स्ने ज्योतिजये नित्ये, विजये, जयशालिनी ॥ ९४ ।
ज्वालिनि ज्वलिनि दुर्गे, ज्वालाङ्गि त्वा नता वयम् ।
नमस्त तापनी देवि, तपनि पापनाशिनि ॥ ९५ ॥
जय त्व ललिते तीव्रे, नमस्त्रिपुरसु दरि ।
दुष्टाना मदनि माये, नमस्ते दीनवत्सले ॥ ९६ ॥
नमो दुराधये देवि, दु खहारिणि ते नम ।
नमोदेवमयी दिव्ये, देवेशि दैत्यनाशिनि ॥ ९७ ॥
नवनीरदघनश्यामे, निरवद्ये नमो नम ।
नम सर्वगुणाधारे, सर्वज्ञे सर्वदर्शिनि ॥ ९८ ॥
नम पद्मप्रिये देवि, पद्मस्थे पद्मसम्भवे ।
सत्यवादित्ररसिके, पञ्चाङ्गि त्वा नत वयम् ॥ ९९ ॥
नमो विश्वजिते पुष्टे, पुण्ये कन्ये नमो नम ।
ब्रह्मस्वरूपे बुद्धिमयि, बले तरुणि वल्लभे ॥ १०० ॥
नमस्ते भुवनान ददायिनी धान्यदोहिनि ।
दीप्ते भीतिहरे चण्डि, नारायणि नमोस्तुते ॥ १०१ ॥
नमो ब्रह्माणी, वाराहि, कुमारी शाङ्करी नम ।
नमो इन्द्राणि कङ्कालि, करालि कालिके नम ॥ १०२ ।
चामुण्डे च महाकालि, ज्वालामुख्यै नमो नम ।
नमो नमो भद्रकालि, कामाख्ये च कपालिनि ॥ १०३ ।
नमस्ते अम्बिके दुर्गे, ललित गौरि ते नम ।
सुमङ्गले नमस्तुभ्य, रोहिणि कपिले नम ॥ १०४ ॥
नम शूलकरे देवि, कुण्डलिनि त्रिपुरे नम ।
कुरुकुल्ले भैरवी भद्रे, चन्द्रावति नमो नम ॥ १०५ ॥
निरञ्जने नारसिंहि, हेमकान्ते नमो नम ।
प्रेतासने च ईशानि, वैश्वानरि नमो नम ॥ १०६ ॥

वैष्णवी यमघटे च, विनायकि नमो नम ।
नम सरस्वति शीले, हरसिद्धिश्च शीतले ।। १०७ ।।

नमस्ते शङ्खिनी चण्डी, पद्मिनि चित्रिणि नम ।
वारुणि वनदेवी च, नारायणि नमो नम ।। १०८ ।।

यमभगिनि च वनदेवि, सूर्यपुत्रि सुशीतले ।
नमस्ते कृष्णावाराहि, रक्ताक्षि च श्रेष्ठिनी ।। १०९ ।
आकाशी कालरात्रि च, जये तुभ्य, नमो नम ।
विजये धूमवति तुभ्य, वागीश्वरि नमो नम ।। ११० ।।
कात्यायनि नमस्तुभ्यमग्निहोत्रि नमो नम ।
महाविद्ये चक्रधरि, ईश्वरि त्वा नता वयम् ।। १११ ।।
सर्वासा स्वामिनी नित्या, हैडाखण्डेश्वरी परा ।
सर्वा कृपामयी भूत्वा, कुर्वन्तु मम मङ्गलम् ।। ११२ ।।
साम्बसदाशिवकुञ्जे विहरन्व दवासिनी ।
प्रीतिप्रसाररसिका, हैडाखण्डेश्वरी पायात् ।। ११३ ।।
त्वदीयनयनान दो, दास श्रीचरणाश्रित ।
सवदा मङ्गल कुर्यात्, वर देहि सुरेश्वरि ।। ११४ ।।

।। इति श्रीयोगीन्द्रस्तव ।।

।। श्री शार्दूलसिद्धेन्द्रस्तव ।।

ॐ सिद्धे न्द्रा सिद्धसङ्कल्पा, सिद्धिकामा सुरषय ।
स्तुवन्ति परमोदारा मानर जगदम्बिकाम ।। १ ।।

।। सिद्धेन्द्रस्तव ।।

हैडाखण्डविहारिसद गुरुकृपामूर्तिस्वरूपेऽनघे
आद्ये त्व वरदायिनि श्रुतिनुते विद्ये परारूपिणि ।
यामि त्वा शरण भवार्तिहरणी सतारिणी मातरम
देहि त्व निजपादपद्मविमला भक्तिं भवध्वसिनीम ।। २ ।।

ज्योतिर्जीवनधारिणी त्रिजगता सोमाद्ध स धारिणी
ससारार्णवतारिणी भवभयश्रेणी समुत्सारिणी ।
धी श्री कीर्ति स्वरूपधारिणी पराविद्यामनोहारिणी
हैडाखण्डविहारिणी विजयते शक्तिश्चिदाकारिणी ।। ३ ।।

नित्य हृद्गुहवासिनी भगवतीमात्मस्वरूपात्मजा
प्राणेभ्योऽपि प्रिया वरेण्यसुषुमापूर्णा परा शाश्वतीम् ।।
बिंदुव्योमसुनादब्रह्मवपुष पीयूषनिस्यंदनी-
मान दामृतवर्षिणी भवभयप्रध्वसिनीमाश्रये ।।४।।

चण्डिस्ते चरणम्बुजे सुरमता चित्त मदीय सदा
आधारासि सदा समस्तजगता त्रैलोक्यस तर्पिणि ।
त्व तारा तरणि प्रभासि वरदे ज्योति परारूपिणी
दुर्गे रक्ष पदार्विवपतित दास त्वदीय शिशुम् ।।५।।

त्व बुद्धिधृतिभ्रातिकीर्तिरमला श्रद्धा स्मृतिरसाधना
त्व मेधाऽथ दया क्षमा भगवती लज्जा तृषा च स्पृहा ।
कान्ति शाति जनेषु शक्तिरमला, विद्या मनोहारिणी
दृष्टिर्वाक् मन इद्रियाणि जननी त्वत्सत्तया भासितम् ।।६।

मातर्मे हृदये तु नास्ति नितरा भक्तिभवध्वसिनि
रक्तिर्नैव च पादपद्मयुगले शक्ति कुतो दर्शने ।
मूढे कर्म निबन्धनेन ग्रसिते मोहान्धभूते जडे
दीने देवि कृपामयी कुरु दयादृष्टे सुधासिञ्चनम् ।।७।।

जीर्णा भाग्यतरी भवाब्धि गहनो कल्लोलमालाकुल
वायुर्वाति भयङ्करोऽति निबिड ध्वान्त समाच्छादितम ।
आवर्तभ्रमिभिर्विजृम्भितमदो मातर्निमग्नोऽप्यहम
तूर्णं स्वामिनि ते कृपामृतदृशा तीर्णो भवेय ध्रुवम् ।।८।।

हृद्यन्तस्तलवासिनी भगवतीमावेदये किं मुखात्
सर्वज्ञा जगदीश्वरी गुणवती जानासि दु ख सुखम् ।
अम्ब ! त्व निजपादपल्लवकृपालम्ब निराशाश्रयम्
सद्यो देहि दयामयी भगवती मा पाहि पाहीश्वरी ।।९।।

दोषश्चे मम चेश्वरी गुणमये चित्त कथ दूषितम्
त्व मे पुण्यपरीक्षिका यदि तदा लोकस्त्वदिच्छावश ।
सख्यातीतअनतपापिनिवहास्त्रातास्त्वयाद्यावधि
मातर्देवि दयामयि मम कृते कुत्रास्ति ते सा दया ।।१०।।

दैन्या नोद्विजते मदीयहृदय भाग्य हि मे तादृशम्
ध्यायन्त्वा सुखमावहामि सतत तद्रूपसमोहित ।
श्रान्तोऽह प्रतिपालयामि सतत नित्य प्रतीक्षाकुलो
मातस्त्वद्वशग प्रिय तव शिशु मा पाहि मा पाहि वा ।।११।।

नित्य भाग्यमतीवदारुणतया साक मया युध्यते
वाञ्छासिद्धिप्रदोऽपि कल्पविटपो मत्सश्रितोऽकप्रभ ।
धीर्विद्या मम निष्फला तदपि वै चिन्ता न मा बाधते
वाञ्छाकल्पलतासि सन्मुखमहो तेनास्म्यह निर्भय ।।१२।।

पद्मे पद्मसमाननेत्ररुचिरे दीक्षस्व दास निजम्
ईक्षस्व क्षणमेव सु दरि दया दृष्टया प्रसाद कुरु ।
त्व मातर्जगता प्रसादसुमुखी सर्वापदानाशिनी
सत्यज्ञानमये ! प्रपन्नवरदे मा त्राहि दीन जनम ।।१३।।

चन्द्रे चन्द्रप्रभा त्वमेव जननी सूर्यप्रभा निर्मला
नक्षत्रेषु चमत्कृति सुविमला त्वद्रूपिणी लक्ष्यते ।
वह्नौ दाहकता जले सरसता भूमौ जगद्धारिणी
शक्तिस्तेऽप्रतिमा विभाति वरदे ! विष्णौ जगत्पालिनी ।।१४।।

सौभाग्य मम नेत्रयोर्नहि तथा यद्दृशन प्राप्नुया—
मम्ब ! त्व हि दयामयि द्रवसि चेत प्राप्तिर्नव दुलभा ।
निस्सारेऽत्रभवे त्वमेव सबला सारा रसाला ध्रुवा
सत्य श्रीजगदीश्वरी भगवती मा पाहि लोकेश्वरी ॥१५॥

त्वत्पादाब्जरति सदा सुखवहा स्वर्गादिक नश्वरम्
त्व मे स्नेहमयी कृपामृतवहा गङ्गा जगत्पावनी ।
दीना दुष्कृतिनश्च जीवनिवहाऽनता त्वया तारिता
त्व तारा जगदीश्वरी भगवती त्रायस्व सन्तारिणी ॥१६॥

बन्धुबन्धुमयापि गूढ सुहृदो मित्राणि स्वीयान्यपि
भ्रातृनभ्रातृगणा सुताश्च पितर पत्नी निज वल्लभम् ।
ये चान्ये बहवो भवेऽत्र विविधा स्नेहानुबन्धा दृढा
ते मार्तवितथास्त्यजन्ति पुरुष सत्य त्वमालम्बनम् ॥१७॥

मातर्पाहि दयामयी भगवती दीन कृपाभिक्षुक
भ्रान्त कमवने विमुग्धहृदय मायामरीचेवशम् ।
चिताज्वालमहर्निश दहति मा त्व सुस्थिरा वीक्ष्यसे
दीने साधनहीनतावककृपाधीने दयामावह ॥१८॥

त्व नाथासि यदा तदा तव सुतो लोकेष्वनाथ कथम्
त्व शक्ति सबला यदा शिरसि मे दास कथ दुबल ।
त्व दात्री सुखसम्पदा सुवरदा दय तदा मे कुत
त्वा साक्षात्कमला प्रसादसुमुखी सर्वाश्रयामाश्रये ॥१९॥

नाह ते स्तवन करोति हृदये सेवे, गुणे, न स्मरे,
पादाब्ज तव योगिध्यानविषय चक्षु कथ पश्यतु ।
पाता पातकिनो भवाब्धिगहने यस्त्व स्मृता एकदा
मा मा विस्मर हे त्रिलोकजननी शीघ्र प्रसन्ना भव ॥२०॥

येषा व रसना न ते जपपरा ध्याने स्थिर नो मन
कर्णौ चव न ते कथारससुधामाधुर्यसराधकौ।
चेतस्ते चरणारवि दनखभासराधने न स्थिरम
तेषा श्रीचरणाश्रिताश्रयपदे भक्तिमनोज्ञा कुत ॥२१॥

देहि त्व शुभदर्शन नयनयोरानन्दतृप्तिप्रद
ससारेऽद्यविलीनखिन्नहृदय धैर्याद् विहीन शिशुम।
मार्ग ते गहने वनेऽतिनिबिड नाहृ विजाने यत
त्व मे पथनिर्दशिका भव कृपाधीनस्य मातेश्वरि ॥२२॥

ज्योतिस्त्व जगजीवनी भगवती मद्य कृपाकारिणी
त्वा ध्याय ति निरतर सहृदयाश्चिद्रूपिणी मानसे।
सद्यस्त्व कुरुषे कृपामयि कृपा वृष्टि सुधास्यन्दिनीम्
कस्मात्व कुरुषे विलम्बमधुना राजेश्वरी पाहि माम ॥२३॥

चिंता मुञ्च मदीय चित्त ! हृदये चिंतस्व ता मातरम्
सा सवत्र वने तथैव भवने पृष्ठे पुरोन्तबहि।
तस्या नामरसायन पिब सखे सा सवतृप्तिप्रदा
नान्योऽस्तीह दयासु पूर्णहृदयो जानाति यो वेदनाम् ॥२४॥

दीनानुद्धरिणी भवाब्धितरणी सन्तारिणी ते दया
यामाश्रित्य सदैव शलतनये पारगत पापिन।
तस्यालम्बनमद्य देहि वरदे दानीश्वरी त्व मता
त्यक्त्वा त्वा वद क प्रयामि शरण काऽ या दयारूपिणी ॥२५॥

आधारां जगता चराचरमयी लोकेश्वरैर्वदिताम्
त्वा ध्याय ति मुनीश्वरा स्वहृदये ध्येयाध्रिपद्मा पराम।
मातस्ते चरणारविन्द्रसदृश नान्य ममालम्बनम्
तत्प्राप्तिर्यदि मे भविष्यति तदा नाऽन्यस्य चित्ते स्पृहा ॥२६॥

राज्ञी त्व कुरुषे दयापरवश मातर्निज मानसम्
लोकेषु प्रथिता दयामयि जगत्सतारिणी ते दया
यस्यालम्बमवाप्य पापनिरतास्तीर्णा महापापिन ।
मह्य देहि तदबपादयुगलालम्ब निराशाश्रयम ॥२७॥

ध्यात्वा दीपशिखा तमिस्रहरणी त्वा हारिणीं सुप्रभाम्
अन्धेऽस्मिन्भववीथिसकुलपथि ज्योति परा वीक्ष्यते ।
सन्तप्त क्वथित विलोक्य भुवने कारुण्यकादम्बिनी
भूत्वा त्व कुरुषे कृपामयि कृपावर्षा परान ददाम् ॥२८॥

त्व मातर्जगतारिणी भवभयश्रेणी समुत्मारिणी
दीनानाथसुतारिणी भवनदीसन्तारिणी सवदा ।
हैडाखण्डविहारिसद्गुरुकृपा चिच्छक्तिराह्लादिनी
भक्तानुग्रहकारिणीभवतु मे तुष्टा मनोहारिणी ॥२९॥

लोके द्यैरभिवन्दिताङ्घ्रिकमला या श्री स्वय शारदा
भक्ताऽनुग्रहणाय तापसगणान् सभाजयती व्रजे ।
दातु वै तपसा फल सुमधुर दिव्यैर्निजदर्शन
हैडाखण्डविहारिसदगुरु कृपा सतारयती मुनीन् ॥३०॥

भक्तानुग्रहणव्रत तव सदा जागर्ति मातर हृदि
दास मा कुरु तावक भवतृषाक्रा त भवे भूरिश ।
ध य पूज्यतम स एव जगता श्रेयस्कर सवदा
श्रीमत्ते चरणारविन्दयुगुले यस्यास्तिभक्तिदृढा ॥३१॥

हैमाम्भोरुहकर्णिका विहरिणी त्व श्री रमा निर्मला
त्व लोकेश्वरवन्दिताङ्घ्रिकमला साक्षात्स्वय शारदा ।
आद्या त्व जगदीश्वरी श्रुतिनुता माया मनोहारिणी
त्यक्त्वा ते चरणारविंदशरण क मृत्युग्रास भजे ॥३२॥

नाना भोगगणानन तविभवान् भुक्त्वा भवे भूरिश
तृप्तिं नैव गतोऽस्मि देवि हृदये भूयस्तृषापीडित ।
ध्यात्वा ते चरणाम्बुज स्वहृदये सतृप्तिदानेक्षमम
मातस्ते शरणगतोऽस्मि वरदे ! सर्वेश्वरी पाहि माम ॥३३॥

प्रभ्वी त्व शिरसि स्थिता तदपि किं सेवेऽवमान क्षितौ
चित्त मे तृषित कपामृतकण त्व त्तोऽनिश याचते ।
भूत्वा स्वाति समुत्थवारिदघटा आनद सिंधूद्भवा
त्व मात करुणाकण वितर मे स तृप्तिदाने क्षमम् ॥३४॥

लक्ष्मी त्व सदया कपामतवहा दानीश्वरी दैयहा
याताऽयाचकता सुरास्तवपुर सयाच्य भिक्षा सकत् ।
त्व नित्य द्रवसे दयापरवशा दीने दयाकारिणि
मातर्देवि दयामयी कुरु कृपावृष्टिं सुधास्यंदनीम् ॥३५॥

त्यक्त्वा गौरव गध-अ ध-बधिरान् दीने दया तावकी
कारुण्य तव विश्रुत त्रिभुवने राजेश्वरी सवत ।
ये ते द्रोहरताऽपि पापिनिवहा सर्वे त्वया सत्कता
दीने हीनजने कपावती कपावृत्ति कथ विस्मृता ॥३६॥

रत्नानीव महार्णवस्य गणितु स्वप्नेऽपि नो पारयेत
सूयस्य प्रतिमा कदापि सुकविर्नैव क्षमो वर्णितुम् ।
इत्थ ते गुणगौरवावि तयशोगाथा परान दद।
शक्त कोऽत्रभवे त्रिलोकजननी सर्वात्मना वर्णितुम् ॥३७॥

ता त्व चिन्तय निभय स्वहृदये सर्वापदा शामिनीम्
चैतन्यामृतचद्रकातिविषदछाया सुधास्यन्दिनीम् ।
कारुण्यानिजभक्तवत्सलतया दृग्गोचरा स्वामिनी—
मानन्दामृतवाहिनीमघहरा गङ्गा जगत्पावनीम् ॥३८॥

हैडाखण्डविहारिसद्गुरुकपाधार महेन्द्र प्रभु
शिष्य सदगुरुशङ्करस्य दयित भक्तेष्टसिद्धिप्रदम ।
श्रीचरणाश्रयमाश्रित मम गुरू मानमनाग् बोधय
वाणीवास्य कपाकटाक्षवशगा लक्ष्मी स्वय मा भजेत् ।।३९।।

आकर्ण्य विनय माता, प्रत्यक्षा चारुहासिनी ।
सिंहपीठस्थिता देवी, उवाच वचन शिवा ।।४०।।

प्रसन्नाऽहं सुरगणा योगीशा सिद्धपुङ्गवा
अभीष्टसिद्धिदा दुर्गा युष्माक वाञ्छितप्रदा ।।४१।।

अहं दानीश्वरी देवा प्रसन्ना व पुर स्थिता ।
पूरयिष्ये क्षणादेव, यद्भवता मनसीप्सितम् ।।४२।।

हैडाखण्डेश्वरीस्तोत्र सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
अस्य श्रवणामात्रेण, सवदा वशवर्त्तिनी ।।४३।।

पराऽहं योगिना शक्तिर्हैडाखण्डविहारिणी ।
परमेष्ठी गुणर्विद्यासर्वैश्वर्यसमन्विता ।।४४।।

हैडाखण्डेश्वरी दुर्गा, योगिगम्या सुदुर्लभा ।
"श्रीचरणाश्रितस्थव" तपसा सुलभाऽभवत् ।।४५।।

अहं शक्ति परा लोके, सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ।
आशुतोषा महाविद्या, परमेष्ठी गुरोर्दया ।।४६।।

आश्रिताश्रययोरैक्य, ज्ञात्वा ये भक्तिपूर्वकम् ।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यस्तेषा सर्ववरप्रदा ।।४७।।

मत सर्व नर क्षिप्र, प्राप्नोति हृदयस्थितम ।
श्रीसद्गुरुकपाधीन, रहस्य मे सुदुर्लभम् ।।४८।।

पुत्रान् यश श्रिय विद्या, धरा धान्य कुलोन्नतिम् ।
प्रसादसुमुखी सद्यो, वितरामि न सशय ।।४९।।

ॐ

अष्टम् पुष्प—श्री सद्गुरुवन्दना

॥ ॐ ॥

॥ श्री सद्गुरवे नमः ॥

— * —

॥ हृद्यम्बुजे कर्णिकमध्यसस्थम्
सिंहासने सस्थितदिव्यमूर्तिम ।
ध्यायेगुद्रु चण्डकला प्रकाशम्
सच्चित्सुखमिष्टफलप्रदानम ॥१॥

नित्य शुद्ध निराभास
निराकार निरञ्जनम
नित्यबोध चिदानन्द
गुरु ब्रह्म नमाम्यहम ॥२॥

न गुरोरधिक नगुरोरधिकम्
न गुरोरधिकम् न गुरोरधिकम ॥
शिव शासनत शिव शासनत
शिव शासनत शिव शासनत ॥
इदमेव शिव इदमेव शिव
इदमेव शिव इदमेव शिवम
मम शासनतो मम शासनतो
मम शासनतो मम शासनतः

॥ ॐ ॥

समर्पणम्

श्री सिद्धसिद्धेश्वर, सव श्री समलकृत,
सदगुरु, श्रीमद्योगाचाय,
श्रीमन महामुनीद्राणम
श्री चरणारविदयो
मिलिदायता
॥ सुमनस्तवकमिदम् ॥

॥ श्रीम मुनीद्र अमितप्रभ योगिराजन् !
ज्ञानाब्ज भास्कर मह महनीय कीर्ते !।
त्वत्प्रेरणा स्फुरित हीरक रत्न भास्वरा
त्वत्कीर्ति हार लतिका त्वयि अपयामि ॥

हे मुनीश्वर योगिराजन !
अमित है तेरी प्रभा,
ज्ञानाब्ज सूरज ! तू चमकता,
भक्त उर मे सवदा ॥

तेरी कृपा से प्राप्त हीरक
रत्न मोती से गुथी,
तव गुणो की हार लतिका
तेरे चरणो मे चढ़ो ॥

॥ ॐ ॥

१

परम ब्रह्म सशुद्ध
सच्चिदानन्द विग्रहम् ।
मानस तामस दीव्यात
कुर्ता टोपी धर मह ॥

२

मोहध्वान्त समाच्छन्न
रागादि ग्राह दुस्तरे ।
ससाराणव मग्नस्य
एकमेवावलम्बनम ॥

३

सत्योद्भव सत्यरत
सत्ये लीन सदाश्रयम ।
सत्यमागप्रणतार
ध्रुव सत्य नतोऽस्म्यहम् ॥

॥ ॐ ॥

१

परम ब्रह्म का शुद्ध रूप
सत् चित अरु आनन्द स्वरूप ।
हरता मन का तम अशेष—
वह कुर्ता टोपी शान्त वेष ॥

२

मोहान्धकार से समाच्छन्न
षड्रिपुदल से है पूण खिन्न ।
भव वारिधि मे मग्न नरो का
आश्रय केवल चरण चिह्न ॥

३

सत्य से उद्भूत तेरा—
रूप सत मे रत सदा।
सत्य मे तल्लीन रहता
सत्पुरुष आश्रय महा।।

४

नाना मत समुदभ्रान्त
जीव ज्योतिप्रदायकम।
मार्तण्डमण्डलाकार
भास्वर शान्तिदायकम।।

५

शिव रूप शिवरत
शिव सकल्प साधकम्।
शिवा शक्ति सुसदीप्त
शशिमण्डल मण्डितम्।।

६

ज्ञानदाब्धि समुदभूत
चिदानदकरूपिणम्।
आनन्द सम्प्लवे मग्न
ज्ञान दे दु नतोऽस्म्यहम।।

४

सम्प्रदायवाद मे भ्रान्त हुए
जीवो को ज्योति विधायक हो।
सूय मण्डलाकार चमकते
भास्वर शान्ति प्रदायक हो।।

५

शकर रूप धरे शिव मे रत
शिव सकल्प विधायक हो।

शिवा शक्ति से दीप्यमान
शशिमण्डित ससृति नायक हो ॥

६

आन दम्रब्धि से समुदभूत
चैतन्यान द सत्स्वरूप ।
म्रान दसि धु मे तव विराम
आन द-च द्र तुमको प्रणाम ॥

७

माया यवनिकाच्छ न
भक्त नेत्र षु । म्रञ्जनम
गञ्जन भव बीजाना
महे द्र मनरञ्जनम् ॥

८

तत्वज्ञान रत तत्वम्
तत्व ब्रह्म स्वरूपिणम
तत्वज्ञान प्रदातार
तत्वात्मक कलेवरम् ॥

९

तत्व कल्पलता पुष्प
महे द्र भृङ्गसेवितम
मानसे रमता नित्यम्
ससराऽमय भेषजम् ॥

७

म्रज्ञानावरण समाच्छन्न
भक्त नेत्र के अञ्जन हो ।
गञ्जक विपति वरूथों के
मन महे द्र के रञ्जक हो ॥

८

नत्वज्ञान में निरत सदा
तत्व रूप तुम तत्व ब्रह्म।
तत्वज्ञान के दायक प्रभुवर!
तत्वातीत कलेवर शुभ्र ॥

९

तत्ववेल के सुदर सुपुष्प
महेद्र भङ्ग से भूषित हो।
मन मे नित्य समा जाओ
ससार रोग के भेषज हो ॥

१०

महेद्र हृदयाब्जे त्व
वस आचद्र तारकम
तत्र ते मोहिनी मूर्ति
हष्टवा लोक प्रसीदताम् ॥

११

स्तव राज मिम पुण्य
पठन्ति श्रद्धयान्विता
श्री गुरो कृपया तेषा
करस्था सर्व सिद्धय ॥

इस महेन्द्र के हृदय कमल मे
बसो चद्र तारक अवधी।
वहाँ तुम्हारी मधुर मूर्ति को
देख मकें सब विमल मती ॥

स्तव राज परम पवित्र का
जो पाठ श्रद्धायुत करे।
श्री दिव्य गुरु की सत्कृपा से
सब सिद्धी कर बसे ॥

शभम्

बन्दौं गुरुपद कज, कृपासिन्धु नर रूपहरि ॥
महा मोह तम पुज, जासु वचन रविकर निकर ॥१॥

गुरु के चरण कमल को नमस्कार करता हूँ जो दया के समुद्र हैं और मनुष्य रूप धारण किये साक्षात विष्णु भगवान् हैं। अधिक अज्ञान रूपी अन्धकार के ढेर को जिन गुरुजी महाराज के वचन सूय की किरणो का समूह है।

बन्दौं गुरुपद पद्म परागा, सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।
अमिय मूरिमय चूरण चारू, शमन सकल भवरुज परिवारू ॥२॥

गुरु के चरण कमलो की धूलि की वन्दना करता हूँ, उस रज मे जो सत्त्वगुण की सुन्दर रुचि है, वही सुगन्धि है, और प्रीति ही सुन्दर रस है, उन चरणो मे शिष्य की जो रुचि है वही कमल का मकरन्द है। गुरु के चरण कमल की रज सुन्दर चूरण है, अमृत की जड उसका नाम है। ससार के जन्म मरणादि रोगो को शान्त कर देती है।

सुकृत शम्भुतन विमल विभूती, मजुल मगल मोद प्रसूती।
जन मन मजु मुकुर मलहरणी, किये तिलक गुणगण बशकरणी ॥३॥

वही रज पुण्य रूप शिवजी के शरीर की उज्ज्वल विभूति के समान है। निमल मगल और आनन्द को पैदा करने वाली है। वही रज श्रेष्ठ पुरुषो के उज्ज्वल दपणरूपी मन पर आये हुए मैल को हरने वाली है। और तिलक किये जाने पर गुणो के समूहो को वश मे करने वाली है।

श्री गुरु पद नख मणिगण ज्योति, सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू, बडे भाग्य उर आवहिं जासू ॥४॥

श्री गुरु के चरणो के नखो की मणियो के समूह के समान ज्योति है, जिस ज्योति के स्मरण करते ही हृदय मे दिव्य दृष्टि हो जाती है। उसका प्रकाश मोहरूपी अन्धकार को दूर करता है, जिसके हृदय मे आवे उसके बडे भाग्य हैं।

उघरहि विमल विमोचन ही के, मिटहि दोष दुख भव रजनी के ।
सूझहिं रामचरित मणि माणिक,गुप्त प्रकट जहँ जोजेहि खानिक ।।

और हृदय मे आते ही हृदय के विमल नेत्र खुल जाते है, और ससार रूपी रात्रि के ज म मरणादि दुख मिट जाते है। जब प्रकाश होता है तब ढकी धरी सब वस्तुएँ दृष्टिगोचर हो जाती है। यह प्रकाश हृदय मे होते ही श्री रामच द्रजी के जो मणि और माणिक रूप गुप्त तथा प्रकट चरित्र है वे सब दीखने लगते हैं।

यथा सुअजन आंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहि शल बन, भूतल भूरि निधान ।।

जिस प्रकार सिद्धता का सु दर अजन नेत्रो मे लगाकर सुजान साधक सिद्ध हो जाते हैं, उससे पहाड, जगल, पृथ्वी मे जो बहुत से कौतुक के पात्र है सो इनमे कौतुक देखते है। इसी प्रकार इस गुरुपद अजन को नेत्रो मे लगाकर सुजान साधक सिद्ध हो जाते हैं, और पवत, वन, पृथ्वी इन सब मे वे कौतुक देखते हैं, यह सब उ हे खेल सा दृष्टि आता है।

गुरुपद रज मृदु मजुल अजन, नयन अमिय दृगदोष विभजन ।
तेहि करि विमल विवेक विलोचन, वरणौं रामचरित भवमोचन ।।

गुरु के चरण कमल की रज सु दर कोमल अजन है, नेत्रो को अमृत रूप है, और उसका गुण यह है कि नेत्रो के रोगो को नाश करता है। उस अजन को लगाकर अपने नेत्रो को उज्ज्वल करके राम चरित्र को वणन करता हूँ जिससे सासारिक भय दूर होते हैं।

महात्मा तुलसीदास

नवम्‌पुष्प —आशावाद







श्री हैडाखान धाम

'धय धय यह तीथ हमारा
जहा सचल शिव करत विहारा'



श्री कैलाश शिखरकी शोभा ।
देखत ही मन उपजत लोभा ॥



हैड़ाखान विचित्र है धामा ।
पावन अमित सुखद विश्रामा ॥



श्री सूर्यदेवी



ते हि गिरितल एक रम्य गुहा है
श्रुति प्रतिपाद्य गुहा ही महा है।

॥ ॐ श्रीसदगुरवे नम ॥

भगवान् श्री हैड़ियाखण्ड विहारी का शुभाशीर्वाद

कैलासशिखरे रम्ये, नानारत्नोपशोभिते ।
नाना द्रुमलताकीर्णे-नानापक्षिरवयु ते ॥१॥

एक समय कैलाश पवत के सु दर शिखर पर जो सदा नाना प्रकार के रत्नो से सुशोभित रहता है, जिस पर अनेक प्रकार की लता और वृक्ष फले रहते हैं, तथा जिसके ऊपर अनेक प्रकार के पक्षियो का सु दर शब्द गूजता रहता है ।

मत्त कोकिल स दोह, सघुष्ट वियदन्तरे
सवदा स्वगण साद्ध , ऋतुराज निषेविते ॥२॥

जहाँ वाटिकाओ मे झुण्ड की झुण्ड मदोन्मत्त कोयल बोलती रहती हैं, अपने अनुचरो को साथ लिये ऋतुराज वस त ऋतु सवदा जिस पवत की सेवा किया करता है ।

सदाशिव सदानन्द-करुणामृत सागरम ।
कपू रकुन्दधवल, शुद्ध सत्त्वमय विभुम ॥३॥

उस परम रमणीय कैलास पर कल्याण करने वाले सवदा आन दमय, करुणारूपी अमृत समुद्र, पवित्र और शुद्ध स्वरूप, कपू र और कुन्द पुष्प के समान उज्वल वण के सुन्दर शरीर वाले ॥३॥

प्रसन्नवदन वीक्ष्य लोकाना हित काम्यया ।
विनयेन समायुक्तो महे द्र शिवमब्रवीत् ॥४॥

श्री शिवजी को प्रसन्न मुख अर्थात हर्षित बठे देखकर ससार के हित की कामना से महे द्र ने पूछा ॥४॥

श्री महेन्द्र उवाच

श्री महेन्द्र ने पूछा

नमस्ते देवदेवेश, सदाशिव जगद्गुरो !
मन्त्रविद्याक्षणसिद्धि कथयस्व मम प्रभो ! ॥५॥

हे जगद्गुरु सम्पूर्ण देव वृन्द के अधीश्वर, सर्वदा कल्याण करने वाले श्री सदाशिव देव मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो? क्षणमात्र मे सिद्धि प्रदान करने वाली जो परम गुप्त मन्त्र विद्या है उसको आप वर्णन करने की कृपा कीजिये।

कलिनाऽधममित्रेण ग्रसिता मानवा भुवि।
विचरन्ति महापापा, मन्दभाग्या ह्युपद्रुता ॥६॥

हे प्रभो! अधम के मित्र इस भयकर कलिकाल ने प्राणियो के मन को ग्रस रक्खा है, सब जीव युग के प्रभाव से महान् पाप का आचरण करते हुये मन्द भाग्य से दुखी और नाना प्रकार के उपद्रवो से पीडित है।

जपध्यान क्रियाशून्या सत्सगविमुखा खला।
दारिद्रयदैन्ययुक्ताश्च, दाम्भिका पापचारिण ॥७॥

इस भयकर समय मे प्राय सब मनुष्य जप, ध्यान और कर्म-काण्ड शून्य हो गये है, तथा सत्सग से विमुख और परम दुष्ट प्रकृति के दिखाई दे रहे है, इस कारण दरिद्रता और दीनता से दुखी दम्भ पाखण्ड मे परायण होकर पापो का आचरण कर रहे है ॥७॥

नानाक्लेशसमाविष्टा दुखसत्रस्त मानसा।
तेषा सरक्षणोपाय ब्रूहि लोकेश शकर! ॥८॥

भगवद्भक्ति से विमुख होने के कारण ये कलिमल ग्रसित जीव अनेक क्लेशो से सत्रस्त, और अनेक दुखो से भयभीत हैं। हे लोकेश्वर देवाधिदेव आप कृपाकर के उनकी रक्षा के उपाय का वर्णन कीजिये ॥८॥

त्व शिव शकर साक्षात देव देव जगदगुरो ।
अनाथनाथ भूतेश ब्रूहि साधनमुत्तमम ॥६॥

हे जगदगुरो देव देव आप साक्षात शिव शकर है, हे अनाथ नाथ भूत भावन परमोत्तम साधन का वणन करने की कृपा कीजिये ।

येनोपायेन सर्वेषा भुक्ति मुक्ति करेस्थिता ।
स्वल्पायासेन जीवाना कथ सिद्धिभवेविह ॥१०॥

जिस साधन से सब प्राणियो को सासारिक भोग और मोक्ष करतलामलक के समान हस्तगत हो जावे, और थोडे ही परिश्रम से जीवो को किस प्रकार ससार मे सिद्धि प्राप्त हो वह उपाय बतलाने की कृपा कीजिये ।

एतेषा दु खदौर्भाग्य दष्ट्वा चित्त विद्रूयते ।
तस्मात्त्व करुणामूर्ते, दया कुरु जगद गुरो ॥११॥

हे देव ? इन जीवो के दु ख और दुर्भाग्य को देखकर मेरा चित्त दुखी हो रहा है। इस हेतु हे करुणामूर्ति गुरुदेव आप इन पर दया करने की अनुकम्पा कीजिये ।

श्री सदाशिव-उवाच

वत्स महेन्द्र ! प्रसन्नोऽस्मि, विश्वकल्याणयाचक !
त्वत्सम समदृकशा त, लोकमगलतत्पर ॥११॥

श्री भगवान् शिव ने आज्ञा प्रदान की कि हे परमप्रिय वत्स महे द्र, तुम विश्व के जीवो के लिये कल्याण की याचना करते हो इस हेतु मैं तुम पर परम प्रस न हूँ, हे पुत्र तुम्हारे समान् समदृष्टि, शा त स्वभाव तथा ससार के मगल मे परायण अ य कोई है ही नही ॥

जीवाना तापतप्ताना त्वमेक क्षेमचि तक ।
नास्तिकोऽपि त्रिलोकेषु सव जीव दयापर ॥१२॥

हे शिष्य रत्न ! त्रिताप से सन्तप्त जीवो के आप ही एक

मात्र कल्याण के इच्छुक हो, तुम्हारे समान सब जीवो पर दयापरायण त्रिलोकी मे कोई है ही नहीं ॥१२॥

कथयामि रहस्य ते देवानामपि दुलभम् ।
कलि दावानले नाद्य तप्ताना शान्तिहेतवे ॥१३॥

हे प्रिय! कलियुग रूपी भयकर दावाग्नि से स तप्त जीवा की शान्ति के लिये परम रहस्यमय सु दर उपाय जो देवव द को भी दुष्प्राप्य है मैं तुम्हे प्रकट करता हु ॥१३॥

सर्वे तन्त्राश्च मन्त्राश्च निस्सारा शाप जजरा ।
तेषामुज्जीवन कृत्वा जीवान्तारय सुव्रत ॥१४॥

हे सुव्रत ! सु दर व्रत को धारण करने वाले ब्रह्मचारी इस घोर कलिकाल के प्रभाव से ससार के सम्पूण तन्त्र और म त्र सार हीन और मेरे शाप से जीण शीण हो गये हैं। उन मन्त्रो को तुम मेरे द्वारा प्रदत्त शक्ति से पुन जीवित (चत य) करके उनके प्रभाव से इन जीवो को ससार समुद्र से पार उतारो ॥१४॥

गुरुतत्वप्रकाश च, दिव्यसाहित्यकल्पनाम ।
सृजमन्त्रविधान च, नव शक्तिसमन्वितम ॥१५॥

तुम मदगुरु तत्व का प्रकाश करते हुए नवीन तम लोकोत्तर दिव्य साहित्य सृजन करो, तथा नवीन शक्ति समन्वित अपार शक्ति सम्प न नवीन म त्रो की मेरी आज्ञा से सृष्टि करो ॥१५॥

दिव्य कथामृत मेऽद्य निर्माय विधिपूवकम ।
गदातव्य त्वया वत्स ! लोकमगल हेतवे ॥१६॥

हे वत्स ! तुम विश्व के कल्याण के लिये विधि पूवक मेरी परम दिव्य कथा रूपी अमत का निर्माण करो और ससार के मगल के लिये उस अमत तत्व का दान करो जिस से सतप्त जीवो को ऐहिक और पारलौकिक परम आन द की प्राप्ति होगी ॥१६॥

पाठमात्रेण सर्वेषां परा सिद्धिर्भविष्यति ।
सुख शान्ति श्रिय विद्या कीर्ति विन्दन्ति मानवा ॥१७॥

इस दिव्य ग्रन्थ के केवल पाठ करने मात्र से जीवो को परम सिद्धि प्राप्त होगी। और वे सुख, शांति, लक्ष्मी तथा सरस्वती की कृपा, यश सब कुछ इह लौकिक और पारलौकिक तत्वो को अनायास ही प्राप्त करने में समथ होगे।

सदाशिवस्य चरित मनोज्ञममृतोपमम ।
निर्मापय स्वशक्त्या त्व सर्वसिद्धिमद परम ॥१८॥

हे महेन्द्र ! तुम अपनी शक्ति प्रदान करके मेरी आज्ञा से परम सुन्दर अमृत के समान विश्व कल्याणकारी सपूण सिद्धियो के भण्डार श्री सदाशिव चरितामत का निर्माण कराओ ॥१८॥

रामकृष्णशिवादीनां चरित्र परमाद्भुतम
गुरुतत्त्वान्वित दिव्य सर्वैश्वयसमन्वितम ॥१९॥

जिस श्री सदाशिव चरितामृत मे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण के चरित्र से युक्त गुह्याति-गुह्य परम अद्भुत शिव तत्व का वणन श्री सद्गुरु भगवान् श्री हैडाखान विहारी के चरित्र से समन्वित होने से जिसका पाठ प्राणियो को भूमा ऐश्वय प्रदान करेगा।

लभन्ते मानवा नित्य धनधान्यादिसम्पद
श्रीसदगुरुकृपां दिव्यां सर्वैश्वयप्रदायिनीम ॥२०॥

इस विराट वैभव सपन्न ग्रन्थ का पाठ करने मात्र से मनुष्यो को नित्य नवीन धन धान्यादि सम्पत्तियां अनायास प्राप्त होगी, तथा श्री सद्गुरुदेव की परम दिव्य अहैतु की कृपा जो सम्पूण आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ऐश्वय प्रदान करने वालो ही अनायास ही प्राप्त होगी ॥२०॥

मदीयस्तवकुसुमानामञ्जलिं सुमनोहराम ।
भक्ताभीष्टप्रदा दिव्या सवसौभाग्यदायिनीम ॥२१॥

इसके अतिरिक्त, मेरी स्तुति रूपी पुष्पो की सुन्दर पुष्पाञ्जलि अर्थात् **श्रीसदगुरु स्तुति कुसुमाञ्जलि** नामक परममनोहर ग्रथ निर्माण कराओ, जो ग्रन्थ मेरी वाङमय श्री मूर्ति है तथा मेरे भक्तो को मनवाछित फल देने वाला है तथा परम दिव्य है, जिसके पाठ करने मात्र से सपूण सौभाग्य स्वय प्राप्त हो जाते है।

कारयस्व महाभाग ! येन सिद्धि करेस्थिता
पुण्यस्मृति पुण्यतमा स्तुति सर्वाथ सिद्धिदाम ।।२२।।

हे महाभाग्य शालिन महेन्द्र ! परम पुण्यो की भण्डार मेरी **पुण्य स्मृति** को जो सपूण मनोवाछित सिद्धि प्रदान करने वाली है उसे लोक मगल के लिये प्रकट करो।

मन्त्रग्रामात्मका ह्येते ग्रथा शीघ्रफलप्रदा
आशीर्वादात्मक दिव्य साहित्य लोकतारकम ।।२३।।
ममनामजपेनव सर्वसिद्धिर्भविष्यति ।।

परम चैतन्य मन्त्र स्वरूप ये दिव्य ग्रन्थ इस कलिकाल में तुरन्त फल प्रदान करने वाले होंगे। यह आशीर्वादात्मक दिव्य साहित्य ही इस परम दुस्तर भवसागर से जीवो को पार उतारेगा। तथा केवल मेरे ॐ हैडियाखण्डी नाम का जप ही सम्पूण सिद्धियाँ प्रदान करेगा।

गुहाविहारिणी दिव्या शक्तिमम महेश्वरी।
ता ध्यात्वा सगुणा माया सवैश्चयमवान्पुयात ।।२४।।

श्री हैडाखान गुफा मे विहार करने वाली परम दिव्य महा महेश्वरी श्री हैडियाखण्डेश्वरी मेरी परात्परतम शक्ति है, उस सगुण माया का ध्यान और स्तवन करने मात्र से प्राणियो के तुरन्त सम्पूण ऐश्वय और अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होगी।

सवव्याधिहरीम् दुर्गा सव सौभाग्यदायिनीम
भुक्ति मुक्ति विरक्ति च सिद्धि विन्दन्ति तत्क्षणात ।।२५।।

श्री हैडियाखण्डेश्वरी परात्परा दुर्गा की कृपा से शारीरिक मानमिक आदि सब व्याधिया तुर न नष्ट होती हैं, और सब सौभाग्यो की प्राप्ति होती है। तथा ससार के प्राणी भोग मोक्ष और वराग्य प्राप्त करते हैं और सब सिद्धिया क्षणमात्र मे मिल जाती हैं ॥

केवल सिद्धग्र थानापठन सवकामदम
पुनरावृत्तिमात्रेण पुरश्चरणसिद्धिदम ॥२६॥

इस प्रकार के आशीर्वादात्मक सिद्ध ग्र थो का पाठ सम्पूण कामनाओ की पूर्ति करता है। इन की पुनरावत्ति करने मात्र से पुरश्चरण की सिद्धि प्राप्त होती है।

एते ते सिद्धिदा ग्रन्था कल्पवक्षोपमा क्षितौ।
तेषा दशन मात्रेण शतयज्ञफल लभेत् ॥२७॥

हे श्री चरणाश्रित ? ये तुम्हारे आशीर्वादात्मक ग्र थ पृथ्वी पर कल्प वक्ष के समान सुखदायी और अभीष्ट दाता है, इन का दश न करने मात्रा से सकडो यज्ञो का फल प्राप्त होता है।

पचाक्षर महाम त्र जाप्य ध्येय दिने दिने।
स्तोत्रय त्रविधान च स्मृत्वा सिद्धिमवा प्नुयात ॥२८॥

मेरे पचाक्षर महाम त्र का जप और ध्यान प्रतिदिन नियमित रूप से करना चाहिये। तथा अन्य सूक्त और य त्रो का विधान स्मरण करने मात्र से सब सिद्धिया प्रदान करता है।

विनाश्रमेण सिद्धयन्ति यथदिच्छन्ति मानवा ।
म त्रोपनिषद दिव्या सवतापार्तिहारिणीम् ॥२९॥
रचयस्व महाभाग, वेदतत्त्वसमान्विताम ॥

बिना परिश्रम के ही इस दिव्य म त्रोपनिषद का अनुशीलन करनेवाले व्यक्ति मन मे जो इच्छा करते हैं उनकी तुर त पूर्ति भगवान् शिव की कृपा से होती है और उनके सासारिक त्रिताप और पीडाएँ दूर हो जाती हैं। इस हेतु हे महा भाग्यशालिनी

चरणाश्रित ? वेद तत्व मय इस नवीन मन्त्रोपनिषद की रचना कीजिये ।।२६।।

ब्राह्मी ह्येषा गुणमयी साधना लोकपावनी ।
अस्या प्रसारण कृत्वा, कुरु त्रैलोक्य मगलम ।।३०।।

यह त्रिगुणमयी लोको को पवित्र करने वाली ब्राह्मी उपासना है, इस का ससार मे प्रचार करके तीनो लोको का मगल करो ।

निर्माणसिद्धिपीठाना स्व शक्त्या त्व करिष्यसि ।
सद्गुरोर्मूर्तिपूजाव–सविधाना भविष्यति ।।३१।।

हे चरणाश्रित ! सिद्ध पीठो का निर्माण तुम अपनी शक्ति से करोगे, वहाँ मेरे श्री विग्रह की विधिविधान से पूजा सेवा हुआ करगी ।

चरणाश्रितस्य ते पादौ यत्र यत्र गमिष्यत ।
तत्राऽह शक्तिसहित निवसामि न सशय ।।३२।।

मेरे चरणाश्रित तुम्हारे श्री चरण जिस भूमि का स्पश करेगे वहा सम्पूण शक्ति सहित अवश्य हो मेरा निवास रहेगा ।

मत्प्रसादात सुत विद्यां लक्ष्मीं कीर्ति बल वय ।
आरोग्य वश वृद्धि च सिद्धि विन्दन्ति मानवा ।।३३।।

उन मेरे सिद्ध पीठो मे आकर दशन करने वालो को मेरी कृपा से पुत्र विद्या, लक्ष्मी, यश, बल, आयु आरोग्य, वश की वृद्धि और सम्पूण सिद्धिया अवश्य इच्छानुसार प्राप्त होगी ।

इत्युक्त्वाऽन्तदधे शम्भु हैडियाखण्डी महेश्वर
महेन्द्रोऽपि परासिद्धि प्राप्य हषसमन्वित ।।३४।।

इस प्रकार अपने प्रिय शिष्य को आदेश देकर श्री हैडाखान वाले सदाशिव बाबा अन्तर्द्धान हो गये, और उनके शुभाशीर्वाद से श्री महेन्द्र स्वामीजी महाराज परम सिद्धि को प्राप्त कर हर्षित होते हुए श्री धाम वृन्दाबन मे पधार आये ।।

श्रीमदवृन्दावन गत्वा, यथाश्रुतमकल्पयत ।
निर्माण सिद्धग्रन्थाना कारयामास भक्तित ।।३५।।

उन्होने श्री धाम व दावन मे पधार कर श्री भगवान सदाशिव के आदेश के अनुसार सिद्ध ग्र थ और सिद्ध पीठो का निर्माण कराने की कृपा की और अपनी निष्ठा पूण गुरुभक्ति का परिचय दिया।

कठघरियाश्रमे रम्ये पुण्ये वृ दावने तथा ।
श्री मूर्तिस्थापना कृत्वा सिद्धिसेतुमकल्पयत ।।३६।।

हलद्वानी मण्डी से लगभग तीन मील की दूरी पर रमणीय श्री कठघरिया आश्रम मे तथा पुण्य भूमि श्री व दावन धाम मे (गोपीनाथ बाजार, ब्रह्मकुण्ड) पर भगवान् श्री हैडाखान वाले बाबा की दिव्य चत य श्री मूर्तियो की स्थापना करके ससार के प्राणियो को भव सागर पर सिद्धि के सेतु बाधने की कृपा की, जिस सेतु के आश्रय से क्षुद्र से क्षुद्र, और महान से महान् सब प्राणी सुख पूवक इस गभीर ससार सागर को पार कर सकेंगे।

वाङ मयीं ग्र थ रूपाच सिद्धिदाशाश्वतीं तनुम ।।
निर्माय विश्वकल्याणम विदधे चरणाश्रित ।।३७।।

इस प्रकार श्री पूज्य महे द्र बाबा ने भगवान शिव की ग्र थ रूप वाङ् मय श्री मूर्ति और सिद्धि प्रद शाश्वत श्री विग्रह मूर्तियो का एक समय मे ही निर्माण करवाकर सम्पूण विश्व का कल्याण करने की कृपा की ।।३७।।

तस्यव भक्त्या स तुष्टो भगवान निर्गुण शिव ।
सगुण रूप मास्थाय सु दर लोकमगलम ।।३८।।

उ ही श्री ब्रह्मचारी बाबा की परम भक्ति से प्रस न होकर उन निगुण महेश्वर ने लोक सुमगल हेतु परम सुन्दर सगुण रूप धारण करने की कृपा की है।

परित्राणाय भक्ताना धर्मसस्थापनाय च ।
श्रीमुनीन्द्रस्वरूपेण हैडियाखण्डी महेश्वर ॥३९॥

सत्यपुरुषो की रक्षा करने तथा धर्म की नीव को सुदृढ जमाने के लिये श्रीहैडाखान वाले बाबा सचल शिव के रूप मे दर्शन देने की कृपा कर रहे हैं।

श्री महेन्द्रस्य भक्त्या च वशीभूत स्वय हर ।
चरणाश्रितस्य ता वाणीं सत्यां कर्तुं समागत ॥४०॥

श्री समर्थ ब्रह्मचारी श्री महेन्द्र बाबा की अलौकिक भक्ति के वशीभूत साक्षात शिव स्वरूप श्री हैडाखान वाले बाबा अपने श्री चरणाश्रित की उस वाणी को (जिसमे उन्होने सब के समक्ष घोषणा की थी कि सन् सत्तर तक श्री भगवान अवश्य पधार कर दर्शन देंगे) सत्य करने के लिये स्वय सचल शिव के रूप मे प्रकट दर्शन देने की कृपा कर रहे है।

सर्वेषाभावसुलभो वाञ्छाकल्पतरुमहान ।
भक्ताभीष्टप्रदो भूत्वा प्राणिनां दृष्टिगोचर ॥४१॥

विश्व वाछा के कल्प वृक्ष, भक्तो को मन वाछित वरदान देने की कृपा करने वाले दिव्य स्वरूप को धारण कर सब प्राणियो के भाव गम्य श्री प्रभु आज सव साधारण के नयन गोचर होने की कृपा कर रहे है।

भक्ताना भावनागम्य निर्गुण सगुणोऽभवत ।
विराजते कुञ्ज मध्ये सचलाचल मूर्तिमान ॥४२॥

भक्त वृन्द की भावना से वेद्य वे ही निर्गुण निराकार निरजन ॐकार स्वरूप श्री भगवान् आज अपने श्री चरणाश्रित की आराधना के वशीभूत हो सगुण मन मोहक दिव्य स्वरूप धारण कर श्री साम्ब सदाशिव कुञ्ज वृन्दावन धाम मे सचल शिव के रूप में स्वय और अचल मूर्ति रूप मे अपने सचल और अचल

दोनो श्री विग्रहो मे विराजमान भक्त व द को दशनान द से आनन्दित करने की कृपा कर रहे हैं ।।४२।।

आगच्छत महाभागा कालग्रासा क्षणायुष
निरीक्ष्य शिवसौन्दर्यमाशीर्वाद लभेमहि ।।४३।।

हे कलियुग के जीवो ! तुम्हारी आयु क्षणिक है, तुम सब काल के ग्रास हो, फिर भी तुम बडे भाग्यशाली हो जो तुम्हे अपने चरम चक्षुओ स श्री भगवान् ने अपने दशन का अवसर प्रदान किया है, इसलिए तुम शीघ्र आओ और हैडियाखण्डी सदाशिव देव के दशनो से अपने नयनो को सफल करते हुये उनका शुभाशीर्वाद ग्रहण कर परमानन्द प्राप्त करो ।

ॐ ॐ भगवान श्री १००८ श्री हैडाखान वाले बाबा

ॐ हैडियाखण्डी हैडियाखण्डी हैडियाखण्डी
बोल
ईश्वर सत चित आनन्द बोल ।
साम्ब सदाशिव साम्ब मदाशिव साम्ब सदाशिव
बोल
पालक प्रेरक जग पति बोल ।।

॥ ॐ श्री सद्गुरव नम ॥

दसम् पुष्प—भगवान् श्री हैडाखान वाले बाबा

की

अनुपम कृपा

लेखक—श्री चरणाश्रित

॥ श्री सद्गुरवेनम ॥

भगवान्
श्री हैड़ाखान वाले बाबा की
अनुपम कृपा

बुद्धि और श्रद्धा

विश्व वाटिका की विचित्रता, सुव्यवस्थित सचालन तथा नियति के अविरोध क्रियाकलाप से स्वत ही सिद्ध होता है, कि सव समथ सचालक, सवज्ञ व्यवस्थापक एव सदव सतक नियामक अवश्य है।

अनादि काल से भिन्न भि न स्वरूपो द्वारा मानव मस्तिष्क उससे सम्ब ध स्थापित करता रहा है। उसके विषय मे यह सर्वाधिक प्राचीन सूक्ति है—

"एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।" —ऋक०

उसी एक पराशक्ति को ब्रह्मर्षिगण अनेक नाम रूपो से भजते हैं।

ये म त्र द्रष्टा महर्षिगण केवल शाब्दिक उदबोधन से ही स तुष्ट नही हुए, अपितु उस एक को सर्वे द्रिय गम्य बनाकर ही विश्राम लिया, जिसे शाश्वत पद कहते हैं।

"तद विष्णो पर पदम।"

वही सवश्रेष्ठ विष्णु पद है।

उस अतीत को इन्द्रिय गोचर बनाकर ही शांतिलाभ हुआ। आप्त हृदय से दिव्योद्गारपूर्ण नाद निकले। वखरी वाणी ने ये शब्द रूप धारण किये—

"सहस्र शीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्र पाद"—यजु०
सहस्र मस्तक, सहस्र नेत्र और चरणों से युक्त विराट पुरुष।

"सर्वत पाणिपाद च, सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम
सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।"

जिसके सब ओर हाथ पाँव हैं, सब ओर नेत्र, शिर और मुख है, सब ओर कान हैं वह परम दिव्य रूप सम्पूर्ण ब्रह्मांडो को आवृत करके रहता है।

मानवता के आदिसर्जक मेधावी मनीषियो ने इस चिर चिन्त्य सुखदायक विज्ञान का साक्षात्कार किया। तज्जन्य शांति लाभ भी हुआ। परन्तु ये सब क्रियाएँ सर्वेन्द्रिय सुलभ नही हो पायी, केवल बुद्धि गम्य विषय ही बना रहा। मस्तिष्क सन्तुष्ट हुआ परन्तु हृदय को आधार नही मिला, मस्तिष्क विवेचन मात्र से सन्तुष्ट हो सकता है। स्वकल्पना का सुदृढ कपाट बना कर अपने को बन्द करले, मनोराज्य को ही अपना क्रीडाङ्गण बना कर सम्राट बना रहे, ये सब बुद्धि वाद के लिये सुलभ हैं। परन्तु हृदय का एक सर्व विदित स्वभाव है—मिलने का, एक दूसरे का भेद मिटाकर पूर्ण रूपेण एक हो जाने का—वह सिद्ध नही हुआ।

हमारे हृत्तन्तुओ का जिस पदार्थ तत्व से सम्बन्ध होता है, उन तत्वो से पूर्णैक्य प्राप्ति के लिए वह उसी क्षण से एक नैसर्गिक व्यवस्था द्वारा अपना प्रयत्न आरम्भ कर देता है।

जिस प्रकार मस्तिष्क बुद्धि स्वाभाविक ऊहापोह उसी समय छोडती है, जब अनिर्वचनीय अनिर्देश्य अव्यक्त तथा अनादि तत्व का सत्यज्ञान—अपरोक्ष ज्ञान धारण कर लेती है, उसी प्रकार हृदय श्रद्धा भी तब तक अपनी जिज्ञासा की पूर्ति नही समझती

है, जब तक कि अपने ध्येय प्रियतम को वह अपनी भाषा में कथन के योग्य तथा अपनी दृष्टि से देखने के योग्य न बना ले।

बुद्धि और ज्ञान मे नाम मात्र का ही भेद है। वस्तुत दोनो एक ही हैं। हम यहा दोनो को एक ही अर्थ में प्रयोग करते हैं। श्रुति मे भी उल्लेख है। जहाँ—

"ऋते ज्ञाना न मुक्ति"

ज्ञान के बिना मुक्ति प्राप्त नही होती है कहा है। वहाँ पर एसा भी है—

"दृश्यते त्वग्रया बुद्ध या"

ब्रह्म का दिव्य स्वरूप अग्र बुद्धि से देखा जाता है।

इसी प्रकार श्रद्धा तथा भक्ति भी एक ही हैं। श्रुति कहती है—

"श्रद्धया सत्यमाप्नुयात"

श्रद्धा से परम सत्य की प्राप्ति होती है।

श्री भगवान् कहते हैं—

"भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।"

अनन्य भक्ति से मुझे प्राप्त कर सकते हैं।

अत बुद्धि और श्रद्धा का परस्पर बडा घनिष्ट सम्बन्ध है जसे पार्थिव शरीर को दो भागो मे विभक्त कर दिया जाए तो दोनो ही अशो का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। वैसे ही यदि आध्यात्मिक जीवन मे भी बुद्धि से श्रद्धा तथा श्रद्धा से बुद्धि को दूर कर दिया जाए तो आध्यात्मिक चेतना अवश्य नष्ट हो जाएगी।

केवल आध्यात्मिक क्षेत्र मे ही नहीं, मानवीय सम्पूर्ण व्यवहारो मे भी इन युगल (बुद्धि और श्रद्धा) शक्तियो का पूर्ण सामञ्जस्य परमावश्यक है। बिना इनके सहयोग के किसी कार्य का सुचारु रूप से सम्पादन होना असम्भव है।

मानव का सर्वाङ्गीण विकास पुरुष की पूणत्व की परा काष्ठा साधक का साध्य साक्षात्कार तथा प्रेमी का प्रियतम पर एकाधिपत्य अधिकार तभी सम्भव है, जब उनके जीवन मे ये उपरोक्त (बुद्धि और श्रद्धा की) धाराएँ गगा यमुना के समान अविच्छिन्न—सगम स्थल बनकर निरन्तर प्रवाहित हो। सफल मानव जीवन के लिए यह अत्यावश्यक है कि ये धाराएँ जो हमे अमृतत्व की ओर ले जाती हैं, जिनके सान्निध्य मे हम प्रकाश की ओर बढते हैं, उनका प्रवाह हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे विशुद्ध, व्यवस्थित, पूण तथा उन्मुक्त रूप से होता रहे।

ये शक्तियाँ सृष्टि की परात्परा शक्ति के ही अविभाज्य अग हैं। द्वद्व ग्रस्त सतान के उद्धार के लिए मानो दयामयी भगवती ने एका होते हुए भी अनेका—अर्थात ये दो मधुर विग्रह धारण कर लिए है। भागवती शक्ति का प्राकट्य प्रधानतया ऐश्वय तथा माधुर्य के रूप मे ही होता है, यद्यपि एश्वय और माधुय दोनो ही श्री भगवान के ही चरणाश्रित हैं, तथापि निज चरणाश्रितो को वे दयालु परमोदार प्रभु एश्वय और माधुय की सुषमा से सुशोभित कर देते है।

जीव के लिए तो दोना ही दुलभ हैं। भागवती महेदैश्वय शक्ति को सहन करना बद्ध जीवो के लिए अशक्य है, एक मात्र दयामयी शक्ति ही अहैतु की करुणा द्वारा स्व माधुय भाव के कुछ कण हमारे हृदय के क्षेत्र मे बिखेर देती है। वह पराशक्ति ही अपने ऐश्वय को गौण रख कर, दिव्य माधुय का चिन्मय एव करुणामय स्वरूप स्वीकार कर मानव हृदय मे अवतरित्त होती है। भगवान् ने कहा है—पाण्डवो मे मैं धनञ्जय हूँ। दैत्यो मे प्रह्लाद मैं हूँ। अत जीव का भक्ति भाव उसी भगवान का रूप है। जीव जब माया मे आकण्ठ मग्न

है, स्वसस्कार सरिता मे जो अनुदिन बहता जा रहा है, उसमें क्या सामथ्य कि वह दुरत्यया माया को पार कर जाय। अत-एव जैसे बुद्धि और श्रद्धा को एक स्वीकार किया गया है, उसी प्रकार ऐश्वय और माधुय भी अभिन्न हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। बुद्धि ऐश्वय की अधिष्ठात्री है। वह बिना पराजय के स्वीकार किए कभी किसी को मान्यता देना पसन्द नही करती है। तर्क वितर्क के हथौडे से जब तक उसकी सहस्रो सशयात्मक वृत्तियो को चूर चूर न कर दिया जाय तब तक वह कोई भी अपना अनिवाद्य एव सशय हीन तत्त्व धारण करने मे असमर्थ है।

श्रद्धा भगवती माधुय की महिमा से परिपूर्ण है। मानव जीवन मे साधन समराङ्गण मे, वृत्ति वायु से तरङ्गित अचञ्चल सक्षुब्ध मानस सर मे, 'मा' श्रद्धा हमे एक भाव रत्न प्रदान करती है। श्रद्धा प्रसूत भाव को प्राप्त कर हम कृतकृत्य हो जाते है। उस दया प्रेरित परमोज्ज्वल रत्न कणिका के सुदृढ आधार लेकर हम अज्ञानान्धकार दैवी सम्पत्ति हीनतारूप दैन्य तथा त्रिविधि दुःखो को दूर कर दिव्य प्रकाश, भागवती विभूति तथा सच्चिदानन्द का रसास्वादन करते हैं।

जैसे गगा और यमुना के सगम से वह सगमस्थल तीर्थराज हो जाता है, उसी प्रकार बुद्धि और श्रद्धा के पूर्णैक्य प्रतिष्ठा द्वारा हमारे अन्तःकरण मे एक अनिर्वचनीय साधन साम्राज्य का दिव्य सिंहासन निर्माण होता है। उस सिंहासनासीन देव को लोक भाषा मे हम 'भाव' कहते हैं। जिस प्रकार साधन, साधक तथा साध्य एक हैं उसी प्रकार साधन के प्राण 'भाव' साधक का अस्तित्व भाव और साध्य का सर्वापेक्षित शुद्ध सुन्दर स्वरूप भाव ही है।

"भावो हि विद्यते देव"

भाव ही देव का साक्षात् स्वरूप है।

श्री भगवान का प्रादुर्भाव भाव द्वारा ही सभव है, मैं जिन आराध्य देव के विषय मे यहाँ यत्किचित् चर्चा का प्रयास कर रहा हूँ, उन व्यक्ताव्यक्त महामहिम पुराण पुरुष का आदेश, उपदेश तथा आशीष वाक्य एक ही था,—"भाव ग्राही बनो"। जसी तुम्हारी भावना है, वसी ही स्पष्टि है, सुख दुख पाप-पुण्य, हानि लाभ, यश अपयश तथा ज म मृत्यु आदि द्व द्वो से समाच्छ न ससार का कोई निश्चित स्वरूप नही है। जिन भावुको—विचारको ने जिस भावना से विश्व तथा विश्वनाथ को देखा, विचारा, ठीक वैसा ही दृश्य तथा अनुभूति उनके सामने उपस्थित हुइ।

भावना हीन स्थान मे भगवान् नही और जो श्री भगवान् के अतिरिक्त भावना है, वह भावना नही—वह तो केवल पाशविक वासना है।

"न चायुक्तस्य भावना।"

जो योग युक्त नही है उनमें 'भावना' असम्भव है।

यह सत्य है कि महापुरुष के चरणाश्रय से ही 'भावना' की प्राप्ति होती है। श्री चरणाश्रितो के लिए दुष्कर साधन भी सुलभतम बन जाते ह, श्री भगवान की आज्ञा ही है।

"तेषामह समुद्धर्ता मृत्यु ससार सागरात।
भवामि न चिरात पार्थ मय्यावेशित चेतसाम॥"

हे पार्थ! मेरा ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते है, मुझी मे अपने चित्त को लगा देने वाले भक्तो का इस ज म मरण रूपी ससार सागर से शीघ्र ही उद्धार कर देता हूँ।

जिन भाग्यवानो का चित्त चकोर श्री चरण चन्द्र मे अनुरक्त है, वे ही ससार सागर से मुक्त होगे, उन्ही को श्री मनमोहन दीखेंगे।

———

अयाचित आह्वान्

अनेको भावो से आक्रान्त हृदय को अन्तर्यामी सर्वेश ने कृपा कर दिव्य भाव कण प्रदान किए। जैसे क्षुद्र पिपीलिका मधु की गन्ध मात्र से अनुसरण करती मधुस्थल तक पहुच जाती है उसी प्रकार सकल्प विकल्प के कण्टकाकीर्ण कीचड मे आसक्त मनपिपीलिका भाव—दाता व्याकुलता प्रदाता को देखने हेतु तडप उठी। भाव का स्वरूप ही व्याकुलता है। इस तडप व्याकुलता मिटाने के बहुत से यत्न किये गये, परन्तु सब व्यर्थ। इस रोग से पिण्ड छुडाने का जितना उपचार किया गया, उतना ही और अधिक वह बढ़ता ही गया।

कई वर्षों से यह सघर्ष चलता रहा, साधन पर मेरा विश्वास बहुत थोडा था। कुछ किया भी तो यह समझ कर अरुचि उत्पन्न हो जाती थी कि इन साधनो का फल तो भोग ही है। साधनो का यदि सम्यक विधान पूर्वक अनुष्ठान निर्विघ्न समाप्त हो तो उसका फल सिद्धि ही तो होगी परन्तु श्री भगवान् को प्राप्त किये बिना मुझ शान्ति नही मिलेगी। श्री भगवान् तो इन सिद्धियो से प्रसन्न होने वाले नही। अत ये सब साधनाएँ मेरे लिये श्रेयस्कर नही है। ऐसा विचार आते ही नियमादि सब शिथिल पड जाते थे। सासारिक पदार्थों से अरुचि रहने के कारण यदि कभी कभी ससार से आसक्ति भी हुई तो उसे साकार होने का अवकाश नही मिला। बहुत से नरेश मिले, द्रव्य, पूजा तथा सत्कार आदि का भी प्राचुर्य रहा, परन्तु यह समझ कर कि मुझे भगवान चाहिये, इन वस्तुओ का सग्रह व्यर्थ

है कष्ट प्रद ही तो है। अत इन प्रलोभनो का मनीराम (मन) बडे सुख पूवक छोड देते थे।

भौतिक दृष्टि से बडे बडे बहुमूल्य उपकरण उपस्थित हुए, कि तु श्री चरणो की कृपा से सब नगण्य प्रतीत होते थे। उन दिनो मे प्राय सत्सग में ऐसा कहा जाता था कि माया की और मेरी लडाई हो रही है। कभी माया मुझ नीचे ले जाती है और कभी मैं उसे नीचे ले आता हू। उसको मायी भगवान का बल है और मुझ श्री गुरुदेव का। श्री भगवान यदि उसको सहायता दगे तो मै भी श्री महाराज जी से प्राथना करूगा। अवश्य पतितपावन प्रभु मुझे ही जिताएँगे।

इस सकल्प विकल्पात्मक देवासुर सग्राम का वणन कहाँ तक किया जाय। दो चार युग का हो तो भी थोडा है। ये तो प्रतिपल के सग्राम हैं। क्षण क्षण मे महाभारत की विभीषिका-सा दृश्य उपस्थित करते है। पाठको! तुम ऊब जाओगे! उस चित्त की दशा को कोई कलाकार नही समझ सकता। दाशनिक अपनी परिभाषा मे नही ला सकता। हाँ! यदि कुछ उसी रोग के रोगी मिल जाएँ तो कही सभव है कि कुछ गध ले सकें।

इसी प्रकार वर्षों युद्ध चलता रहा। रात दिन नही, सत्य समझो श्वास श्वास कहे तो कोई अत्युक्ति नही होगी। हाँ! कभी कुछ रूप, कभी कुछ रूप, ऐसा रूपा तरित अवश्य, परन्तु मानसिक व्यग्रता मानो अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। क्या कहना! भय और व्याकुलता ने ऐसा अखाडा बनाया मेरे हृदयाङ्गण मे जिसका वणन करना मेरी सामथ्य के बाहर है। अन्त मे यही निश्चय हुआ कि इस नीरस जीवन को समाप्त कर ही श्री भगवान की प्राप्ति की जाय। (प्रभु प्राप्ति से तात्पय मेरा यह है कि श्री इष्ट के अतिरिक्त और कोई सकल्प ही हृदय में न उठें। यदा कदा स्वप्न तथा जाग्रत मे कोई झाकी

(क्षणिक दर्शन) हो गई तो यह मेरी समझ मे पूर्ण साक्षात्कार नही है ।)

अनेको बार ऐसा निश्चय किया गया, परन्तु जीव प्राणो का मोह त्याग नही कर सकता था। अब तो भाव देव ने प्रियतम से मिलने को उन्मत्त बना दिया । उसने भर्त्सना से कहा, 'अरे मन' यह बहाने बाजी कब तक चलेगी। अब तो ऐसा ही होना चाहिये—जैसा तूने निश्चय किया है। बस, फिर देर क्या थी । दृढ निश्चय करने मे ही विलम्ब होता है। दृढता और सफलता दोनो सापेक्ष है। मुझ मे तो दृढता नही है परन्तु श्री भगवान की अनुकम्पा से आज मैं भी दृढ़ संकल्प हो गया।

अहा ! उस दिन सं० २००६ की ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्थी थी। महा मागलिक बनकर आज मगलवार भी था। प्रातः काल से ही सात्विक श्रद्धाजन्य स्फूर्ति से अपने मे मैं अपूर्व आनन्द का तथा उत्साह का अनुभव कर रहा था। मेरे अनन्त जन्मो का ये सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वोत्तम दिव्य अवसर था, जबकि मेरे अनाथ नाथ भगवान् स्वयं कृपा कर अपनी शरण मे बुला रहे थे। हर्षोन्मत्त अवस्था मे आज ही यहाँ से प्रस्थान हो, ऐसा निश्चय सा हो गया। मन के भीतरी भाव तो प्रकट नही किये, वैसे साधारण रूप से स्थानीय स्नेहियो से कहा कि आज मैं पहाड की यात्रा करूगा। परन्तु स्नेही ज्योतिष की दृष्टि से अशुभ दिन होने के कारण कुछ रोक रहे थे।

यह विचार मां मन्दिर के एक पुजारी दुर्गापाठी ब्राह्मण के समक्ष रखा गया, वे विप्रदेव बडी प्रसन्न मुद्रा मे बोले, "भगवान् के प्रेमी को मुहूर्त क्या ? तुम श्री भगवान के प्रेमी हो। तुम्हारे लिये सदैव शुभ ही है।" विप्र देव के ये बचन सुनते ही मैंने प्रसन्नता से श्री भगवती तथा मन्दिर मे उपस्थित व्यक्तियो को

प्रणाम किया और उसी समय साढे दस बजे की मोटर से अलमोडा के लिए प्रस्थान किया। अलमोडा मे पानल देवी का स्थान बहुत प्राचीन तथा प्रसिद्ध है। पूव काल से ही यहा पर बडे बडे सिद्ध महापुरुष रहते आये हैं। बहुत सी समाधिया आज इसकी साक्षी हैं। नगर से दूर तथा पास ही जल का उत्तम स्रोत होने के कारण, यह पुनीत स्थान साधको के लिये विशेष सुखकर है। यहा पर मुझे भी कुछ अच्छा लगा। तीन चार दिनो तक रहने के बाद चित्त में फिर वही प्रश्न उठा। जिस दु ख से दु खी होकर मैं हिमालय आया वह उद्देश्य तो अपूण ही रहा। फिर वही जीवन व्यापार, खाना, पीना, सोना, बोलना आदि।

एक स्थान पर रहने के कारण ही प्राय मैने तीन चार दिना तक विश्राम किया। अत सुविधाजनक स्थान मे रहना विघ्न है, ऐसा विचार कर अलमोडा से पैदल ही कोसी आया, यह स्थान कोसी नदी के तट पर छोटा सा मोटर पडाव है। दस बीस दुकाने हैं। अल्मोडा से लगभग आठ दस मील तक उतार ही उतार है।

यहाँ के एक वद्ध दुकानदार से मैंने कोई निजन स्थान के विषय मे पूछा। उसने मुझ को श्री सूय मंदिर का परिचय दिया एव वहाँ की बहुत महिमा सुनाई।

उपयुक्त सूय मन्दिर कोसी से एक मील की दूरी पर स्थित है। माग बिलकुल चढाई का है। इस गाव का नाम "कटारमल" है।

कोसी ही मे रात्रि व्यतीत की, दूसरे दिन प्रात काल ही सूय मंदिर की ओर चला। मन्दिर की शोभा बहुत आकषक है। उच्च शिखरस्थित होने के कारण दूर-दूर तक की पवत श्रेणिया दीखती हैं। समीप मे ही जल का स्रोत है। यहीं से ग्रामवासी पानी ले जाते हैं। वहा पर मुझे उस गाव के कितने ही बालक तथा स्त्री पुरुष मिले। उन्होने मुझसे भोजन लेने का

सिद्धाश्रम की ओर

श्री सूय मदिर के बाहर धूप तथा लोगो की दृष्टि से बचने के लिए मैं मन्दिर के भीतर जा बैठा। मदिर बहुत दिनो से झाडा बुहारा नही गया था। ऐसा कलापूण मन्दिर बिलकुल उपेक्षित रूप मे था। सूयदेव की नियमित पूजा अचना भी नहीं होती थी, परन्तु मैं वहा की नीरवता तथा शीतलता से बहुत प्रभावित हुआ। शीघ्र ही मेरा मन सब बाह्य विषयो का त्याग कर अतर्मुखी धारणा मे निमग्न होने लगा। उसी समय एक पवतीय व्यक्ति आया। एक साधारण ग्रामीण सा मालूम पडता था, उसकी अवस्था २४ २५ वष की होगी, वह अपना घरेलू सामान लेने बाजार जा रहा था। बाजार का रास्ता मदिर के पीछे भाग मे कुछ दूर हट कर है। उस व्यक्ति को बडा आश्चय हुआ कि बिना इच्छा के वह कसे मदिर मे आ गया, उसके प्रवेश करते ही मेरा मन भी उसकी ओर गया। मैं तो उसको देखता ही रहा, परन्तु वह व्यक्ति मूर्ति को प्रणाम किए बिना ही जोर जोर से मुझसे कहने लगा—"बाहर आओ। तुम कसे आदमी हो मदिर मे महादुगध फल रही है। मुझसे तो जरा भी सहन नही हुआ। तुम इतनी देर से बठे हो, यह ठीक नही। स्वास्थ्य पर बुरा असर पडेगा।" जब मैंने उसकी बात सुनी तो मुझ भी असह्य दुर्गध का भान हुआ। फिर तो मुझे भी क्षणभर भी रुकना अशक्य हो गया। केवल मदिर में ही नहीं, मन्दिर के चतुर्दिक बहुत दूरो तक कई

दिनो से इतनी दुग ध फल रही थी कि वहाँ के लोग ग्राम वासी नरनारियो ने उधर का रास्ता ही ब द कर लिया था। वे लोग जल लाने के लिए दूसरे चक्करदार माग से जाया करते थे। मैं भी वहाँ से काफी दूर जाकर बठ गया। एक विचित्र हास्य की रेखा हृत्पटल पर उदित हुई, और मैं वही पथरीली भूमि पर लेट गया।

मुझे मालूम नही कि वह नव परिचित व्यक्ति भी मेरे पीछे आ रहा है। मैं स्वभावत ही आख मूदकर कुछ स्मरण करने लगा। कुछ समय पश्चात आख खोलकर देखा कि वही म दिर वाला व्यक्ति विस्मित भाव से मेरी ओर एक टक द ष्टि से देख रहा है। नमस्कार करते हुए वह आश्चय से बोला —' महाराज ! मै तो एक जरूरी काम से बाजार जा रहा था। देर के कारण रास्ता न पकडकर जसे तैसे बडी कठिन चढाई चलकर, मैं सीधे गाँव से आ रहा हूँ। पर तु अपना रास्ता छोडकर मैं म दिर मे क्यो आया ? हम लोग तो प्राय इधर होकर जाया ही करते हैं, कि तु दशनो की इच्छा कभी नही होती है। मैंने भी कहा—' यह तो सत्य ही है। यदि यहा वालो के मन मे श्रद्धा भाव होता तो ऐसा सु दर म दिर इस प्रकार दुरवस्था मे न होता।" इन बातो को अनसुनी करते हुए, उसने कहा "महाराज ! मैं अभी बाजार से लौटता हूँ, आप मेरे साथ चलना। मैं आपको अच्छे देव स्थान पर ले चल गा।" मैं ता ऐसा चाहता ही था। शीघ्र ही मैंने उससे पूछा—"वह कसी जग ह है ?" उसने उस स्थान की महिमा बहुत सुनाई। 'शत रुद्र' नाम बताया। जल के बारे मे पूछने पर वह हसते हुए बोला— महाराज मत पूछो, पानी तो वसा बहुत दूरो तक मे नही मिलेगा। ये स्थान हमारे पवत की काशी है। किसी समय पर वह लक्षो शिवलिङ्ग स्थापित थे। कुछ तो वहाँ पर पूववत ही

सस्थापित है तथा कुछ शिव-लिङ्ग कभी ग्रामीणो को अपने खेतो मे जोतते समय प्राप्त होते है। अनेको मदिर तथा शिवलिङ्ग स्थापित चबूतरे जमीन में नीचे धँस गये हैं। सुनते ही मुझे उस स्थान के दर्शनो की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। उत्सुकतापूर्वक मैंने उससे पूछा—"मैं अकेला वहाँ जा सकता हूँ?" "जाना कोई बडी बात नही, पर मैं तुम्हारे साथ चलूगा। तुम्हारा कमण्डल ले चलूगा। मुझे कुछ देर तक तुम्हारा साथ रहेगा। तुम मुझको अच्छे लगते हो।' जल्दी जल्दी इतनी बात कहकर फिर वह कहने लगा—"बाजार एक मील है। बहुत बहुत तो मुझे वहाँ दो घण्टे लगेंगे, मैं जल्दी ही आता हूँ। उस समय दिन के ६ बजे होगे।

मेरी प्रतीक्षा अधीरता का रूप धारण करने लगी। धीरे-धीरे शीत भी बढने लगा। आग का उपयोग मैं नही करता था, क्षुधा पिपासा का भी परिणाम कुछ होना ही था। अन्त मे मन ने यही निश्चय किया कि उस व्यक्ति का दिया हुआ समय कब का समाप्त हो गया। अब यदि मैं यहाँ से चला भी जाऊ तो असत्य नही होगा। उस व्यक्ति ने ऐसा सुदर स्थान बता कर मेरा बडा उपकार किया। आज रात बिताकर प्रात काल ही "शतरुद्र" के दर्शन होगे। इसी विचार से ज्यो ही उठ कर खडा हुआ कि वही व्यक्ति पीछे से हाथ जोडकर साश्रु नेत्र से बोला—"महाराज माफ करना। मुझे बहुत काम लग गया। मैंने भी भोजन नही किया है। तुम भी भूखे मालूम पडते हो। मेरे घर पर चलो। हम दोनो भोजन करेंगे। जो कहेगे वही बना देंगे।" उस समय तो मुझे एक क्षण भी अन्यत्र बिताना कठिन था। उससे मैंने बडे स्नेहपूर्वक कहा—"भया मुझे 'शतरुद्र' बता दे। मैं और कही नही जाऊगा। हम साधु लोग किसी के घर क्यो जायें? 'शतरुद्र' नामक कोई स्थान नही है तो सच

सच कह दो, मुझे कुछ बुरा नहीं लगेगा।" उसने बिना कुछ कहे ही तुरत मेरे हाथ से बालटी लेली और आगे को बढा। मैं भी उसके पीछे पीछे चला। रास्ता बडा खतरनाक था। उस माग की चौडाई मुश्किल से ही एक फुट होगी। वह भी छोटे-छोटे पत्थरो तथा घासो से ढका हुआ, थोडी असावधानी भी प्राण घातक हो रही थी। यदि पाँव जरा भी फिसले तो हजारो फीट की गहराई मे समाधि क्रिया शीघ्र ही सम्पन्न हो जाए। थक कर जब मैं उससे पूछता था, माग की दूरी के विषय मे तो बार बार वही चिर परिचित उत्तर मिलता था—"बस अब आ गये हो।" मदिर के जिन श्री सूयनारायण ने मुझ इधर भेजा था, वे सूयदेव भी दिन भर की यात्रा समाप्त कर अस्ताचल को विश्राम करने जा रहे थे। अधिक अधेरे के भय से तथा उस व्यक्ति की तेज चाल के कारण मैं भी इतनी तेजी से चल रहा था जैसा पूव कभी नही चला। दौडते-दौडते हमको रात हो गई, प्रकाश मे तो सप एवं अय छोटे-छोटे जानवर दीख पडते थे, परतु अधेरे मे वे नही दिखलाई देते थे। फलस्वरूप कई बार वे विषले भयानक तथा अनजान कीडे मेरे पावो से छू गये। इससे भय भी था। एक अवणनीय अवस्था मे हिमालय के निजन पथ द्वारा वह व्यक्ति मेरी बालटी लिए हुए, अर्थात् मेरे अनत जन्मो के सस्कारो को अपने ऊपर लेकर, मुझे श्री भगवान् की ओर ले जा रह थे। ओहो! मैंने उन्हे सादर प्रणाम तक नही किया। करीब रात के ९ बजे होगे, सहसा वह पुरुष रुका, "यहा से मेरा घर दो मील है, घर मे बच्चा बीमार है, तुम्हारा स्थान यहा से थोडी ही दूर है, इसी रास्ते से चले जाओ, तुम कहो तो पहुचा दू, लेकिन मुझे फिर वापस आने मे चार मील का चक्कर पडेगा। लडका बहुत बीमार है और घर मे कोई नही।" मुझे उसकी बातों पर हँसी

आई। वह ऐसा न समझे कि महाराज मुझ से बुरा मान गया है, इसलिये मैंने उसे बडे स्नेहपूर्वक समझा कर कहा, "तुमने मेरा बडा उपकार किया है, भगवान् शङ्कर का स्थान मुझे बताया, यहा तक ले भी आये हो, आगे मैं इसी रास्ते से चला जाऊँगा, मेरा तो जीवन ही भटकने के लिए है, तुम घर जाओ और खुशी से अपने लडके की देख भाल करो।"

वह व्यक्ति चला गया। एक तो अधेरी रात, दूसरे वृक्षावलियो से और भी अधिक अधकार मालूम पडता था, अत उस पुरुष को जाते नही देखा, किधर गया और कब गया, मुझे मालूम नही। हाँ उसके जाते ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई बोझा मेरे सिर पर से उतर गया है। मैं अपने को कुछ हल्का सा समझने लगा। मन मे आया कि कुछ देर बैठ लूँ, लेकिन बैठने की जगह नही थी।

अधेरी रात मे लगभग दस हजार फीट की ऊँचाई पर, केवल पाँव टेकने भर की जगह मे भगवान के भरोसे ही चलना था। उतनी जगह भी साफ हो तो बैठने का किया जाए, परन्तु कही घास से फिसलने का भय तो कही पत्थर सरकने का डर। अत केवल चाल धीमी कर देने के अतिरिक्त और कोई विश्राम का मार्ग नही था। डेढ दो घण्टे तक खूब जोर जोर से चलने के बाद चित्त अधीर होने लगा, परन्तु वही पर महाधय मानो इन विशाल पर्वतो का रूप धारण कर उपस्थित था। इतने लम्बे पथ मे कही भी इतनी जगह न मिली जहाँ मैं पाँव फैला कर बैठ भी सकता था। उस समय का मन—मननशील मन नही—उपनिषद् प्रतिपाद्य ब्रह्म का सच्चा प्रतिनिधित्व करने वाला—एक विलक्षण मन, किसी प्रकार का द्वन्द्व उसमे नही था। एक लुब्ध मित्र जैसे अपने मित्र से पूछता है, वैसा ही प्रश्न कभी कभी उठता था कि कब तक चलता रहेगा। सर्पादिको के सरसराहट

के अलावा शेर तथा अन्य हिंसक प्राणियों के शब्द भी सुने। इस से मन मे भय और अभय के विपरीत प्रवाह उस समय सगम होकर मेरे मानस सर मे तरङ्गित थे।

बुद्धि मूक थी, अहङ्कार गलित था, प्राण शान्त थे, इन्द्रियाँ अचेष्ट थी। विश्व ब्रह्म की, जीव माया की खट पट नही थी। सब होते हुए कुछ नही था। दशा वैलक्षण्य की वास्तविकता का करोडवाँ अश भी व्यक्त हो सके, ऐसी सामर्थ्य लेखनी वाणी मे नही है।

आशा ही जीवन है, आशा देवी शक्ति प्रदान कर रही थी। आगे बढते कुछ मन्द मन्द प्रकाश दिखाई पडा। अनुमान हुआ अवश्य कोई गाँव है। उस गाव मे जाने के लिए उतरूँ कसे ? बीच मे एक नदी थी, उस पार गाँव था। यद्यपि नदी मे जल बहुत थोडा था, परन्तु अ धेरे मे वह बहुत डरावनी मालूम पडती थी। उस पार प्रकाश और इस पार पवत के उत्तुङ्ग शिखर के सहारे सहार दुबल, घायल, थकित तथा कम्पित पावो से मैं आगे को बढ़ता जाता था। कुछ ही दूर जाने पर बिल्कुल सीधी उतराई की एक सकीण बटिया मिली। उसी बटिया (रास्ता) के सहारे सहारे बठ बठ कर बहुत देर मे मैं नीचे नदी तट पर आया। पानी थोडा था, परन्तु बहुत ठण्डा मानो बरफ हो। पत्थरो के टुकडे बडे नुकीले थे। जीव जन्तु भी शब्द करते हुए इधर उधर कभी रास्ता काट कर, कभी दोनो पाँवो के बीच होकर तथा कभी पाँवो को स्पश करते हुए स्वच्छ द अन्धकारमय रजनी में विहार कर रहे थे। एक पथिक जिसके दुर्भाग्य तथा सौभाग्य का वणन करने मे सहस्र मुख शेष भी असमथ हैं, अज्ञात प्रेरणा से इस दुलघ्य माग का सहज समाधि की दशा मे पार कर रहा था। धन्य है दया ! प्रभू ! जब तुम बुलाते हो तो कोई बाधा उसे नही रोक सकती है। जसे तसे नदी पार करने पर कुत्तों की बडी भयानक आवाज सुनाई

पडने लगी। अब चित्त बिल्कुल ही किंकर्त्तव्य बिमूढ हो गया। हृदय से निकल पडा—"प्रकृति माँ क्या कुत्तो के द्वारा ही प्राणान्त होगा?" फिर हसी आने लगी। अकेले ही मानो विश्वात्मा के साथ अट्टहास हो रहा था। कभी कभी मन से पूछा, कहो मित्र! मरने से डरते हो? यार आज ही तो कसौटी है।

वही पर खडा होकर मैने जोरो से आवाज दी। हरि हर—सीताराम नारायण आदि भगवन्नामो का उच्च स्वर से चिल्ला चिल्ला कर कीतन करने लगा। उस समय गाव की माताएँ अपने गृह काय से निवत्त हो, एक विशिष्ट भाव से ग्राम बाहर मध्यरात्रि मे आयी थी। सम्भव है कोई त्यौहार हो। हिमालय प्रदेश मे ग्रीष्म का बडा सत्कार होता है। उन्होने घर जाकर अपने घर के पुरुषो से कहा कि कोई साधु बुला रहा है। वह कुत्तो के डर से ग्राम मे नही आता है। उस समय प्राय बारह से ऊपर समय था।

एक सज्जन लालटेन लेकर मेरे पास आए और मुझ से अनुरोध पूवक कहने लगे कि "आप बहुत थके मालूम पडते हो, अभी मेरे घर पर ही चलो, भोजन कर विश्राम करो, मैं तुमको सबेरे ही 'शतरुद्र' पहुँचा दूँगा।' मुझे विश्राम कहाँ? मैने हाँफते हुए उससे कहा कि "भैया! यदि तुमको कष्ट न हो मुझ शतरुद्र ही पहुँचा दो।" उसकी समझ मे ये बात आ गई और लालटेन लेकर आगे चला। प्रकाश मे चलने मे मुझे कुछ शांति मिली, अंधेरे के कारण काटो से छिद जाने से, एव पत्थरो की ठोकर से मेरे पावो से खून निकल रहा था, इसका कोई खेद नही, शतरुद्र के दशन से ही मैं सब भूल गया। माग के दुस्तर काठिन्य ने सहज विश्रान्ति का रूप धारण कर लिया। मैं और वह ग्रामवासी दोनो "हर हर महादेव" करते हुए सानन्द श्री आशुतोष भोलानाथ के मन्दिर मे प्रविष्ट हुए।

शतरुद्र

शतरुद्र बहुत प्राचीन स्थान है। अल्मोडा जिला में श्री श्यामा देवी के निकट यह पुरातन क्षेत्र है। इस प्रदेश मे इस स्थान की बहुत प्रतिष्ठा है। यहा पर दस बारह छोटे छोटे मंदिर हैं, तीस चालीस शिव लिङ्गो की स्थापना बिना मंदिर के ही है। और भी अन्यान्य देवी देवताओ की सुदर एव कलापूण प्रतिमाएँ बिराज रही है। एक धमशाला भी है। बाभ के पेड के नीचे पतली धार वाली एक जल धारा भी है, उससे कुछ दूर पर 'बावली' भी है। परन्तु सब पथिक लोग उसमे हाथ मुह धोते है, इस से जल कुछ गदा सा मालूम पडता है।

धारा का जल बहुत ही स्वादिष्ट है, जल के पीते ही मेरी सारी थकावट तथा भूख प्यास सब मिट गई। लालटन के प्रकाश मे मैने फिर से अपना कमण्डल भर कर जल रख लिया। रात्रि बहुत हो गई थी। अत उस ग्रामवासी को घर लौटा दिया और पुन जल पान कर, श्री भगवान को प्रणाम कर मंदिर के वरण्डे मे सो गया। कुछ देर ही मे मुझे नींद आ गई। कितना समय हुआ होगा, यह तो ठीक मालूम नहीं, परन्तु थोडी नीद अवश्य आई थी। उसी समय शिव नाम का कीतन करता हुआ एक ब्राह्मण जो वहा का पुजारी था, आया। बडा विह्वल होकर बोला—"महाराज! आप जल्दी बताओ क्या भोजन लाऊँ? जल्दी बोलो। प्रत्यक्ष भगवान् शङ्कर ने मुझे डाटते हुए कहा है, कि एक साधु भूखा है। भोजन कराओ। देखो मेरा दिल अभी तक धडक रहा है। यद्यपि मुझे भोजन की इच्छा नही थी, तथापि केवल पुजारी जी की सान्त्वना के लिए मैने कहा—

"रात बहुत हो गई है, यहाँ पर जो कुछ हो मुझे दे दीजिए, मैं खा लूगा। आप ग्राम से इतनी रात में कष्ट करके भोजन लाएँगे तो मै नही पाऊँगा। बडे सकोच से उस पण्डित ने कहा—"यहा तो कुछ भी नही रहता है।" वह बहुत रोने लगा और रुद्ध कण्ठ से बोला—"महाराज आप खाओ या नहीं ? मुझे तो अपने इष्ट श्री शङ्कर भगवान् की आज्ञा पालन करनी है।" म इस दृश्य से बडा चकित था। नीद सता रही थी, सारे शरीर मे, विशेष कर पाव मे अधिक दद हो रहा था। उसी समय मे यह शिव भक्त भी रोकर मुझे उस कष्ट से भी अधिक व्याकुल कर रहा था। बठे बठे मन ही मन भगवान सदाशिव से कहा—"तुम हम को कही शाति से नहीं रहने दोगे ? ऐसा भाव चित्त मे आते ही वह पुजारी बोला— 'महाराज आप बहुत थके हुए स मालूम पडते हो, सो जाओ।" मै सोने की चेष्टा ही कर रहा था कि वह पुजारी मदिर मे गया। वहाँ उसके पाँव से एक पोटली टकराई, अधेरे मे उस पोटली को टटोल कर देखा तो उस मे आटा था। हर्ष से वह नाच उठा। तुरन्त ही उसने चीड की लकडी की आग जलाई और बिना तावे के ही रोटी बनायी, वही आश्रम की पत्तियो का साग बनाया। जिस समय पण्डित रोटी बना रहा था, उस समय उसको मैंने मना किया कि यह भोजन तो कई आदमियो के लिए है। परन्तु पुजारी ने यही निश्चय किया कि जो भगवान के द्वारा प्राप्त हुआ है, उस सब सामान को बना ही लिया जाए।

भोजन बन चुका, रात्रि अत्यधिक हो जाने के कारण भगवान् को मानसिक भोग धराया गया, पश्चात मैंने प्रसाद पाया। जैसे जीवन मे आज का मा कभी चला नही था, उसी प्रकार आज का सा भोजन भी कभी नही किया था। भोजन केवल स्वादिष्ट ही नही, असीम भी था। भोजनोपरान्त रात मे मैं तो

मंदिर के पास ही खुली जगह मे सो गया और पुजारी शेर के भय से बंद कमरे वाली धर्मशाला मे सो गया। उसने मुझसे भी डर की बातें बहुत कही, परन्तु मुझे तो उस समय एक विचित्र भाव-मद चढा हुआ था, जहाँ इन बातो के सोचने का समय ही नही था। स्वप्न भी बडे सुंदर सुंदर आए।

प्रातःकाल बहुत से भावुक दर्शनार्थी एकत्रित हो गये। इस तीर्थ मे लोग स्वयं व ब्राह्मणो द्वारा जप पाठ तथा अभिषेकादि करना एवं करवाना अधिक श्रेयस्कर समझते है। पुजारी तथा अन्य विद्वान ब्राह्मणो ने मुझे रोक लिया। मध्याह्न काल मे मैं भोजन प्रसाद पाकर चला। यद्यपि स्थान सब प्रकार से सुखद था परन्तु मेरे लिए अनुपयुक्त था। इसी कारण से केवल एक रात भर वहा विश्राम कर आगे को बढा। प्राय दो मील चल कर पीछे को देखा। पीछा देखना सहेतुक था, बहुत गहरी तथा वेगवती नदी को एक पतली सी पुरानी लकडी के ऊपर चढकर पार करना था। वहाँ के लोग तो ऐसे पुल पर चलने मे अभ्यस्त होते हैं, परन्तु मेरे तो ऐसी जगह पर पाव काँपने लगते है। पूर्व मे कैलाश यात्रा मे, ऐसे प्रसङ्ग बहुत आये थे। भय और प्रतीक्षा के साथ जब पीछे मुडकर देखा तो वही पुजारी हँसते हुए खडे थे, जिनको मैं शतरुद्र के शिवालय मे छोड आया था।

उन्होने बडे प्रेम से कहा—तुम्हारे चले आने पर मेरा मन वहाँ पर नही लगा, अब मैं कुछ दिनो तक तुम्हारी सेवा मे रहूँगा। मैंने उसे बहुत समझाने की चेष्टा की, परन्तु उसने मेरी एक भी बात नही मानी। शीघ्र ही आगे झपट कर मेरे हाथ से बालटी तथा कुछ वस्त्र ले लिए, और सहर्ष आगे बढते हुए बोला—'तुम मेरे पीछे आओ, आगे मैं तुम्हारा हाथ पकड लूगा।" सामान न रहने से मेरे दोनो हाथ खुले हो गए, काँपते हुए मैं भी उसके पीछे पीछे पार हो गया।

विकट जगल के रास्ते से हम दोनो जा रहे थे। पग पग पर प्राण घातक आपत्तियो का सामना करना पडता था। एक बहुत बडा बट वृक्ष मिला, वहाँ पर कुछ देर बठकर, जल पीकर आगे बढा। रास्ते मे हिमालय सम्बन्धी, विशेषतया स तो के विषय मे, बातें होती जा रही थी। मैंने पुजारी से उनका नाम पूछा, उसने अपना 'राध' नाम बताया। नाम सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई और जब तक वह मेरे साथ रहा मै उसे इसी पावन नाम से सम्बोधन करता रहा। मैने कहा—"राधे! यहा सबसे नजदीक मोटर कहा मिलेगी? मै बहुत थक गया हूँ, अब मुझे चलने मे कष्ट होता है, इसलिए अब मैं श्री बद्रीनारायण की ओर जाऊगा।" उसने शीतला खेत मोटर रोड बतलाया। मोटर रोड तो है, पर तु सर्विस नही है। वहाँ प्राइवेट कार तथा ट्रकें आती है।

राधे की बात सुनकर मन मे आया कि शीघ्र ही शीतला खेत चलू, और मोटर पकडकर हलद्वानी होते हुए हरिद्वार चला जाऊगा। इतने दिनो के विचार क्षण मे बदल गये। इसी कारण मैं अपने सम्बन्धियो से प्राय बार बार कहा करता हूँ, कि श्री प्रभुजी के करुणावतार का पावन प्राकट्य होना ही था। आज के अविश्वास तथा पूण भौतिक अभ्युदय के समय मे चाहे उसका परिणाम विनाशात्मक ही क्यो न हो, श्रेय सूय को सबल तेज प्रदान करने के हेतु, यह विचित्र असभव सा प्रतीत होने वाला अनुपमेय लीला वि यास हो रहा था।

"राध" को समझाकर मैंने कहा—"मैं अब शीतला खेत जाता हूँ, और तुम अपने घर को जाओ। अब मैं इस प्रदेश मैं नही रहूँगा।" राधे ने अगुली के इशारे से मुझे बताया कि सामने जो पाँच सात सफेद मकान दीख रहे है, यही शीतला खेत है। यहाँ से चार मील होगी। मैं उसी ओर चलने लगा।

परन्तु 'राधे' मेरे बिछुडने से बहुत दुखी हुआ, उसको समझाने के लिए मैं भी उसके पास बठ गया। कुछ सत्सग की बातें हो ही रही थी कि सहसा राधे ने हाथ जोडकर कहा—"महाराज। इस पवत की चोटी पर 'स्याही माता' का बडा पवित्र तथा पुरातन स्थान मदिर है, इसका दशन अवश्य करना चाहिए। मैंने भी बहुत दिनो से दशन नही किये हैं, आज हम दोनो 'माँ' के दशन करेंगे। मेरा मन तो इस समय दशन पूजा पाठ तथा सत्सग आदि सभी कर्मों से अलग था। मन मे तो एक ही धुन लगी थी, जसे हो, श्री भगवान के पूण साक्षात्कार—पूण तल्लीनता, प्राप्त हो। इसलिए मैने उसे कुछ उपेक्षा लिए हुए कहा कि हम लोग तीथ स्थानो के दशन करते ही रहते हैं। इतनी चढाई पर कौन चढे। मेरा शरीर भी दुबल है। यह सुनते ही राधे हँस पडा क्योकि आज १० दिनो से मैं शरीर की ओर दुर्लक्ष्य किये हुए था, तथापि कृपा से किसी को यह प्रतीत नही होता था कि मेरा जीवन इस प्रकार का है। उसके हँसने का यही कारण था। 'तुम तो हृष्ट पुष्ट साधु हो, तुमको चढने मे जरा भी कष्ट नही होगा।" ऐसा कहकर वह चुप हो गया। उसके इस अकारण आग्रह को मैंने 'मा' की ही कृपा समझी और शीघ्र ही दशन हेतु 'राधे' के पीछे चल दिया। रास्ता तो बहुत कठिन चढाई का है, परन्तु मै बहुत आसानी तथा थोडे समय मे ही ऊपर चढ गया। जैसे 'माँ' की गोद मे बच्चे हँसते रहते है, और उनकी माता उन्हे आराम से गोद में बैठाकर स्वय परिश्रम करती रहती है। उसी प्रकार मैं भी करीब तीन मील की सीधी खडी चढाई को हँसते हँसते पार कर गया। यह कोई अत्युक्ति नही है कृपा की सत्य अनुभूति है।

श्री श्यामा देवी

स्याही देवी (श्यामा देवी) पौराणिक प्राचीन तीर्थ है। यहा पर श्री भगवती की तान्त्रिक पद्धति से पूजा अर्चा होती है। गृहस्थी गोसाई लोग यहाँ के पुजारी हैं। नौ हजार फीट की ऊँचाई पर, बिल्कुल शिखर पर, श्री भगवती का भव्य मन्दिर है। इस समय जीर्णावस्था मे है, ऊपर चोटी पर ही एक 'बावडी' भी है। देखने मे उसमे थोडा जल दीखता है, परन्तु उसका पानी कम नही पडता है, चाहे जितनी गरमी पडे वा कितने ही जन समुदाय एकत्र हो। अनेको प्रकार के खाद्यान्न भी वहाँ पैदा होते है। शीत तो अधिक है ही। यहा के दर्शन से मुझे कुछ शान्ति मिली। पुजारी के आग्रह से मैंने रात मे भोजन लिया। बहुत सी लकडी जलाने को रख गये। उन्होने बहुत आग्रह से कहा—"यदि खुली जगह मे रहो तो आग जरूर जलाना, ठण्डी से ज्यादा भय यहा पर शेरो का है। यदि भूल से हमारे गाय बैल आदि जानवर बाहर रह जाएँ तो उनका जीवित मिलना असभव है। ऐसा समझाकर वे घर चले गये और मैं भी कुछ रात बीतने पर सुख पूर्वक सो गया।

ऐसी नीद बहुत दिनो के बाद आई। 'माँ' की गोद मे तो सुख ही है। प्रात काल स्नानोत्तर श्री 'माँ' के दर्शन किये तथा भोजन प्रसाद लेकर धूप मे एक शिलाखण्ड पर बैठा था। कण्ठस्थ श्री दुर्गापाठ के श्लोको का मनन सा कर रहा था। उसी समय एक व्यक्ति सस्कृत मे 'माँ' की स्तुति करता हुआ आया। श्रद्धा पूर्वक स्नान पूजन पाठ तथा 'माँ को नवैद्य धराया। मुझको भी प्रसाद मिला। उस पण्डित से धीरे धीरे

शास्त्र चर्चा होने लगी। कुछ देर के बाद, दिन के करीब बारह बजे वे ब्राह्मण बोले—"मैं तो जा रहा हूँ, आपका क्या विचार है।" मुझे भी वहा से जाना ही था यहा पर भी पुजारी लोग स्नेह भाव दर्शाने लगे। जब तक वहा रहा दूध दही चाय एव फल मिष्ठान्नादि लोग लाते ही रहे। मेरे मना करने पर भी धूनी खूब प्रज्वलित हो रही थी। मैंने उन ब्राह्मण देव से कहा कि मुझ श्री बद्रीनारायण की ओर जाना है, पर तु मोटर यहा नही मिलती है। इसलिए आप विद्वान हैं, मुझे ठीक ठीक पग रास्ता बताओ! उन्होने अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं अध्यापक हू, आपको एक नकशा बना देता हूँ, जिसके द्वारा आप बिना किसी से पूछ ताछ किये ही हल्द्वानी पहुच जाएगे। माग ही मे "द्रोणा गिरि" भी पडेगा। वहाँ पर भी 'मा' के दशन हैं। रामायण मे द्रोणाचल का प्रसङ्ग आता है, अत वहाँ के दशन की भी इच्छा हुई। राधे को घर लौटा दिया, और मैंने नकशा लेकर करीब दो बजे श्री श्यामा 'मा' के दशन कर अपना रास्ता पकडा। शीतला खेत तक वे अध्यापक भी साथ साथ मेरा वस्त्र तथा बालटी लिए हुए आए, यहाँ से शीतला खेत तीन मील (उतार का रास्ता) है। हिमालय मे प्रकृति सौ दय का कहना ही क्या? विशेष रूप से ऐस स्थल तो मानो शोभा एव सुश्री के चिरस्थायी स्थान ही हैं। पर तु मेरा मन तो "सत्य शिव सुन्दरम" मे लगा था। इस परिणामी सौ दय के प्रति आकषण नही था। मन मे माँ से प्राथना कर रहा था। 'मा विश्व मे इतने वक्ष खडे हैं! क्या मेरे विश्राम के लिए स्थान कही नही है?" ऐसे ही अपनी "माँ" से लडते झगडते एव कभी हँसते हुए बडे सुख पूवक शीतला खेत आया।

शीतला खेत

यहाँ पर दस पद्रह दुकानें हैं। अ० भा० स्काउट सस्था का यह के द्र है। उसी सस्था की ओर से यहाँ एक स्मारक भवन भी बना है। यहा के प्रतिष्ठित तथा वयोवद्ध व्यक्ति थे —श्री शिरोमणि पाठक, मेरे ऊपर उनका बडा उपकार है। सिद्धाश्रम की सूचना ही नही प्रत्युत् बहुत आग्रह से मुझे उन्होने "इस भूमि" के दर्शन के लिए अनुरोध किया।

मुझे आते देख कर वे कुर्सी पर से उठ गये। पिताजी! पिताजी!! कह कर वे इतने विह्वल हो गये, जैसे कोई परम एकान्तिष्ठ स्नेही सहसा मिल गया हो। उन्होने मुझे कुर्सी पर बठाकर अपने बाग का सेव, नासपाती, खुमानी तथा और भी कई प्रकार के मधुर मधुर फल खिलाये। सूर्यास्त होने वाला था। मैंने नम्रता पूवक कहा कि "अब मै जाता हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरी बात उन्होने सुनी ही नही। मेरे साथ मे जो अध्यापक थे, उनको कुछ डाँटते हुए शिरोमणि जी बोले—"तुम को जाना हो तो जाओ। महात्मा का साथ क्या? आज तो बाबा यही रहेंगे। वह व्यक्ति कुछ देर विश्राम कर चला गया और मै उसी भावुक वद्ध से सलाप करने लगा। स्थान मुझे प्रिय लगा। दो मँजिले मकान के बरामदे मे हम दोनो बाहर बठे थे। सामने उत्तुङ्ग हिम मण्डित शिखर, विविध नामो से युक्त अपनी श्री शोभा बढा रहे थे। शिरोमणि जी को लोग भगवन् कहा करते थे। भगवन् का स्वभाव विलक्षण था। भावुकता मे वे कभी रोने, हँसने तथा नाचने लगते थे। उस दशा मे देश काल का कोई नियम नही। सायङ्काल हो ही रहा था। भोजनो

परान्त मुझ से थोडी दूर पर भगवन बठे । वे हुक्का भी पीते थे, दो चार हुक्के की घूट लेकर म द म द मुसकाते हुए भगवन् बोले— 'आपको मालूम है जहा पर आप बठे हैं यह स्थान कौन सा है ?" मैं तो कुछ नही समझ सका, पर तु स्वत भगवन फिर बोले—"प्रथम—सव प्रथम—भगवान श्री हैडाखान वाले बाबा जब इस ओर आए थे तो यही पर श्री चरण कमल रखा था ।" ऐसा कहते कहते वे भाव विभोर हो गए। मैंने समझा ये साधु स तो के भक्त है, जब मेरे जसे का भी इतना आदर सत्कार करते है, तो हिमालय के महापुरुषो के प्रति ये आदर स्वाभाविक ही है । यहा तो सिद्ध सिद्धेश्वर गण निवास करते हैं, अत उनके प्रति अधिक श्रद्धा हो तो कोई आश्चय की बात नही । इसी विचार से मैंने उनकी बातो पर विशेष ध्यान नही दिया, पर तु वे मेरे ध्यान को आकर्षित करते हुए पुन बोले— "वे साक्षात् भगवान् थे । मै अपढ हूँ, फिर भी कविताए मैंने अब तक आपको सुनाई हैं, ये उ ही महापुरुष की कृपा का फल है । एक गरीब ब्राह्मण के घर मेरा ज म हुआ, यहा मै फूस की छोटी झोपडी मे चाय की दुकान करता था । पर तु आज इसी शीतला खेत मे कई बाग, बहुत सी दुकानें तथा अनेको मकान खडे है । ये सब उ ही महापुरुष की कृपा है। और क्या कहू ! उन्होंने मुझे भगवान के दशन कराए ।" भगवद्दशन की बात सुनकर मुझे भी उत्सुकता बढी । भगवन से प्रेम पूर्वक कहा कि उनके विषय मे कुछ और सुनाओ। भगवन् तो सुनते ही रो पडे । पश्चात गद गद कण्ठ से कहने का प्रयास किया। विह्व लता अधिक होने के कारण काफी देर मे वे स्वप्रकृतिस्थ हुए । मैंने फिर वही अपनी जिज्ञासा प्रकट की उनके विह्वल स्वभाव ने मुझ मे यह निश्चित भाव पदा कर दिया कि जिन महापुरुष के विषय मे ये जो कुछ कहना चाहते हैं, वे सब बातें इनकी

आखो देखी सत्य हैं। भगवन फिर स्वरचित पद्य गाने लगे, जिसका भाव यह था कि "हे बाबा ! तुम हमको छोडकर चले गए। मैं अकेला (अडवगा) इन कलियुगी जीवो मे पडा हूँ।" उनके ये भाव पूण शब्द सुनकर मैं भी कुछ काल के लिए अस्थिर होगया, "विरही की गति विरही जाने' वाली उक्ति चरिताथ हो रही थी। हम दोनो उस पावन काल मे, निस्तब्ध निशा मे, एक अपूव भाव लहरी मे बह रहे थे। भगवन मेरी ओर देखकर कृत्रिम हँसी हँसने लगे, जिससे मै भी हँस पडू।

ऐसे ही कुछ क्षण मूक रहने के बाद भगवन् ने श्री महाराज जी का अलौकिक—अश्रुतपूव चरित्र सुनाना आरभ किया। मैंने पूछा सबसे पहले श्री महाराज जी के दशन आपको कसे हुए ? यह प्रश्न सुनते ही भगवन् फिर रोने लगे। मैंने उन्हे समझाया। स त तो सवत्र ही रहते हैं। आज भी वे यही हैं। भगवन् आप उनका यशोगान मुझे भी सुनाइए। अब मुझे सुनने की तीव्र इच्छा हो रही है। सबसे प्रथम भगवन ने इस घटना से कहना प्रारम्भ किया। मेरे चाचा ने प्राण छोडने से एक घण्टा पूव कहा—"अरे देखो ! कितनी कृपा है ! मेरे उद्धार के लिए श्री हैडाखान वाले बाबा यहा आये है। आसन दो, पूजा करो।" उपस्थित ब धुवग इसे सन्निपात का प्रलाप समझ रहे थे पर तु उन्हे दिव्य शरीर का दशन देकर मुक्त कर रहे थे मोक्ष दाता सदाशिव। भगवन ने कहा कि उसी क्षण से मुझे भी दशनो की उत्कण्ठा हुई। कुछ धुन सी लग गई। कैसे इनका साक्षात्कार हो। उनके पावन अत्यद्भुत चरित्रो को उन्होने सुना था, पर तु दशन का सौभाग्य अभी तक नही हुआ था।

एक दिन अचानक दो ढाई सौ आदमी उनके यहाँ आ गए। उस जन समूह मे दो चार डोलियाँ भी थी। एक सुन्दर डोली मे, जिसे बहुत से सभ्रान्त व्यक्ति बडे शिष्टाचार तथा श्रद्धा से

कर बद्ध घेर हुए थे, कुरता टोपी धारण किए परम कारुणिक श्री म मुनी द्र स्वाभाविक म द स्मित वदनारविन्द द्वारा वहाँ चेतन अचेतन को कृनाथ कर रहे थे। शिरोमणि जो उस समय एक भयानक विषाक्त व्रण से पीडित थे। श्री प्रभु का आगमन सुनते ही हर्षोन्मत्त हो दौड पडे। लकडी की सीढी से पाँव फिसल गया, व्रण मे लकडी चुभ जाने से धरती पर मूच्छित होकर गिर पडे। लोग चिन्तित थे परन्तु शिरोमणि दयामय सर्वेश्वर की जघा पर ब्रह्मर्षियो की समाधि को लज्जित करने वाली परा शान्ति सुधा का पानकर कृत कृत्य थे।

वहा कुछ घण्टो तक विश्राम के बाद श्री महाराज जी तथा समस्त भक्त गण, जिनकी सख्या कुछ ही देर मे सहस्रो तक पहुच गई, आगे को चले गए। श्री महाराज जी का कोई निश्चित कार्य क्रम नही बनता था। जहा जहाँ श्री महाराज जी जाते थे, वहाँ ही बिना आयास तथा किसी प्रकार के सकेत के सहस्रो स्त्री पुरुष एकत्र हो जाते थे। उनके आगमन का समाचार सुनकर विरले ही व्यक्ति घर मे रह सकते थे। वहा कोई प्रश्नोत्तर नही कर सकता था। दर्शन मात्र से ही चित्त प्रशान्त हो जाता था। कितने ही महामहोपाध्याय, राज्य मन्त्री, महान समाज सुधारक एव देश सेवी तथा राजा नवाब आते थे।

उपदेश का चरम फल, साधन का सर्वस्व स्वत्व, साध्य का सहज साहचर्य तथा ब्रह्म वेत्ताओ की ब्राह्मी स्थिति, पूज्य उपस्थिति मे सब के लिए सदव समान सुलभ थी। सदव सुस्मित मुख, सकरुण नेत्र, उदार व्यवहार, कृश गात्र, बाल सुलभ चेष्टा, कुरता टोपी धोती वस्त्र, ये आंगिक दिव्याकर्षण सब के लिए परमानन्द दायक थे भोजन मे अन्न बहुत कम लेते थे। छाछ विशेष पीते थे, भगवन ने बताया कि माघ के महीने मे जब कि तीन फीट तक बर्फ यहा पडती है, उस

समय श्री महाराज जी के लिए मुझे घर घर से छाछ माग कर लाना पडता था। छाछ को वे पानी जसे पीते थे। उनके मल मूत्र मे एक दिव्य ग ध थी, एक दो घण्टे ही मे मल मिट्टी हो जाता था। वे जब अपनी हथेली खोलते थे तो सहस्रो उपस्थित भक्त वृ द एक दिव्य ग ध मे मस्त हो जाते थे। उनके बाल नही बढते थे। वे सोते नही थे। छ मास तक शिरोमणि जी निरन्तर साथ रहे परन्तु उसने कहा कि मैने उनको सोते नही देखा। हा! सिद्धासन के अलावा वे कभी गौ मुखासन भी लगा लेते थे। वस्त्र ओढा दिया तो ओढ लिया, नही तो उन्होने न कभी वस्त्र मागे और न वस्त्र उपस्थित होने पर भी कभी उप योग किया। भक्त लोग बहुत कीमती वस्त्र, स्वण मुद्रा तथा अ याय बहुमूल्य वस्तुए भेंट करते थे। आप उन अर्पित वस्तुओ को देखते भी नही थे। हा! भक्त मनोरजनार्थ कभी कभी बालक के समान दस पन्द्रह मिनटो तक उन वस्तुओ से खूब खेलते थे। फिर कुछ हो, कोई ले जाए, आप कोई प्रब ध नही करते थे। मिट्टी और बहुमूल्य पदार्थ सब समान ही थे। शत्रु-मित्र, नि दक प्रशसक, पापी पुण्यात्मा उनकी दयामयी दृष्टि मे सब दया के समान अधिकारी थे। भगवन् ने अपनी आँखो देखी महान् अदभुत, अलौकिक तथा अश्रुत पूर्व घटनाएँ सुनाइ। मैं सुनते सुनते, अपने स्वभाव के अनुसार, कभी कभी विस्मित हो जाता तो शिरोमणि जी अपने धर्म, शरीर, पुत्र तथा सवस्व की शपथ खाकर कहते थे कि "मैं एक अक्षर भी असत्य नही कह रहा हूँ।" उस समय मेरा हृदय भी, जो श्रद्धालु नही है, इन अवतार के अदभुत चरित्रो को परम सत्य मानने के लिये बाध्य हो जाता था। उनके साथ घण्टो तक समागम होता रहा। मैं यह भी उस समय सोचता था कि मुझे तो इस समय कोई प्राथना, जप, पाठ तथा कथा वार्ता प्रिय नही लगती है। परन्तु

ये चरित्र कितने प्रभावशाली है। ये कथा तो मुझे बरबस अपनी ओर खीचे लिये जा रही हैं। भगवन की कथाओ का सार यही था—"श्री हैडाखान वाले बाबा ईश्वर थे। ये अवतार सवथा विलक्षण है। षडैश्वय जसे भगवान् मे स्वाभाविक रहता है, वसी ही इस श्री विग्रह मे सवशक्तियो का आश्चयजनक आश्रय है। उ होने असरय बार अपने चम चक्षुओ से ही देखा कि मृतक को प्राणदान दिया गया, निरक्षरो को वाक्पटुता तथा आशु-कवित्व रचना शक्ति मिली। निस्स तानो को पुत्र प्राप्त हुए। आर्थिक सकट ग्रस्त मानव योग क्षेम के वरदान से सनाथ हुए। दवी सुख के इच्छुक सिद्धिकामी साधको की सकल सिद्धियाँ अनुचरी बनी। रोगग्रस्त विविध ताप सन्तप्त प्राणियो को महारोग्य अक्षय शान्ति का लाभ हुआ। वे मुमुक्षु गण मोक्षार्थी साधक, भारत तक के ही नही यूरोप तथा तिब्बत के सिद्ध लामा योगियो के समुदाय ने इस अभय तथा उदार शरण मे आकर स्वाभीष्ट साक्षात्कार किया। भिन्न भि न विचार धारा के सभी धम सम्प्रदायो के महान् महान् साधको ने सिद्ध प्रभु चरणाश्रित हो मनोरथ पूण किये।" शिरोमणि जी के सत्सग का सक्षिप्त सार यही है। वे बार बार शपथ खा खाकर बड विह्वल भाव से ये घटनाएँ सुनाते थे। रात बहुत बीत गई थी। भगवन् ऊपर सोने गये और मै वही पर 'गुरुदेव' का स्मरण कर सो गया। जब तक नीद नही आयी तब तक ऐसा विचार मन मे चल रहा था—ससार मे सभी प्रकार के सन्त देव है। मुझे मा या भगवान्—इन ईश्वर प्रतिपाद्य तत्वो से सदैव के लिए अखण्ड सम्ब ध स्मृति हो। मैं इष्ट स्वरूप ही में अहर्निश मग्न रहूँ। ये महापुरुष अवश्य ही भगवान है। रामायण तथा महाभारत मे ही एसी अलौकिक घटनाओ का वर्णन है। आज इस पृथ्वी पर ऐसे शक्तिमान तथा ऐसे दयावान

स्वभाव कहीं देखने, सुनने को नही मिलते है। तथापि मेरे इष्ट तो नही हैं? भगवान् की बडी कृपा हुई जो आज ऐसे व्यक्ति का समागम मिला जिसने भगवान् का उच्छिष्ट पाया है। उन 'अपाणिपाद के चरण दबाये हैं। अहा! मेरे जीवन मे कितना वलक्षण्य है? कभी दुख कभी सुख।

आज हलद्वानी से चले ग्यारहवा दिन है परन्तु ऐसा आव देखा सुन्दर दिव्योपाख्यान श्रवण का सौभाग्य इस यात्रा मे ही नही, जीवन मे भी कदाचित ही प्राप्त हुआ हो। बारम्बार हाथ जोड कर श्री बाबाजी महाराज को प्रणाम किया। प्रथम तो मैंने उस निस्तब्ध निशीथ मे मानसिक प्रणाम किया किन्तु सन्तोष नही हुआ। फिर खडा होकर प्रणाम किया, उस समय सन्तोष हुआ कि श्री भगवान नें मेरी नमस्कार स्वीकार कर ली है।

हृदय में यह स्पष्ट ध्वनि हो रही थी कि ये तो भगवान् हैं। इतनी शक्ति और इतनी दया तो किसी अवतार ही मे सम्भव है। ओहो! उनका रहन सहन कितना सरल था। इतने महान् होने पर भी कैसे साधारण जनो मे अपने भगवदश्वय—महानता छिपाए हुए दया वश हो, अपयात गुण युक्त जीवो का समुद्धार कर रहे हैं, ऐसे विचार करते करते मै सो गया। प्रभात के समय मे ही भगवन् मेरे पास आये और मेरे लिए दूध भेजा। पुन श्री महाराज जी की चर्चा होने लगी, आज का प्रसग था कि सिद्धाश्रम की स्थापना कसे हुई। बात करते करते कुछ भावावेश मे भगवन ने कहा—"आपको जाना तो है ही, यहाँ से चार फर्लाग की दूरी पर (उतार मे) श्री बाबा महाराज का आश्रम है। वही पर जल की धारा है।" एकान्त स्थान तथा पूज्य श्री बाबा के प्रति श्रवण जन्य श्रद्धा उत्पन्न होने के कारण मुझे भी इस पुनीत क्षेत्र के दशन की इच्छा हुई। शिरोमणि जी

ने कहा कि मैं अपने लडके को साथ कर देता हूँ, परन्तु वह लडका सवेरे सवेरे बिना प्रयोजन आश्रम मे जाने से कुछ आलस्य अनुभव कर रहा था, अत मैंने भी उससे शीघ्रता के लिए नही कहा। इतने ही मे आश्रम का पुजारी वहा स्वय ही आ गया, मैं तो उसे नही पहचानता था परन्तु भगवन् हर्ष विह्वल होते हुए बोले—"बाबा आपको स्वय ही बुला रहे हैं।" यह पुजारी आश्रम का ही है। पुजारी से पूछने पर पता चला कि वह अकारण ही ऊपर आया था। उस पुजारी का तो कुछ काम था ही नही, अतएव मेरा सामान पुजारी को भगवन ने दिया और बडी श्रद्धा से कहने लगे—"इनको अच्छी तरह आश्रम में रखना। आज बहुत दिनो मे मुझे सन्त दर्शन हुए हैं।"

सिद्धाश्रम

पुजारी के साथ साथ मैं आश्रम में आया। आश्रम का सौन्दय कवि कलाकार भी वणन करने मे अपने को असमथ पायेगा। आश्रम मे एक बगलानुमा धमशाला है। श्री वष्णवी भगवती का एक मन्दिर है, जल की अविरत प्रवाहिनी एक धारा है और उसी के पास एक छोटा सा सन्त कुटीर है। गौ शाला भी है। सबसे ऊँची जगह पर एक और कुटीर है। वहा से न दा कोट, बद्रीनारायण, नीलकण्ठ आदि बड बडे गौरवशाली हिम-शिखरो के दशन होते हैं। उस कुटी के दोनो पाश्व भाग मे कुछ दूर हट कर दो नर नारायण नाम के देवदारु के वृक्ष हैं। पुजारी ने मुझे इसी मे आसन लगाने को कहा। यद्यपि इस कुटी मे कोई साधु वा अन्य यात्री नही रह सकता है। इसमे तो केवल श्री महाराज जी के चित्र, उनकी माला, दुर्गा विष्णु सहस्रनाम गीता की पुस्तके और पूजा अर्चा का ही सामान रखा रहता है। और किसी को कोई उपयोग का अधिकार नही है। परन्तु देव की दया से, जाते ही पुजारी ने ताला खोल दिया। भीतर जाकर मैंने दशन किए, प्रणाम किया। सहसा चित्त उद्विग्न हो गया। यह क्या? ये चित्र तो मेरे गुरुदेव के हैं, जिन्होने मुझे कृपा कर बहुत पूव विद्यार्थी जीवन मे ही अपना लिया था। फिर शङ्का हुई! ऐसा तो नही कि इनकी महिमा से आकृष्ट दृष्टि से ये सन्त मुझे अपने गुरुदेव जसे प्रिय एव पूज्य लगते हैं? प्रश्नोत्तर का सागर बन गया मेरा अन्त करण। पूव मे अति अल्प काल का प्रभु समागम मुझे मिला। बिलकुल इस विषय से दनन था। मेरी अवस्था भी थोडी थी। यद्यपि थोडी आयु से

ही इस प्रकार का चि तन अवश्य था ! कभी सोचता की भग वान् ने भक्त ध्रुव को कितनी छोटी ऊमर मे दशन दिये ! मेरी आयु तो अब बहुत हो गयी है । ऐसे जीवन से तो गगा मे डूब कर मरजाना अच्छा है । मेरे जीवन के प्रारभ से ही सघष का पूरा सहयोग रहा है । शरीर छोटा पर तु मन के सकल्प बडे थे, शास्त्रीय विद्या का अभाव कि तु परा विद्या के प्रति अत्युत्कट जिज्ञासा—

"सा विद्या या विमुक्तये ।"

(विद्या वही जो मुक्त करे) ।

अ यथा वह विद्या विद्या कहलाने के योग्य नही । ये भाव मैं अपने लघु सहपाठियो के समक्ष खूब जोर से—अधिकार पूवक कहता था । कभी विवाद मे ऐसा भी कहता था कि महर्षि गौतम से पूव कौन न्याय शास्त्र था ? महर्षि पतञ्जलि ने कौन योग शास्त्र पढा था ? जिसने योग दशन की रचना की । महात्मा ईसा ने कौन सी बाइबिल पढी थी ? जो बाइबिल की रचना कर विश्व के असख्य प्राणियो का ल्याण किया । गुरु नानक देव ने लौकिक दृष्टि से कौन ग्र थ पढ़कर ग्रन्थ साहब जैसा ग्र थ मानव समाज को दिया । सभी विद्याओ मे निष्णात होने पर भी तथा गत शक्य मुनि को शान्ति नही मिली । पुन कौन धम शास्त्र का अनुशीलन करने के पश्चात् वे भगवान् बुद्ध के नाम से विख्यात हुए और 'धम्मपद' जैसा सरल सुबोधमय शिक्षाओ से पूण पुस्तक प्रदान किया ।

ऐसे ही सघष काल—पर तु बाल्यावस्था मे ही प्रभु ने अ ा नाया । मैने इनके योगश्वय को नही समझा, केवल—श्रद्धालु धर्मात्मा माता पिता के प्रभाव से यह भाव चिरसुस्थिर था, ज मो तक यह भाव अटल रहेगा । जो मुझे मिल गये । जिन को

मैने गुरु बना लिया। जो मेरी धारणा मे कृपा कर आ गये हैं, वे ही मेरे एक मात्र उपास्य रहेगे। वे ही इस जीवन के कणधार रहेगे। अस्तु ! चित्र की तरफ से चित्त नही हटता था। विषाद और प्रसाद का सुमधुर दद चल रहा था। आज मेरी यात्रा का बारहवा दिन है। अषाढ कृष्णा प्रतिपदा को मैने एक समय भोजन ले लिया। विचार तो आज से ही अनशन करने का था, परन्तु स्नान तथा नित्यकम से निवृत्त हो जब में भीतर कोठरी मे सो रहा था। उसी समय श्री महाराज जी द्वारा सस्थापित श्री वष्णवी देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा—'भया मै भूखी हूँ।' यह सुनते ही मैं रो पडा और मै पूण जाग्रत हो गया। पुजारी से पूछने पर पता चला कि वास्तव मे यहाँ पर वष मे जब कभी हीभोग नवेद्य धराया जाता है। उसी समय 'माँ' को प्रसाद धराया और मैंने भी अनशन का विचार त्याग कर 'मा' का प्रसाद पाया। अहा ! दयामयी मेरी अम्बा अखिल ब्रह्माण्ड की अम्बा तू भूखी नही है। पर तु मुझ जैसे बालक की क्ष धा तेरी ही क्ष धा तो है। 'मा' प्राणि मात्र के हृदय मे तू ही तो क्ष धा रूप से विराज रही है।

श्री महाराज जी से मेरी यही प्राथना थी, 'प्रभो ! आप भगवान् हैं। यह भाव हृदय में जम गया है। इतनी देर क्यो लगाते हैं। मैं तो केवल अहकारी मिथ्याऽहकारी हूँ। तप करना—अनशन करना क्या मेरे जसे के लिए कभी भी सभव है। यदि मेरा आपका कोई सम्ब ध नही है तो प्रकट होकर कह दीजिए कि तेरी धारणा गलत है—झूठ है। और यदि आप मेरे गुरुदेव है तो दशन दे कृतार्थ करें।' बस ! उस समय मेरा यही महाम त्र था। अ य ध्यानजपादि मे मन नही लगता था। शनिवार को मैं आश्रम मे आया था, शनि, रवि तथा सोमवार तक तो मैंने जैसे तसे समय काटे। तीनो दिन एक एक समय

भोजन लिया। (नीद तो खूब आनी ही थी। ये कृपा प्रभु अपनी ओर से कर रहे थे।) सोमवार को तीज की रात मे मैं कई बार उठा। निभय हो आश्रम मे घूमता रहा, और घूम फिर कर पुन कुटी मे आ जाता था। यह क्रम बहुत देर तक चलता रहा। मन से कोई प्रश्न करता था। "ऐसा समय काटना क्या? श्री भगवान् मिलकर भी मुझे भुला रहे हैं। अब तो उनके बिना रहा नही जाता है।" अरे मन! 'या तो बिल्कुल भूल जा, चल ससार के सुख ऐश्वय मे तुमको रख दू। अथवा प्राणो की बलि प्रियतम के श्री चरणो पर कर दें।' मन ने यही निश्चय किया कि कल से आमरण अनशन करूगा, जब तक श्री महाराज जी इस सशय का उच्छेदन नही कर देंगे।

अहा! आज का मगल दिन वास्तव मे ही हमारे लिए महा-मागलिक दिन सिद्ध हुआ। चतुर्थी तिथि—श्री गणेशोत्सव के नाम से प्रसिद्ध है। अहा! यह चौथ ने भी प्रभु कृपा से हमारे चतुवग प्रदाता श्री भगवान के दशन स्पश तथा उनके अमत बचन श्रवण का ऐकातिक सुख प्रदान किया।

सम्वत् २००६ मे चतुर्थी तिथि अषाढ कृष्ण पक्ष तथा मगल वार को प्रभु ने महा दशन यज्ञ का आयोजन किया था। मैं सदव ही इस दरबार के अयोग्य हूँ। केवल अपनी ओर से एक मात्र कृपा वश होकर ही जगदात्मा ने यह लीला रची थी। जहाँ पर महान सिद्ध तपोधन दीक्षा व्रत लेकर अपना तथा अय जीवो का भी जन्म सफल करते हैं। वहा मेरे जैसे को शरण-प्रदान उनके उदार हृदय एव पतित पावन स्वभाव के सजीव उदाहरण हैं।

आज प्रात काल जब पुजारी आया तो मैंने उसे बनावटी क्रोध बताते हुए कहा—'तुम मेरे किसी काम मे बाधा नहीं डालना, भूख प्यास से चाहे मैं मर जाऊँ वा दिन के चार समय

खाऊँ। जब मैं तुमसे बोलू तभी तुम मुझसे बोलना।' पुजारी भय तथा श्रद्धा से इस बात पर सहमत हो गया। ठडी के कारण स्नान देर से किया। स्नान, सन्ध्या, कुछ पाठ एव जप के पश्चात् भीतर से ही खूब सावधानी से किवाड ब द कर लिए। साकल सभार कर भीतर से लगा ली। एक तरफ छोटा सा जगला था उस कुटिया मे, यद्यपि लोहे की जालीदार चादरो से बन्द था। फिर भी मैंने अच्छी तरह से किवाड लगा दिया। चटकनी भी लगा दी गई। उस मन्दिर में श्री महाराज जी के दो चित्र हैं, एक कुरता टोपी वाला, दूसरा सप चन्द्र वाला। यहाँ पर वर्षों से इन दोनो चित्रो की पूजा होती है। श्री महा राज जी को प्रणाम कर मैने सोने का विचार किया। क्योंकि मुझ पर इतनी शीघ्र कृपा होगी ऐसी आशा नही थी। मैने ध्रुव चरित्र श्रीमद्भागवत मे तथा आधुनिक सत नरसी मेहता आदि के जीवन चरित्र पढे हैं। इन पूज्य चरण महात्माओ ने बडे ही कष्ट साध्य साधनो द्वारा भगवान को प्राप्त किया है। मैं तो नादान, असाधक, अविश्वासी तथा प्रेम शू य हूँ। मुझ इतने शाघ्र भगवान् नही मिलेंगे। कृपा तो होगी अवश्य। यदि कृपा न होती तो अपने चरणो—स्थानो में क्यो बुलाते? अत अवश्य कृपा करेंगे। ऐसे ही विचार कुछ देर आए। पीछे सोने की इच्छा हुई। मै प्रेमी तो हूँ नही कि मुझे नीद न आवे। खाना पीना था नही। भजन पूजन मे मन ही नही लगता था, इसलिए मन ने यही निश्चय किया कि सोकर ही समय व्यतीत किया जाय। सोते समय अकारण ही पाँव फलाते हुए दरवाजे की ओर देखा तो श्री भगवान् खडे थे। कब से कहाँ से, किधर से ये बात सवथा अज्ञात हैं। मैं स्थान का सकोच, शीघ्रता तथा दैन्य दुर्बलता के कारण उठ न सका। बैठे ही बैठे श्री चरणो पर अपने दोनो दुबल तथा अपराधी हाथो को रख दिया। मूक हो

गया। यद्यपि मेरी दृष्टि नीचे की ओर श्री चरणो मे थी परतु श्री प्रभु के दशन मुखारविन्द पयन्त हो रहे थे। कुछ काल तक वे मेरी ओर सस्नेह अपनत्व की महती कृपा दृष्टि से देखते रहे। मैं बाह्य ज्ञान शून्य था। रूप सुधा पान के अतिरिक्त कोई अन्य चेतना नही थी। आज ही पूण तल्लीन दशा का ज्ञान हुआ। विशुद्ध समाधि तो ईश साक्षात्कार ही है। श्री भगवान मेरी तल्लीनता भग करते हुए बोले—'बाबा! आपको क्या चाहिये।' उस नाद का—श्री भगवान के शब्द माधुय का वणन हो नही सकता। श्री वाल्मीकि तथा वेदव्यास आदि महर्षियो ने भी ऐसे प्रसग पर मौन धारण कर लेना ही सर्वोत्तम व्याख्या समझी है। भागवती करुणा की परमौदाय शक्ति के दशन मात्र से ही मै पूण हो गया। एक अनाथ बालक को अपनी अभय शरण में बुलाकर वे इतने प्रसन्न थे, जसे अपने असमथ एव पगु वत्स को देखकर पयस्विनी गाय की दशा हो जाती है। उनके श्री विग्रह के सौदय, गन्ध, लावण्य तथा मृदुता मेरी केवल दृष्टि के ही नही मन बुद्धि के भी परे थे। पुन अपने युगल श्री कमलो को मेरे सिर पर रखते हुए आज्ञा की—'बाबा क्या चाहिये?' श्री मुखारविन्द के शब्द सुन कर तथा श्री चरणो के दशन से मेरे हृदय मे ऐसा भाव आया कि जसे सम्राट् पिता अपने पुत्र की दयनीय दशा देखकर तत्क्षण—क्षणमात्र मे ही स्व सवस्व सौंपने को आतुर हो जाता है। उसी प्रकार सव समथ प्रभु मुझे ऐहिक तथा पारलौकिक समस्त विभूतियो का सवतत्र स्वतन्त्र सम्राट बनाना चाहते हैं। श्री भगवान् साम्ब सदा शिव—त्रिभुवन पति पशुपति सर्वाथ सिद्धि का वरदान दे रहे हैं। मैं परम तुष्ट हो गया। बच्चे को दशन—कृपा से काम। आनन्द तथा तोष से श्री चरणो को पकडे हुए, बडे धीमे स्वर से मैंने कहा—'आपका आशीर्वाद।' दयामय श्री प्रभु ने स्नेह

एव करुणा के जल से अपना नेत्र सजल करते हुए इस पाषाण हृदय को भी पिघला दिया। दोनो कर कमल मेरे शिर पर पुन रख दिये और यह कहते हुए अ तर्धान हो गये कि 'बाबा ! यह रास्ता ब द कर दिया।'

दयामय न.थ—श्री जग नाथ प्रभु ने दशन देकर, अमन-मय वाणी सुनाकर सुधामयी दया दृष्टि से सिंचन कर तथा सब सुख प्रद श्री विग्रह का अनुपम स्पश प्रदान कर मेरे सभी मनोरथों को पूण कर दिये। वे ही सम्पूण मनोरथों के रूप बन गए। कुछ काल पश्चात् वह दिव्योन्माद पूण आन द शा न हुआ। किवाड की साकल खोल कर बाहर बरामदे मे आया, साश्चय एव परमान दमयी दृष्टि से चतुर्दिक देखा, कहीं वे विश्वम्भर आशुतोष यहीं तो नहीं है। उसी समय पुजारी धारा से जल ला रहा था। मैने हँसते हुए उसको पास बुलाया। वह भी मेरे आन द से आनन्दित हो गया। फिर वसे आन द मे वह पुजारी नही दीखा। वह विस्मित था कि अभी दो घण्टे पूव यह तो महा उद्विग्न, विचार युक्त तथा सनकी सा मालूम पडता था। और अभी परमान दपूण चेष्टा, प्रेम भरी वाणी तथा बडा गभीर मालूम होता है। मैंने उसकी विचार शृखला को तोडते हुए कहा—'प्यारे ! तू जल्दी भगवन् को बुला लाओ। उनसे कहना कि जब तुम आश्रम मे आओगे तभी वह साधु भोजन पाएगा, तुम ऊपर की दुकान से समान लेते आना।" भग वन् प्रतिदिन सायकाल मेरे पास आते थे, शारीरिक दुबलता के कारण दोनो समय नही आ सकते थे। इसलिए मैंने पुजारी से आग्रह पूवक कहा कि जसे भी हो भगवन् को अवश्य ले आना। अनशन का विचार निश्चित रूप से नही तोडा। मन में यह शङ्का उत्पन्न हुई कि यह कोई मायिक शक्ति तो नही है। जसे ध्रुव जी के सामने माया उनकी 'माँ' का रूप धारण करके

आयी। इस शका के अनेक कारण थे। प्रथम तो चित्त ही शकाशील है। दूसरे श्री महाराज जी कुर्ता टोपी नही धारण किये थे। उस समय आधी धोती कमर से लपेटे हुए थे और आधी धोती नीचे को बधी थी। वस्त्र बडे ही उज्ज्वल तथा आकषक थे। मैं अद्ध चत य की दशा मे ही श्री प्रभु की दया तथा शक्ति का विचार कर बारम्बार उ ही श्री चरणो में निमग्न हो जाता था। इतने ही मे भगवन आ गये। पुजारी सामान लेकर देर से आया। भगवन से मैने पूछा कि श्री बाबा महाराज कसे वस्त्र धारण करते थे? उ होने बडे गम्भीर स्वर तथा मुद्रा से कहा कि उनका कोई निश्चित भेष नही था। हम ही लोग कभी कुरता टोपी, कभी मिरजई पगडी, जसा चाहते थे प्रभु थोडी देर के लिए उसे ही स्वीकार कर लेते थे। प्राय अधिक तर उनके शरीर पर एक धोती, आधी ऊपर तथा आधी नीचे बँधी रहती थी। यह सुनते ही मेरी शका निमू ल हो गयी। फिर मैंने पूछा—'भगवन्! इस कुटिया का दरवाजा इस तरफ (जिधर श्री प्रभु ने बताया था) भी कभी रहा है। यह सुनते ही भगवन बडे आश्चय मे पड गये। मेरे पाँव पकड कर बोले—'तुम मुझे ठग तो नही रहे हो?' तुम श्री हैडाखान वाले बाबा तो नही हो? उनका भी तो कोई स्वरूप नही था।

'अनेक रूप रूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे!'

(अनेक रूप धारी सवसामथ्यशाली प्रभो!)

वसी ही गति उनकी भी थी। वे परमात्मा थे। उ होने मुझे श्री बद्रीनारायण का दशन कराया था। पर तु मैं ससार मे फस गया। उन दिव्य तत्व को मैं रख न सका। ऐसे ही कहते कहते वे रो पडे। मैंने भगवन को शान्त किया और नम्रता पूवक उनसे कहा—"यदि मै श्री महाराज होता तो क्यो उनके लिए बन बन भटकता फिरता। हा! मे उनका अवश्य हूँ। शिरो-

मणि जी को जब होश हुआ तो मेरा हाथ पकड कर भीतर कुटिया मे ले गये। जिधर श्री महाराज जी ने सकेत किया था उसी ओर श्री शिरोमणि जी ने मुझे चौखट का निशान बताया। केवल दरवाजे का निशान—चिह्न देखने से समझ मे पूरी बात नही आई। अतएव मैने भगवन से पूण विवरण सुनाने के लिए अनुरोध किया। उ होने कहा कि हमने श्री महाराज जी की कुटिया का द्वार इधर ही रखा था पर तु एक साधक ने अपनी सुविधा के लिए इस द्वार को ब द कर दूसरा द्वार खोल लिया। बस, मुझे जो कुछ मिलना था, मिल गया। हृदय ने कहा कि चाहे अभी मर जाऊ पर तु श्री चरणो की अहैतुकी कृपा से ज म का फल पा लिया। पुजारी ने भोजन बनाया और भगवान को भोग धरा कर हम लोगो ने प्रसाद पाया।

पाँच सात दिनो तक तो कुछ सकल्प ही नहीं उठता था। पश्चात् ये भाव जोरो से हृदय मे आन्दोलन करने लगा कि एसे दयामय अवतार का शुभ शिव स देश सारे विश्व को मिलना चाहिए। मानव जगत का आज ऐसे कुअवसर मे 'ये' ही कल्याण कर सकते है।' मन को बहुत टटोला, कही महत्वा काक्षा, कीर्ति वासना तो हृदय मे नही छिपी है ? जो इस बहाने से चरिताथ होना चाहती है। परन्तु अधिक दया लिखना श्री गुरुदेव की कृपा से ऐसा विचार नही था और न है। केवल लोक हित की भावना ही प्ररित कर रही थी। विशेषत उन जीवो के लिए जो मुझे स त गुरु समझ कर अपना कल्याण चाहते हैं। यद्यपि उन व्यक्तियो से मैं अपनी असमथता बार-बार कहता था और अब भी यही कहता हूँ। यह सब श्री भगवान की लीला है, मैं तो उनका चपरासी हूँ। विश्व को यह शुभ कल्याण कारी स देश मुझे सुनाना है। अस्तु। जिनको मैंने कभी भी पत्र नही लिखा था, उनको भी पत्र लिखा। श्री प्रभु ने स्वय ही

इस आश्रम का नाम सिद्धाश्रम रखा था। श्री सिद्धाश्रम से मैंने सभी प्रेमियो को, जिनमे राजा, विद्वान तथा अनेक साधन परायण महानुभाव है स्पष्ट लिख दिया कि 'आज तक तुम कौवा की सेवा करते थे, अब हस ही नही शास्त्रोक्त एव सनकादिक ब्रह्मर्षियो द्वारा आचारित लक्षण युक्त परम हस शिरोमणि जो निर्विवाद एव अर्मादग्ध रूप से श्री भगवान हो है, स्वय कृपाकर प्रकट हुए है। हे आत, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी प्रेमियो ! शीघ्र श्री चरण को पकड लो। अविलम्ब प्रमाद त्याग कर शरण ग्रहण करो।' श्री प्रभु की प्रेरणा थी, अत मैने जिन जिन महानुभावो को श्री प्रभु चरित्र सुनाया, वे महोदय गण प्रभावित ही नही हुए अपितु एक निष्ठ अन य उपासक बन गए। बहुतो द्वारा श्री चित्र पूजा आरम्भ हो गई। वैदिक, तान्त्रिक तथा बौद्ध सिद्धा तानुसार, रुचि वैचित्र्य के कारण, पचोपचार शतोपचार से विधिवत् एव बडे समारोह पूवक उपासक लोग पूजा करने लगे। अनेको भक्तो के मनोरथ पूण हुए। देश देशा तरो के साधको की चिर वाञ्छित अभिलाषा सिद्ध हुई। अनेको को प्रत्यक्ष दशन देकर तथा अनेको जीवो को अज्ञात रूप से प्रेरणा देकर श्री भगवान ने प्रेय तथा श्रेय का अधिकारी बनाया। सकाम साधको द्वारा एव निज जीवन मे भी अनन्त कल्याणपरक घटनाए महदाश्चय जनक हुई। उन घटनाओ का वणन करने का यहाँ उद्देश्य नही है।

इस घटना के दो वष बाद छोटी पुण्य स्मति की रचना हुई। इस लघु पुस्तिका मे श्री महाराज जी के स्तोत्र और 'सूक्त' है। इ का पाठ श्री मुनी द भक्तो द्वारा दिन प्रति दिन अधिक से अधिकतर होता गया।

सिद्धाश्रम से जब मैं हलद्वानी आया तब से श्री हैडाखान तीथ के दशनो की इच्छा बडी प्रबल हो गई। श्री महाराज

जी कब कहाँ से पधारे, ये विषय तो सर्वथा अज्ञेय ही बना रहेगा, परन्तु सर्व प्रथम प्रभु ने इस अवतार की लीला इसी पुण्य भूमि से प्रारम्भ की। अत भक्तो को यह स्थल पुण्य-प्राकट्य स्थान—अयोध्या तथा मथुरा जैसा ही प्यारा एवं पूजनीय है। अत उत्तरोत्तर मेरी उत्कण्ठा भी बढ़ती जा रही थी, उस पावन क्षेत्र के दर्शनों की।

श्री हैडाखान क्षेत्र

वह दिन भी आ ही गया। श्री प्रभु की कृपा से आश्विन पित पक्ष के अंतिम भाग मे मैने इस शरीर से इस क्षेत्र का दशन किया। यह स्थान हलद्वानी से तेरह मील पर है। रास्ता कठिन है। कलाश पवन के पृष्ठ भाग मे गोतम गगा के तट पर अवस्थित हैडाखान नामक गाव है। यहा पर 'हरें' नाम की ओषधि बहुत पदा होती है, इसी कारण से इस स्थान को लोग हैडाखान कहते है। आवागमन के लिए आज से चालीस वष पूव यह स्थान बडा ही दुगम था। यद्यपि आज भी कठिन ही है परतु घोडे आसानी से आ जा सकते है, मोटर की सडक भी बन रही है। इस समय तो वहा फोरस्ट चौकी, राजकीय औषधालय, पाठशाला तथा सभी प्रकार की दुकाने बसी हुई है। भयानकता नही के बराबर है। यही पर सव प्रथम प्रभु ने शिवालय बनवाया था और यही कारण है कि लोग उस अनामी वा अनन्त नामी को श्री हैडाखान वाले बाबा के नाम से पुकारने लगे। शिवालय, धमशाला तथा यज्ञ कुटी श्री महाराज जी की पावन उपस्थिति ही मे बनी है। सव प्रथम श्री भगवान ने सवसाधारण को यहाँ की एक देव निर्मित गुफा मे दशन दिए। यह गुफा हैडाखान के उस पार कैलाम पवन से बिलकुल सट कर है। मानो यह स्वतन्त्र सम्राट का स्वतन्त्र सिहासन हो। वहाँ की शांति, आनन्द, सौन्दय तथा अनुभूति अवणनीय है। यह गुफा तो नाम मात्र को ही है, वास्तव मे वह शिखरदार सुशोभनीय, प्रकृति निर्मित मन्दिर ही है। इसी मे श्री महाराज जी यदा कदा दशनार्थियो को शुभ दशन प्रदान कर सनाथ करते

थे। यहाँ के कितने ही विद्वान तथा वयावृद्ध पुरुषो द्वारा उनकी ईश्वरीय महिमा सुनी। यहाँ मै उन प्रसगो को नही लिखता हूँ। श्री चरणो की कृपा से इन आँखो ने जो स्वरूप देखे है, तथा इन कानो ने जो कुछ श्री मुख विगलित शब्द सुधा सुने हैं, उन्ही घटनाओ को अति सक्षिप्त एव मुख्य मुख्य विषय का साराश रूप मे उल्लेख किया गया है। मैने भी इसी दिव्य गुफा मे आसन लगाया। अभी थोडे ही दिन हुए थे, गुफा मे बाढ के कारण पानी आ गया था जिससे वहाँ काफी गीला पन था। मेरे पास उस समय एक मोटी चादर ही थी। उसी को आधा बिछा लेता था तथा आधे को ओढ लेता था। इसी प्रकार उस गुफा मे तीन चार दिन व्यतीत हो गये। भोजन ग्रामवासी नित्य ही दे जाते थे। एक दिन एक श्रद्धालु बहुत आग्रह करके गुफा मे धान का पुवाल बिछा गया। जब रात मे मै सो रहा था तो अचानक कुछ खडखडाहट की आवाज आई। मेने सोचा कि धान के पुवाल के कारण ऐसा शब्द हुआ है। परन्तु मन मे भय अवश्य आ गया और शीघ्र ही उठ बठा। थोडा ही देर मे मुश्किल से दो मिनट हुए होगे कि फिर पहले से भी दूने जोरो से आवाज आई। इस शब्द की केवल ध्वनि ही दूनी थी परन्तु स्वर एक ही था। मुझ मे भय और नीद, उस समय दोनो ही अपना बल दिखा रहे थे। नीद के आधिक्य से सोना ही उचित समझा। सोते ही फिर, एक क्षण भर मे ही, उससे भी दूने जोर से उसी प्रकार खडखडाहट के शब्द सुने। शब्द सुनते ही पहिले जसे ही मैं शीघ्रता से बैठ गया। जब मै उस शब्द को सुनता था तो उस समय कुछ सोचने विचारने का चेत नही रहता था। अचेतावस्था ही मे मैं घबडा कर उठ बैठता था। अब के चित्त मे कुछ विचार आया। नीद चली गई। आश्चय भी हुआ कि मैं भयानक स्थानो (जगल पहाड़) मे भी रहा हूँ परतु

ऐसा डर कभी नही लगा। आज क्या अपूर्वता है कि मैं अपना धय खो बठा ! अच्छा भगवान् की जो इच्छा वही मेरे लिए श्रेयस्कर है। उस समय भय तथा श्रद्धा से नहीं केवल समय निकालने के लिए मैंने श्री महाराज जी की स्तुति करने का निश्चय किया। स्तुति आरम्भ करते ही मैं चेतना शून्य हो गया। उस अचेताऽवस्था ही मे नौ श्लोक मेरे मुख से निकले। इसका नाम 'श्री मुनीन्द्र सूक्त' रखा गया। इसकी रचना स्वत दैवी शक्ति से हुई है। श्लोको का उच्चारण करते ही मुझे परमानन्द हुआ। परन्तु एक बार उच्चारण के पश्चात मैं शीघ्र ही सूक्त को भूलने लगा। यह विस्मृति उस समय अरुचिकर प्रतीत हुई। मन से भी कहा कि ऐसा वराग्य क्या ? यदि पेंसिल होती, जसे वह ग्रामवासी दीपक के लिए आग्रह करता था, मैं दीपक रख लेता तो इस सुन्दर भगवत प्रेषित 'सूक्त' को लिख लेता। ये तो जीवो के कल्याण हेतु ही प्रकट हुए हैं। फिर मन में आया कि यदि भगवान् के भेजे हुए 'सूक्त' होगे तो श्री भगवान् तो नही भूल सकते ! वे दयामय प्रभु मुझे प्रात काल फिर स्मरण करा देगे। यदि मेरा बनाया होगा तो विस्मरण से कोई हानि नही। ऐसे स्त्रोत श्लोक तो बहुत से बनते हैं। आप्त वाक्य ही कल्याणकारी है। ऐसा विचार कर शान्ति पूवक सो गया, ऐसी नीद आई कि सबेरे ८ बजे उठा। एक ग्राम पाठशाला का अध्यापक गुफा की ओर होकर ही पढाने को जाता था। वह मेरे लिए दुध लाता था। उस दिन मुझे सोते हुए देख कर उसने कहा— 'महाराज ! आज आप अभी तक सो रहे हैं ? मुझे ऐसा अनुमान होता हैं कि आप कुछ पढे लिखे हैं। लो ! ये पेंसिल और कागज, अगर कुछ लिखने की इच्छा हो तो लिखना।' ऐसा कह कर वह चला गया। मैंने भी यही निश्चय किया कि दूध पीछे पीऊँगा। प्रथम रात्रि में जो श्री

भगवत्कृपा से 'सूक्त' प्रकट हुआ था, वह लिख लू। यदि श्री भगवान के वचन होगे तो वे सब श्लोक मेरे हृदय मे यथावत् उपस्थित हो जाएगे। कागज पेन्सिल लेकर गौतम गगा के बीच मे गुफा के सामने एक शिला खड पर मै बैठ गया और भगवान् का स्मरण कर लिखना प्रारम्भ किया। आहा! उस समय मेरे सामने 'सूक्त' एक एक अक्षर ज्योतिमय हो कर उपस्थित होने लगे। मैने हर्षोत्फुल्ल, गद् गद् तथा कम्पित हाथों से उन दिव्य अक्षरो—महामन्त्रो को लिपिबद्ध कर लिया। प्रभु की अपार महिमा दया का स्मरण करते हुए दूध पिया। आज सहस्रो व्यक्ति मन्त्रवत इसका जप पाठ करते हैं। ये सूक्त भी पुरुष सूक्त, श्री सूक्त तथा रात्रि सूक्त के समान ही सर्वादरणीय हो रहे है। आज के उपलब्ध व्याकरण की दृष्टि से कही पर त्रुटि भी है परन्तु यह कोई साहित्यिक कृति नही है। ये तो दिव्य स्वर, दिव्य अक्षर तथा दिव्य भावना से ओत प्रोत है

"श्री मुनीन्द्र सूक्त"

कलाश गिरिवरे रम्ये निवसन्त सुशान्तिभि ।
त मुनि सतत वन्दे सदा कारुण्य रूपिणम ॥ १ ॥

परम सुन्दर गिरिवर कलाश पर, सुशान्त भाव से निवास करते हुए, सवदा करुणामय स्वरूपधारी, (दया की साक्षात् मूर्ति स्वरूप) उन मुनीन्द्र देव को मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ।

यस्य स्मरण मात्रेण सिद्धो भवति साधक ।
सदगुरु तमह वन्दे हैडाखान वासिनम ॥ २ ॥

जिनके केवल स्मरण करने मात्र से, साधक पुरुष सब सिद्धियो को प्राप्त कर सिद्ध स्वरूप हो जाते हैं, उन श्री हैडाखान वासी श्री सद्गुरु देव को मैं प्रणाम करता हूँ।

यस्य कृपा कटाक्षेण धन्यो भवति मानव ।
तस्य पादयोरेक प्रणमामि निरन्तरम ॥ ३ ॥

जो आप सासारिक माया विमुग्ध प्राणियो को परम दुलभ सद्‌ज्ञान प्रदान करने की कृपा करते हैं, हे प्रभो चाहे मै सम्पूण साधनो से हीन हूँ फिर भी आप ही मेरे एक मात्र आश्रय है।

महा मार्तण्ड रूपेण, मोहध्वान्त विनाशक ।

सव भूतात्म रूपोऽसि महेन्द्रस्य च जीवनम ।। ६ ।।

महान् (ज्ञान) सूय का रूप धारण करके आप (साधको के हृदय मे) मोहान्धकार का नाश करते है, आप सम्पूर्ण प्राणियो के आत्म स्वरूप हैं,और (इस) "श्री चरणाश्रितमहेन्द्र" के जीवन हैं।

उस गुफा मे दो चार दिन और रहा। अनेको स्फुट श्लोको तथा स्तोत्रो की रचना बिना प्रयत्न के ही हुई। उनमें कुछ उपदेश परक तथा कुछ तत्व विवेचनात्मक ढग के सु दर सु दर प्रसाद गुण युक्त सस्कृत के पद्य थे। परन्तु सूक्त के अतिरिक्त मैंने सब कृतियो को वही फाड डाला। इस कवित्व शक्ति की स्फूर्ति से मेरे हृदय को बडा आघात हुआ। मन मे आया कि बाल्यावस्था से ही भगवान् से अनेको बार मैंने प्राथना की है। हे प्रभो! मुझे—धन, जन, सुन्दरी, कविता—कुछ भी नही चाहिए। पर तु आज भगवान् की कृपा से यह शक्ति मिली है, तो मैं उसका आनन्द पूवक उपभोग कर रहा हूँ। अत यह तो एक प्रवञ्चना है। इसी विचार से म हल्द्वानी के लिए चल पड़ा। श्री हैडाखान से हल्द्वानी का माग (गुफा मे से) शिवालय तथा गाँव मे होकर जाता है। किन्तु उस रास्ते से नही गया क्योकि ग्रामवासी मुझे रोक लेते। उस समय दिन के तीन या चार का समय होगा। भयानक मार्ग होने के कारण भी वे लोग मुझे आज नहीं जानें देते। इधर मुझे इस गुफा से तुरन्त ही चला जाना था। इसलिए नदी मे होकर, बहुत कठिन रास्ता से, ग्यारह बजे करीब रात को हल्द्वानी पहुँचा।

पुन सिद्धाश्रम मे

कुछ दिनो तक इधर उधर घूम फिर कर श्री प्रभु की अहैतुकी कृपा से पुन सिद्धाश्रम आया। यो तो दो चार मास के बाद सिद्धाश्रम के दर्शन हो ही जाते थे। परन्तु जिन यात्राओं मे विशिष्ट अनुभव हुए,[1] केवल उन्ही प्रसगो को बहुत सूक्ष्म रूप से इस पुस्तिका मे लिखा गया है। ये सस्मरण तो केवल प्राकट्य के ही है। इस यात्रा मे कुछ व्यक्ति और मेरे साथ थे। हलद्वानी मे श्री श्री महाराज जी का वार्षिक पूजा समारोह उत्साह से तथा विशाल रूप से मनाया गया था। उसी के उपलक्ष्य मे बहुत से श्रीचरणोपासक दूर दूर से आये थे। उनमे से कुछ व्यक्ति मेरे साथ सिद्धाश्रम भी दशन करने आये थे। उस दिन वैशाख शुक्ला एकादशी थी। सन १६५२ के मई मास में मगलवार २० तारीख को यह कृपा पूण घटना घटित हुई। बारह बजने मे तीन पाँच मिनट की देर थी। दिन का समय, निमल आकाश, स्वच्छ दिशाएँ एव परिपक्व विचार के मनुष्यो पर वह कृपा!—सभी दृष्टि से यह घटना असन्दिग्ध है। मैं भोजन करके सो रहा था। थोडी देर के लिए हल्की सी नीद भी आयी थी। सहसा मेरी आँखें खुलीं। अकारण ही मैं बरामदे मे आया और उत्तर दिशा की ओर मुह करके बैठ गया। बरामदे मे उस समय तीन जीव थे। उनमे एक देवी थी। जिसको मैंने अकारण ही धारा से जल लेने के लिए भेज दिया। वह शीघ्र ही जल लेने धारा पर गयी। उसके जाते ही जब मैंने सामने देखा तो एक अपूव—महान् जाज्यवल्यमान् 'ज्योति'

के दर्शन हुए जो पूण मानवाकार मे थी। उसकी प्रभा तेज-वाणी से व्यक्त नही हो सकता है।

"तमसो मा ज्योतिगमय।"

(हे प्रभु! मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो)

ब्रह्मर्षियो द्वारा प्राथित, पूजित तथा आराधित ज्योति सब प्रकार से विलक्षण है। चन्द्र, अग्नि, सूय, विद्युत तथा स्फटिक रजत आदि की शुभ्रता किसी भी अश मे उस ज्योति भगवती के समकक्ष सिद्ध नही होती है। वह ज्योतिष्मान पुरुष के समान ही अद्वितीय है, अनिवचनीय है। ग्रीष्म कालीन मध्याह्न के समय भी, जब कि सूयदेव अपनी पूण कला से उदित थे, उस समय भी वह ज्योतिमय श्री विग्रह अपनी अलौकिक आकषक शक्ति से सम्प न अत्यधिक उज्जवल तथा अम्लान कान्ति से सुदशनीय हो रहा था। ज्योतिस्थान आश्रम से सीधे चार फर्लाङ्ग होगा और सडक से दो मील होगा। बीच मे बडी बडी खाइयाँ होने के कारण सीधे वहाँ पहुचना असम्भव है। उस दिव्य ज्योति के दशन करते ही मुझे श्री भगवान् की स्मृति हो आयी। श्री चरणो की कृपा से कई बार ऐसी घटनाएँ हुई हैं। अल्प काल तक मैं निर्विकल्प दशा मे रहा। पश्चात् पुन उसी ज्योति भगवति के दर्शन हुए। आदर पूवक वही से बठे-बठे मैंने मानसिक प्रणाम किया तथा कुछ काल तक उस ज्योति शुक्ल ज्योति के मध्य परम मनोहर नीलमणि के सदृश परम सुशोभनीय श्री विग्रह के दशन से ये नेत्र अपने को धन्य धन्य मानने लगे, केवल ज्योतिमयवपुष हो गया। मेरे पास मे जो एक दशनार्थी बैठा था, उसका लक्ष्य बिलकुल ही इधर नही था। ऐसे दिव्य अवसर पर वह वञ्चित रह जाय इन पुण्य दशनो से यह उचित नही। अत मैंने उसे सम्बोधन करते हुए कहा—"देख! ये महादुर्लभ दशन आज तुझे सुलभ हो रहा

है। आगे देखो—ये ज्योति कैसी है ?" वह दर्शन ज्योति के करते ही अवाक हो गया। एकाग्रता तो ऐसी जगह पर स्वत करबद्ध खडी रहती है। वह भी दर्शन से आनन्दित हुआ। मैं जान बूझ कर ही ऐसे प्रसङ्गो पर वाणी तथा लेखनी को मौन कर देता हूँ। आद्य त हीन अलौकिक तत्व की पूर्णतया व्याख्या हो ही नही सकती है।

"मत हमार अस सुनहुँ भवानी।
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी ॥"

(हे भवानी ! मेरा यह मत है कि श्री राम का दिव्य स्वरूप बुद्धि, मन और वाणी के तर्कों से परे है)।

अतएव ये विषय तो स्वय सवेद्य हैं—

"मूकस्वादन वत" तथापि प्रकाश्यते क्वापि पात्रे।

(मूक पुरुषो के आस्वादन के समान हैं। फिर भी किसी को पूर्ण सत् पात्र देखकर प्रकट किया जाता है)।

कारण यह है कि नव साधको को परोक्ष के प्रति एक सुदृढ विश्वास की प्राप्ति ऐसे अवसरो से होती है। वह व्यक्ति जो मेरे पास था, तथा जिसको श्री दयामय प्रभु ने अपने दिव्य दर्शनो से कृतार्थ किया था। उसे यह घटना यथार्थ रूप से हृदयस्थ हो जाय, इसलिए मैं इसी विषय मे कुछ चर्चा कर रहा था इतने मे ही वह देवी भी जल लेकर आ गई। इस सत्य सुखद शुभ समाचार को सुनकर देवी के चित्त पर आघात सा हुआ। उसकी समझ मे यही आया कि श्री भगवान् की कृपा मुझ पर नही है। मेरे लिए उसके मन मे आया कि मैं भजन, भक्ति अधिक नही करती हूँ। इसीलिये बाबा ने मुझे दर्शन नही कराया, बाबा तो सब जानते ही हैं। मैंने उसे समझाया परन्तु उसके चित्त मे यह दृढ भाव था कि बाबा ने ही

सउको ज्योति के दशन कराए है। पर न्तु मैं किस बल पर कह सकता था कि कल तुमको भी दर्शन होंगे। प्रभु की दया शक्ति —परम स्वतन्त्र है। दयामय दीन बन्धु ने उस देवी की करुण पुकार सुनी और दूसरे दिन ठीक उसी समय पर अपना दिव्य-ज्योति दर्शन देकर सभी के मनोरथ पूर्ण किए। यह देवी तो कल से ही आश लगाए बैठी थी, किन्तु एक देवी सो रही थी। जब उसने यह घटना सुनी तो उसे भी कुछ दुःख सा हुआ। अन्तर्यामी प्रभु ने अपार दया दर्शा कर, तीसरे दिन भी उसी समय पर उसी रूप में (कला में कुछ कमी थी। पूर्व जैसा प्रकाश नही था) दर्शन दिये। उस समय एक भाग्यशाली गोपाल प्रसाद नाम का ७- वर्ष का बालक भी वहा पर था। वह बालक मानो आधुनिक ध्रुव ही है। वह बालक अपनी 'मा' से साश्चर्य बोला—"अम्मा, ये कहा चमक रह्यो है?" क्रमश ये दयामयी लीलाएँ तारीख २० २१-२२ तक (११-१२ १३ एकादशी से त्रयोदशी) तक हुई। योगि जन दुर्लभ ज्ञानी तपस्वियो के लिए भी दुर्लभ पदार्थ, आज—इतना सुलभ! क्या कहा जाय? उस दया शक्ति को बारम्बार नमस्कार है।

अनेको प्रेमियो को तथा मुझे अनेको बार बडी बडी दिव्य घटनाएँ देखने तथा सुनने का सौभाग्य श्री चरणो की कृपा से प्राप्त हुआ है। अनन्त स्थान पर प्रकट होकर मानव की सभी प्रकार से रक्षा हुई। कही ज्ञान प्रदान कर शान्ति दी गई। कितने ही व्यक्तियो को इष्ट साक्षात्कार हुए। श्री महाराज जी ने स्वय प्रकट होकर वा उसके पूर्वाराध्य इष्ट के रूप मे दर्शन देकर, अनेको निराश तथा महादर्शनातुर साधको को कृतार्थ किया। कितने ही व्यक्ति जो सस्कृति और धर्म से विमुख थे, वे भी महाराज जी के अलोकिक जीवन प्रसग पढकर तथा सुनकर अध्यात्म पथ के पथिक बन गये। इन महा महिमा सम्पन्न सिद्ध

सिद्धेश्वर रूप सदगुरु अवतार श्री भगवान् को आत, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी सबने अपने भाव के अनुसार भजा, सुमिरण सेवन किया। सब वाञ्छा कल्पतरु, सदगुरु रूपधारी भगवान ने भक्त भावनाऽनुसार सब के मनोरथ पूण किए। श्री भगवान् मुनी द्र जी की लीला इसी प्रकार चल रही है। मैं भी सिद्धा श्रम, हैडाखान, कठघरिया (हलद्वानी) तथा व दाबन मे विशेष रूप से अपना कालक्षेपण करता रहा। प्रेमिया के आग्रह से कभी कभी दूर भी चला जाता था, फिर इन्ही आश्रमो मे आकर यथासाध्य इष्ट स्मरण करता था। सत्सगियो से तथा आगन्तुक महानुभावो से नाम, चारित्र्य, समदशन, सत्य सरलता तथा प्रेम के विषय मे ही विशेषत यथा बुद्धि सत्सग होता था। कुछ महीनो के पीछे फिर सिद्धाश्रम आया। इस यात्रा मे मै अपरि ग्रह व्रत से था। हिमालय की यात्रा कठिन है परन्तु श्री चरणो की कृपा से इस प्रदेश मे मै वर्षों से अयाचित वत्ति से भ्रमण करता रहा हूँ। ऐसे ही एक समय भ्रमण करता करता मै सिद्धा श्रम आ गया। उस समय आश्रम मे कोई नही था। पुजारी प्रात साय पूजा कर अपने घर चला जाता था। मेरे पास उस समय केवल आठ दस दाने आलू के थे। मेने सोचा कि तीन २ दाने आलू के रोज खाऊगा। और बाद में यहाँ से चला जाऊँगा। दयामय भगवान् के आश्रम मे भूखा रहना अथवा उनसे क्षुधा पिपासादि के निवारणार्थ प्राथना करनी अनुचित है। अत यहाँ से चला जाना ही उत्तम होगा। इसी विचार से तीन आलू को धूनी मे भून कर खा लिया और अमृतमय जल पीकर सोने का विचार कर ही रहा था कि वही चिर परिचित स्वर सुनाई पड़े। सुसौम्य स्मित मुख—दयामय नेत्र से देखते हुए श्री महा राज जी ने कहा—"बाबा आप यहाँ पर ठहरिये। आपको पैसा भी मिलेगा और रोटी भी।" अहा! दास की कैसी सुध रखते

है? वे दयालु स्वामी। आनन्द के साथ ही इस तुच्छता पर हँसी भी आयी कि रे मन! तुझे कुछ भी विश्वास नही है। श्री महाराज जी को मुझसे ऐसी छोटी बात कहनी पडी। क्या तू सदैव अपने जीवन निर्वाह की चिन्ता करता है? नही। तो इस पावन भूमि मे इस क्षुद्र शरीर रक्षण की चिन्ता आना ही हास्यास्पद है। यह सत्य ही है कि यदि मुझे वहाँ भोजन की व्यवस्था नही होती तो मै उस स्थान पर नही ठहरता। यह तो श्री भगवान् की अज्ञेय लीला शक्ति का चमत्कार है। परम करुणामय भगवान् मुझे उस शुभ स्थल पर कुछ काल और रखना चाहते थे। उसी दिन कई आदमियो का बहुत सा भोजन सामान आ गया। दो तीन दिनो के बाद बिना किसी सूचना के ही २०१) रु० का इन्स्युरेन्स मनिआडर आ गया। भेजने वाले को यह भी पता नही था कि इस समय किस स्थान मे मैं हूँ। न उनका कभी रुपये भेजने का स्वभाव ही था। अत यह घटना प्रभु प्रेरित ही थी। श्री महाराज जी की कृपा से अनेको बार महीनो तक यहाँ (सिद्धाश्रम) रहा। श्री प्रभु चरणाङ्कित भूमि मे निवास करने की इच्छा तो सदैव ही रहती थी। परन्तु जब कभी कभी इधर उधर भी जाना पडता था। जब चित्त अधिक एकाग्रता पूवक प्रभु स्मरण करता तो सिद्धाश्रम के प्रति स्वत प्रेममयी स्मृति हो आती थी। ऐसे ही एक समय शीत काल में मैं सिद्धाश्रम गया। बहुत दिनो से प्रभु दशन न होने के कारण चित्त व्यग्र सा था। प्रभु से मैंने कुछ विनय पूवक कहा—"देव! इतने दिनो तक बिना दशन के कैसे रहा जा सकता है।" अहा! इतनी दुबल प्राथना भी अन्तर्यामी प्रभु कितने शीघ्र सुनते है। यह विचार आते ही हृदय एक विलक्षण व्यथा से व्यथित होने लगता है। उसी रात मे प्रात काल श्री महाराज

जी ने अपने एक एक अग को पृथक् पृथक कर के दशन दिए। कभी केवल श्री चरण मेरी ओर आते थे। कभी नेत्र कमल के ही दशन होते थे। कभी आजानु बाहु ही विश्व रक्षा की मुद्रा मे सुशोभित हो रहे थे। बहुत समय तक यह कृपा होती रही। उस समय हृदय मे यह भाव अत्यन्त प्रगाढ हो गया, केवल काल्पनिक वा शाब्दिक नही प्रत्यक्षत कि अखिल ब्रह्माण्ड के प्रत्येक परमाणुओ मे श्री महाराज जी विद्यमान है।

"सर्वं खल्विद ब्रह्म। नेह नानास्ति किञ्चन।"

—श्रुति

(यह सम्पूण जगत ब्रह्म रूप है, ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी तत्व नही है।)

ये अनुभूतियाँ महर्षियो को ऐसे ही अवसर पर प्राप्त हुई थी। जब जब ऐसी घटना होती है तो उनका अवश्यम्भावी निर्बाध प्रभाव अन्त क्षेत्र मे अधिक अधिक स्थायित्व धारण करता है। इन दयामय कारणो से सिद्धाश्रम के प्रति अधिक आकषण हो गया था। परन्तु परम वीतरागी प्रभु को यह बात पसन्द न आई। लीलाधारी की लीला से एक समय ऐसी ही बानक बनी। एक बार गरमी के दिनो मे मैं सिद्धाश्रम आया। वहा की नैसर्गिक पवित्रता से आकृष्ट हो मैने २१ दिनो का व्रत करने का सकल्प किया। (यह अकारण ही व्रत था। हाँ! नीद कम करना अवश्य चाहता था)। जिस दिन मैं व्रत आरम्भ करने वाला था उसी दिन प्रात ६ बजे करीब, श्री महाराज जी ने आज्ञा करते हुए दशन दिए। क्षणभर मे ही ज्योति अन्तर्धान हो गई और शेष केवल नाद की गुञ्जन ही रही। वक्ता के दशन नहीं हुए। उस शब्द श्रवण के समय जब ये भाव आता था कि ये शब्द प्रभु दूर से कह रहे हैं तो ऐसा प्रतीत होता था कि कोठरी से बहुत दूर बाहर से ये शब्द आ रहे है। और जब यह

भाव आता था कि भगवान तो मेरी आत्मा ही हैं, तो अद्वैत भाव हो जाता था। आप ही वक्ता तथा आप ही श्रोता। स्वर, वाणी तथा अर्थ तीनो मे एक अनिर्वचनीय ऐक्य था। वे शब्द-मन्त्र बडे कर्णप्रिय थे। श्री महाराज जी ने आज्ञा करी कि "बाबा यहाँ पर आपकी आध्यात्मिक उन्नति नही होगी।" मैं उस समय आसन पर ही था, सोकर अभी उठा ही था। श्री महाराज जी के चित्र की तरफ देख रहा था। ये शब्द सुनते ही मैं बाहर आया—किन्तु वहा पर दूरो तक कोई नही था। इसमे तो मुझे सन्देह था ही नही कि श्री महाराज जी के अतिरिक्त ये शब्द अन्य किसी व्यक्ति के है। वे ही दयामय दीनानाथ मुझ जसे दीन हीन बालक पर ऐसी अनुपम एव अनपायिनी कृपा करते रहते हैं। अधिक क्या लिखू ? उस परम प्रिय हृदय सर्वस्व सिद्धाश्रम की महिमा! आज तक अनेको साधको के अनेको प्रकार के मनोरथ पूर्ण हुए है, परन्तु यहाँ वे कथाएँ नही लिखी जाएँगी। इनका यथा प्राप्त विवरण एव घटनाओ का उल्लेख अन्य ग्रन्थो मे दिये गये हैं। सिद्धाश्रम मे यह आज्ञा जबसे हुई तब से स्वभावत ही वहाँ का आना जाना कम हो गया। वसे तो वह सदव अविस्मरणीय स्थानो की मूर्धन्य पक्ति मे ही रहेगा।

देवगुरु

सिद्धाश्रम,का आकर्षण तो कम हो ही गया था अतः अबकी जब प्रभु दर्शन की उत्कण्ठा हुई तो श्री हैडाखान की ओर आया। यहाँ पर दो चार दिन निवास कर श्री देव गुरु के दर्शन के लिए प्रस्थान किया। श्री देव गुरु पर्वत बहुत पवित्रतम क्षेत्रों मे है। यहा से हिममण्डित पर्वत शिखरो के स्पष्ट दर्शन होते हैं। यहा की ऐसी ऐतिहासिक कथा है कि देवगुरु श्री बृहस्पति ने श्री साम्ब सदाशिव की कृपा प्राप्ति के हेतु दीर्घकाल तक घोर तपश्चर्या की है। जिसके फल स्वरूप उन्हे अगाध विद्या की प्राप्ति हुई। आज भी बिना मन्दिर के ही एक जीर्ण चबूतरे पर श्री शिव जी की स्थापना है। वहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य, पवित्रता, आकर्षण, दिव्य गन्ध युक्त वायु तथा स्थान प्रभाव से मानसिक स्थिरता आदि विशेषता—अपना निरालापन लिए हुए है। भूमि का प्रभाव अद्वितीय है। वहाँ पर शिव चबूतरे से सटी हुई एक छोटी सी गुफा है। गुफा मे केवल बैठ ही सकते थे। खड़ा होने तथा पूरे पाँव फैलाने को जगह नही थी। उसके नीचे एक मील के उतार पर एक छोटा सा जल का सोत (धारा) है। कुछ शिलाखण्ड ऐसे खड़े हैं, मानो किन्हीं तपस्वियो के लिए प्रकृति ने छत्र बना दिया है। जिसके नीचे एक व्यक्ति धूप तथा वर्षा से बच सकता है। इस स्थान पर एक ब्रह्मचारी भी बहुत वर्षों से साधन भजन करते हैं। जब मै हैडाखान से आया तो रात में वही पर विश्राम किया। जिस शिला के नीचे मैं सोया था, उसी शिलाखण्ड के नीचे श्री महाराज जी का आसन लगता था। ये बात वहाँ के एक वृद्ध ग्रामीण तथा ब्रह्मचारी जी ने बताई।

मुझे भी श्री महाराज जी के दर्शन हुए। वहाँ के लोगो से पता लगा कि श्री महाराज जी देव गुरु के शिखर पर जब जाते थे तो यहाँ पर भी उनका आसन लगता था। श्री भगवान् के दर्शन से चित्त परमाह्लादित हुआ। और इस दर्शन को परम शुभ शकुन समझ ऊपर को गया। वहा पर दो दिनो तक बिना अन्न तथा जल लिए रहा। क्षुधा पिपासा का भाव बिल्कुल न रहा। अपूर्व शान्ति से उस छोटी गुफा में पाँव सिकोर कर एक पतली सूती चादर ओढ कर पडा रहता था। श्री महाराज जी का यह विशिष्ट लीला क्षेत्र है। आज भी वहाँ पर श्री महाराज जी की फूस की कुटिया के चिह्न अवशेष हैं। उन स्थानो के दर्शन से मुझे शान्ति, आनन्द, वैराग्य एव सर्वज्ञत्वादि विभूतियो का का स्वाभाविक बिना प्रयत्न के ही स्फुरण परिज्ञान साक्षात्कार होने लगता था। दूसरे दिन प्रात काल घण्टा भर रात होगी, महा प्रशान्त समय था। श्री महाराज जी उसी गुफा मे प्रकट भये और बडी करुणा तथा शान्ति से बोले—"बाबा! आप यहा पर प्राणान्त करने आये है? आप तो मेरे प्राण के समान प्रिय है।" उनके ये अपार दयाभाव को देखकर मै व्याकुल हो उठा। नीरस हृदय में भी प्रभु की कृपा से अनुराग रस सागर उमड पडा। जोरो से रोने लगा क्योकि कोई अन्य तो था ही नही जिसकी लाज हो। अपने बालक के क्रन्दन को दयामय प्रभु अधिक देर न सुन सके, किसी का दुख देखना तो स्वभाव मे ही नही है, अत शीघ्र ही कुछ मिनटो के बाद ही अपने दर्शन से पुन सनाथ किया दयामय देव ने। ऐसे स्थलो पर मैं कुछ लिखने का प्रयास नही करता हूँ—

"उर अनुभवति न कहि सक सोई।
कवन प्रकार कहै कवि कोई॥"

(जो अपने हृदय मे अनुभव करते है वे भी उसका वणन करने मे असमथ होते हैं, तब उस परम तत्व को कोई कवि अपनी वाणी से वणन करने मे किस प्रकरा सफल हो सकता है।)
ये स्वय सवेद्य स्थिति है।

कुछ काल पश्चात् स्वस्थ होने पर चित्त मे आया कि ब्रह्म चारी दुखी हो रहा होगा। इसलिये आज यहाँ से चला जाऊंगा। श्री महाराज जी को भी मै ऐसी ऊटपटाँग यात्रा करके दुखी करता हूँ। इस पुनीत स्थान को नमस्कार कर तथा चारो तरफ की अवणनीय शोभा प्रकृति नटी के सौन्दय, लावण्य को बार बार देखता हुआ नीचे को आ रहा था।"

"या देवी सव भतेषु कान्ति रूपेण सस्थिता।"

(जो मातेश्वरी पराम्बा सम्पूण प्राणियो मे कान्ति रूप से स्थित है)

ऐसा पाठ बहुत बार किया था। परन्तु आज श्री गुरुदेव के असीम अनुग्रह से "देव गुरु' मे प्रत्यक्ष दशन ही नही मानो मैं भी उसी अन त सौन्दय राशि का अभि न अग हू, केवल कल्पना ही नही, रोम रोम से ये भाव प्रतिध्वनित हो रहे थे। शरीर, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि सब एक होकर महाभाव समाधि में निमग्न थे। अनुभूति के पश्चात् भाव शब्द रूप ग्रहण करता है। अत शब्द अनुभूति का पूण प्रकट करने में उतना ही अस-मथ एव अज्ञान है जितना कोई चतुर से चतुर व्यक्ति भी अपने माता पिता के विवाह सम्बन्ध के विषय मे कुछ कहने मे अपनी अज्ञानता प्रकट करे।

ठीक मध्य मार्ग मे ही वे ब्रह्मचारी जी जल के दो पात्र लिए ऊपर चढ़ रहे थे। उन्होने बड़े हर्ष से कहा—"आज मैं यही निश्चय करके आया था। यदि महात्मा नीचे आकर भोजन नहीं करेगा तो मैं भी उसी के साथ ऊपर ही रहूँगा। देखो!

हलद्वानी

सन १९५४ के जाडो मे मैं हलद्वानी मे था, चित्त पूर्ण स्वस्थ था। परन्तु भगवान की लीला कौन समझ सके। मेरे मन मे घोर सघर्ष आरम्भ हो गया। चित्त बडा दुखी, मन मे एक विलक्षण ग्लानी तथा बुद्धि भी भ्रान्त सी हो गई। सघर्ष का स्वरूप ऐसा था—मन अपने आप ही कहता था कि "तुम ने सब को श्री हैडाखान वाले बाबा के विषय मे यही कहा है कि वे भगवान् है, आज ससार पाप ताप से ही परिपूर्ण है। जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राघवेन्द्र ने आज्ञा की है —

"काल रूप मैं तिन्ह कर ताता,
शुभ अरु अशुभ कर्म फल दाता।"

(हे तात! मैं उन प्राणियों के लिये शुभ और अशुभ कर्मों के फलो को प्रदान करने वाला काल स्वरूप हूँ।)

आज यदि इस सिद्धान्त का पालन प्रभु करें तो सृष्टि कल्याण असम्भव हो जाएगा। वैसे ही लीला पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्ण ने घोषणा की है —

"कालोस्मि।"

(मैं लोकोंके सहार के लिए काल हूँ।)

आज इस घोषणा से सृष्टि सहार ही हो सकता है। अनेक अपराधो से युक्त आदर्श पथ से सर्वथा विमुख तथा अनैतिकतापूर्ण वायु मण्डल मे ऐसे श्रेय साधन हीन समाज तो ऐसा मानव सुलभ भगवद् रूप, ऐसा क्षमाशील व्यवहार तथा ऐसी आप्त वाणी सरल एव औदार्य की आवश्यकता है,

जिस से भगवान की शरण सहज निर्भीक भाव से सब जीव ग्रहण कर सकें। इसका तात्पय कोई—महानुभाव यह न समझे कि अन्य अवतारो में उदारता, क्षमा तथा मानवीय व्यवहार न हुआ हो। यह तो ध्रुव सत्य है कि इन्ही उपरोक्त गुणो का विशेष प्रकाश अवतार विग्रह मे रहता है, तथापि किसी अवतार मे युद्ध की अधिकता, मर्यादा रक्षणार्थ सृष्टि कल्याणार्थ तो किसी अवतार मे मधुर लीला की ही प्रधानता रही है। किसी अवतार मे ज्ञान को विशिष्ट स्थान दिया तो कभी केवल प्रेम ही का पाठ पढाने आये। ऐसे ही ये श्री "बाबा" का अवतार शान्ति, क्षमा, दया का सुदिव्य त्रिवेद मय श्री विग्रह है। किसी समय मे पुण्यात्मा ईश्वर भक्त प्रेम उदारता युक्त हृदय वान् पुरुष अधिक थे। आज समाज मे ऐसे मनुष्य भी दुर्लभ हैं। मानवाकार धारण कर दानव अपने स्वभावानुसार प्रवृत्ति मे मग्न हैं। मानवोचित गुणो का विकास तो दूर की बात है। विपर्यय ज्ञान के कारण आज मानव को नि श्रेयस तथा अभ्युदय के सत्य साधन के प्रति भी सशय तथा अरुचि है। ऐसी परि-स्थिति मे परम पिता परमेश्वर जिसका रूप ही क्षमा है, जो प्राणी मात्र का सत्य सुहृद है, अनन्त क्षमा शक्ति का ही दिग्दर्शन कराते हैं। उस ईश्वरीय क्षमा शक्ति का निर्बाध एव पूर्ण सचार सत जीवन मे ही होता है। इसलिए श्री करुणामय भगवान् ने कलि मे—इस युग के अवतार मे सत स्वभाव ही दर्शाए हैं। अहिंसा व्रत को ही सर्वश्रेष्ठ व्रत—मानने वाले दयामय बुद्ध भगवान् ने इसी युग मे अवतार धारण किया था। विवादास्पद, स्वर्गीय फल प्रदाता तथा दुष्कर साधन साध्य कर्मकाण्ड को गौण मान कर केवल श्री हरि नाम से ही सर्वार्थ सिद्धि का मार्ग दर्शन कराने वाले श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु का अवतार भी यही सिद्ध करता है कि वर्तमान युग मे श्री भगवान् सत वेश मे

हो प्रकट होते है। भगवान श्री हैडाखान वाले बाबा पूण पुरुष हैं। अवतार का हेतु सब कालो में एक समान ही नही है। एक ही विष्णु नाना प्रकार के रूप—नाम धारण कर मत्यलोक मे आते हैं, इस समय भगवान् को इसी रूप मे प्रकट होना है। समयानुकूल लीला के लिए यही प्रशान्त वेश उपयुक्त है।" ये बातें जिसने सुनी, सभी प्राय सहमत हो गए। मेरे सतसगी कूर्माचल वासी तथा अन्यान्य प्रेमीगण तो अन्य उपासना त्याग कर श्री बाबा महराज का ही आराधन स्मरण करने लगे। बहुत व्यापक रूप से सवत्र इस अवतार तथा अवतारी की चर्चा एव उपासना होने लगी। और इधर अचानक मेरे हृदय मे यह सघर्ष बल पकडता गया कि विश्व मे बहुत से सिद्ध पुरुष भी हुए हैं। आज भी सव सिद्धि सम्पन्न नही तो भी बहुत सी अलौकिकता महात्माओ मे देखने को मिलती हैं। श्री हैडाखानवाले बाबा भी ऐसे ही कोई सिद्ध हो तो क्या प्रमाण है, इसका कि वे पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्म हैं। सिद्धि की उपासना और भगवान की उपासना मे बडा अन्तर है। यद्यपि भगवान् के सब रूप है, तथापि भगवद विग्रह सवथा ही अद्वितीय है। जो साधक राम, कृष्ण, शिव तथा शक्ति की उपासना त्याग कर श्री महाराज जी को ही भगवान् ब्रह्म समझ कर उनकी पूजापाठ करते हैं, वे भगवत्प्राप्ति स वञ्चित रह जायेंगे यदि श्री हैडाखानवाले बाबा भगवान् नही हैं। मैंने उन विश्वासी साधको से ऐसा ही कहा है कि वे परात्पर ब्रह्म हैं। वे साधक गण मेरी बात को ध्रुव सत्य मान कर अपने साधन पथ पर चल रहे हैं। यदि यह सन्दिग्ध है कि पूज्य बाबा महाराज सिद्ध हैं वा परात्पर ब्रह्म स्वरूप हैं, तो मैं उन धर्मात्मा श्रद्धालुओ को धोखा दे रहा हूँ। इन आँखों से मैं देखू कि वेद, पुराण तथा तन्त्र ग्रन्थो मे जैसा भगवत् स्वरूपो का वणन है वैसा ही स्वरूप श्री 'बाबा' का भी है। तब मुझ पूर्ण

समाधान तथा स तोष होगा।

चार पाँच दिनों तक मानसिक सघष दिन प्रतिदिन उग्ररूप धारण करता गया। एक दिन श्री भगवान की कृपा से माघ कृष्ण पञ्चमी रविवार तदनुसार ता० २४ जनवरी १९५४ को में और भक्त बाँकेलाल पाठक गोलानदी के तरफ भ्रमण करने गये। सवेरे का नौ या दस का समय होगा। हलद्वानी हवाई अड्डा (अब दूसरा भी बन रहा है) गोला नदी के तट पर शहर से एक मील की दूरी पर है। पहिले वहाँ बडा जगल था, अब भी मैदान के आगे गहन जगल है। वहा पर शेर भी आता है। उमी जगल की ओर मैं तथा वह भक्त आगे को बढ़े। कुछ दूर—एक फर्लाङ्ग जाकर बटिया भी खो सी गयी। यहाँ तक तो लकडहारो के आने जाने से एक छोटी सी बटिया बन गई थी। आगे माग नही दीखने के कारण स्वभावत मन मे आया कि आगे कसे जाऊँगा? आगे कोई रास्ता बताने वाला भी नही है। पलभर मे ही यह विचार आया और समाप्त भी हो गया। आग आगे मैं और पीछे भक्तजी बालटी लिए आ रहे थे। मे नीची दृष्टि कर के चल रहा था। अकारण ही ऊपर की ओर देखा तो करीब बीस हाथ की दूरी पर "श्री बाबा" भगवान् ने आते हुए दशन दिए। मै समझ गया कि यह रूप सब रूपो से विलक्षण है। उनका सनातन स्वरूप यही है। लोकानुग्रह के लिए भगवान ने जब-जब जैसे जसे रूप धारण किए हैं, उनका विशद वणन श्रुति तथा सतवाणी मे ऐसा ही है। वे ही आशुतोष अभयङ्कर दिव्य चक्षु त्रिनेत्रधर भगवान् शङ्कर हलाहल विष पान किए महा प्रशान्त भाव से मेरी ओर आ रहे थे। उनके श्री नेत्र की किरण मेरे वक्षस्थल को चीरती हुई भीतर एक दिव्य ज्योति के रूप मे विराजमान हो गई। मैंने दूर से मानसिक ही प्रमाण किए। हाथ अपवित्र होने के कारण श्री चरण स्पश

करने का भाव नही आया। उनकी प्रथम दृष्टि मेरे ऊपर पडते ही मैं सब भूल गया। अपनत्व स्वचेतना खो गई। कुछ अचेतनावस्था मे ही मैंने प्रभु से पूछा—"उधर जल है ?" श्री प्रभुजी ने गम्भीर स्वर मे—मधुरिम वाणी मे आज्ञा कारी—"होगा"। मैंने पुन धृष्टता की। उनसे पूछा—"तुम किधर से आरहे हो ?" श्री भगवान ने केवल हाथ से श्री हैडाखान की ओर सकेत कर दिए। मै उन्ही श्री चरणो की कृपा से यह अच्छी तरह समझ गया कि श्री सदाशिव अवतार श्री हैडाखान वाले भगवान मेरे सशय दूर करने तथा अपने परात्पर ब्रह्म स्वयभू स्वरूप के दशन करने पधारे हैं। परन्तु आनन्द तथा शाति के साथ ही मुझे लज्जा भी बहुत आई। "मै कैसा अपात्र अविश्वासी हूँ। प्रभु की इतनी कृपा कि देव दुलभ ऋषि मुनियो को भी अप्राप्त पदाथ हसाते खिलाते प्रदान कर देते हैं। तब भी मैं उनको नही समझता हूँ। महा अज्ञानी बालक जसी चपलता तथा दुराग्रह से उनकी महिमा का सधान करना चाहता हूँ। यह विचार भी शीघ्र ही शात होगया। मुझे तथा भक्त को कुछ भी ज्ञात नही हुआ कि कैसे मैं आगे बढकर मुड गया और कसे भक्त मेरी बगल मे खडा होगया।

श्री महाराज जी ठीक मेरे सामने सात आठ हाथ की दूरी पर खड़े थे। त्रिनेत्र से चतुर्दिक इतना तेज फल रहा था कि मैं बहुत प्रयत्न सर्वाङ्ग दर्शन का करता था। परन्तु उस तेज के कारण बहुत वन्य युक्त प्रयत्न तथा श्री प्रभु की कृपा से केवल एक अग के ही दशन हो पाते थे। उस रूप मकरद पर मन भ्रमर सम्पूण कला से क्रीडा कर रहा था। केवल श्री चरण, ओष्ठ, दिव्य नेत्र तथा श्री कर कमल ही सुस्पष्ट दशन दे रहे थे। अन्य श्री अग प्रचण्ड तेज युक्त—परन्तु महा मोहक, अति तीव्र प्रभाव परन्तु मधुराति मधुर, एव आशिक श्री अग दर्शन

पर तु क्षणिक अश दर्शन से ही विक्षु ध चित्त को चिर नाम बनाने मे समथ । अहा ! प्रभु की अपार करुणा से जब मुझे श्री "नख" च द्र के दशन हुए, उस समय का भाव कसे लिखू ? भक्त ने अपनी धमपत्नी से घर आकर कहा कि "बावा श्री गुरु महाराज के दशन से ऐसे हो गये जसे कोई पतिव्रता स्त्री अपने पति के सामने हो जाती है ।" भक्त कवि है, वा नही, परन्तु बात बहुत ही यथाथ उसने कही । श्री चरण नख के दशन से ऐसा हुआ कि केवल बुद्धि, मन तथा प्राण ही नहीं, यह स्थूल शरीर भी परम ज्योतिकण बन कर उन ज्योतिष्पुञ्ज मे विलीन हो रहे हैं । उस समय जो कुछ दीखता था, सब चि मय ही प्रतीत होता था ।

जब मैं महातल्लीन दशा मे हो जाता था, तो श्री भगवान मेरी ओर देखते हुए भक्त से बात करने लग जाते थे । और उनकी बातो मे मेरा मन आकृष्ट हो जाता था । भक्त से श्री महाराज जी कहते थे—"मैं लकडी लेने यहाँ आया था । लकडी नहीं मिली । भोजीपुरा जाना है । गाडी मिल जायगी ।" इस बीच मे कहते कहते चुप होकर मेरी ओर देखने लग जाते थे । उनकी दृष्टि मात्र से मैं सनाथ निर्विकल्प कृत कृत्य हो गया । केवल श्री मुख की वाणी ही उस 'अवस्था' से आकर्षित कर लेती थी । कुछ काल पश्चात् पुन श्री महाराज जी ने आज्ञा की कि "मै तीन दिन का भूखा हूँ । लकडी मिली नही । भक्त तो उनको एक सामान्य गृहस्थ किशोर बालक समझता था, पर तु मुझे दशन दे रहे थे साक्षात् सदाशिव रूप के । त्रिनेत्र से निर तर आशीर्वाद वर्षाते रहे । भक्त से बात करने पर भी होट नही हिलते । उस समय की दशा अवणनीय है । सिद्धाश्रम मे श्री महाराज जी सन्त वेश मे थे । परन्तु आज इस प्राथना को सफल कर रहे थे—

"शिव शान्त स्वरूप का दर्शन दो।"

(हे शिव ! मुझे अपने शान्त रूप के दर्शन प्रदान कीजिये।)

जब मैंने श्री मुख से "भूख" शब्द का नाम सुना तो मेरा मन जो प्रभु के ऐश्वर्य सागर मे लीन था, हठात् ऐश्वर्य शक्ति को भूल गया, और मन में आया कि चार पैसा दे दूँगा, चना चबा कर पानी पी लेंगे। और यहाँ पर क्या हो सकता है। (मन कितना क्षुद्र है। अहा ! प्राण धन आज भूखे सामने कृपा-कर उपस्थित हैं। परन्तु यह अल्पज्ञ मन क्या सोचता है। प्रभु के प्रसाद के लिये) अब मैंने धीरे से भक्त से कहा—"भगत जी ! चार पैसा हैं ?" भक्त ने कहा—"एक दुअन्नी है।" मैने कहा कि इनको देदो। भक्त ने जैसे ही हाथ जेब मे डाले कि उसी क्षण श्री विश्वम्भर भगवान औढर दानी ने अपना श्री कर कमल फैला दिया। उनके श्री हस्त मे भक्त ने दूर से ही दुअन्नी छोड दी। पता नही दुअन्नी कहाँ गई। हमने तो यही देखा कि श्री महाराज जी के हाथ में दुअन्नी जा रही है।

मैं प्रेम शून्य, यह विचार कर आगे चल दिया कि स्नान आदि करके फिर आयेंगे। परन्तु करुणामय प्रभु वही विराजते रहे। बडे दयार्द्र होकर बोले—"बाबा ! मनसा फलेगी तुम्हारी। जाइए आपका कल्याण होगा। चार पैसे का चना चबाकर पानी पी लूँगा।" यह आशीर्वाद दे श्री प्रभु बडी शीघ्रता से चलने लगे। मैं पूर्व की ओर चला और श्री महाराज जी पश्चिम की तरफ चले। परन्तु उस समय तो मुझको आगे पीछे सब दीखता था।

मैं आनन्द से परिपूर्ण तृप्त होने के कारण शीघ्र बोल न सका, परन्तु भक्त ने कहा—"बाबा ! ये तो श्री महाराज जी हैं।" मैंने उससे विनोद में पूछा कि तुम्हें कैसे मालूम हुआ ? उसने कहा कि ये आशीर्वाद उन्ही का है। मुझे प्रसन्नता हुई

इसके सद्भाग्य पर, और शीघ्र ही उस भक्त ने कहा कि यदि श्री महाराज जी होगे तो बोलेगे, अ यथा उत्तर नही मिलेगा। मैं तो जोर से बोल नही सकता हूँ। तुम श्री प्रभु को पुकारो। भक्त तो उनको पहिले एक सामान्य युवक समझ रहा था। अत इतनी प्रतीति होने पर भी उसने उनको लाला ही कह कर सम्बोधन किया। भक्त ने लाला कहा और उधर से साथ ही, जसे एक ही व्यक्ति बोल रहा हो, श्री भगवान् ने "जी" कहा। सुनने मे ऐसा आया कि एक ही व्यक्ति ने "लालाजी" कहा है। भक्त को आश्चय हुआ! मैने कहा—"दौड लगा। श्री प्रभु का दर्शन कर।" भक्त जी दौडे, जितनी शक्ति थी उसके अनुसार खूब दौड लगाई। इधर मेरे मन मे हसी आई कि "क्या भक्त बेचारा—विश्व मे कोई ऐसा है जो स्वबल से भगवान् को प्राप्त करले?" यह विचार आते ही मैने भक्त जी को आवाज दी। "भगतजी दशन हुए?" उत्तर आया 'नही"। मैंने वही से खडे खडे कहा—"जहा हो वही खडे हो जाओ। हाथ जोडकर प्रणाम करो।" भक्त वही खडा हो गया और ऊपर दृष्टि तथा हाथ उठाकर प्रणाम किया। अणु अणु व्यापक सर्वेश्वर ने दया की। भक्त को श्री महाराज जी के पृष्ठ भाग के दशन हुए। कुरता, टोपी धारण किए, बहुत लम्बे पृथ्वी से लगभग २०० हाथ की ऊँचाई पर महा दिव्य तेज से सम्पूण देश व्याप्त करते हुए श्री बाबा हैडाखान वाले ऊपर को जा रहे हैं। दशन से वह भी तृप्त आनन्दित हो गया। श्री भगवान् की लीला अब उसकी समझ मे आयी। तब वह स्वय बोला —बाबा! तभी तुम इतने शान्त हो गये थे। साक्षात् श्री परात्पर ब्रह्म—कैवल्य शिव—बाबा हैडाखान वाले है। इसमे कभी मुझे सन्देह हो भी सकता था। परन्तु उन्होने दयाकर सदा के लिए यह शका मिटा दी।" मैं भी सुनकर मन ही मन आनन्दित हो रहा था।

कई दिनो तक ये दशनान द अपने चरम सीमा मे रहे। सदैव के लिए यह विश्वास प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हो गया कि "श्री बाबा' महाराज पूर्णावतार है। भि न भिन्न काल मे अ य लागो को भी ये अनुभतियाँ हुई है। आज से तीस वष पूव जब कुमायू (हिमालय) मे (भगवान् श्री हैडाखान वाले बाबा की) इनकी लीला जन जन मानस व्यापिनी थी उस समय भी जो जो महानुभाव आए उ हे यह प्राकट्य स्वरूप समझने मे देर नही लगी। श्री भगवान किसी प्रमाण से सिद्ध नही होते। जो सबका प्रमाण है—उसका प्रमाण क्या हो सकता है? ऐसा ही श्रुति मे प्रश्नोत्तर है —

"स भगव कस्मिन प्रतिष्ठति"

"स्वे महिम्नि"

(वह ब्रह्म किसमे प्रतिष्ठित है? अपने ही परम दिव्य स्वरूप मे)।

वृन्दाबन

एक समय सूर्यग्रहण के पर्व पर मैं कछला घाट गंगाजी में पर्व काल में ही स्नान कर रहा था। विचार वहाँ से स्नान कर वृन्दाबन आने का था। स्नान करते समय इष्ट मंत्र का स्मरण कर श्री दयामय प्रभु श्री बाबा हैडाखान वाले से प्रार्थना की, प्रभु ! आप ईश्वर है। सम्पूर्ण सृष्टि के आधार स्वरूप संरक्षक रूप तथा आदि पुरुष परम कारुणिक प्रभु है। कहा गया है —

"सब देव मय देह तुम्हारी।
तुम सम तुम हे प्रभु अविकारी ॥"

(हे प्रभो ! आपका परम दिव्य स्वरूप सम्पूर्ण देव स्वरूप है, हे अविकारी प्रभो ! आपके समान तो विश्व में आप ही है)।

अतः अब वृन्दाबन में आपका दर्शन श्री कृष्ण के स्वरूप में करूँ। ऐसी प्रार्थना कर इस बात को मैं भूल-सा गया। इसमें सन्देह नहीं कि प्रभु श्री महामुनी व श्री हैडाखान वाले बाबा और परम रसिक शेखर नन्द नन्दन भगवान् श्री वृन्दाबन वाले श्याम एक ही हैं। भूलने का प्रधान कारण मेरे हृदय में प्रेम का न होना। यह कृपा तो सर्वथा निस्सन्देह प्रभु की ओर से ही होती रही है।

श्री धाम वृन्दाबन में श्री वंशीवट पर श्री रसराज अपनी प्रियतमा अभिन्न हृदया श्री वृषभान नन्दिनी के साथ रास विलास कर रहे थे। दिन के १० बजे होंगे, बहुत से दर्शक भक्त वृन्द उपस्थित थे। सहसा मेरे मन में यह विचार उठा। चित्त वहाँ नहीं रहा पूर्ण एकाग्रता स्वयं ही हो गई। शान्ति आनन्द तथा पूर्ण स्वस्थता का अनुभव करते हुए नितान्त बाह्य ज्ञान

शून्य अवस्था मे मै भगवान् श्याम सुन्दर से कहने लगा—"प्यारे ! मुझे तो अब सब वस्तुओ की प्राप्ति हो गयी । सभी मनोरथ मेरे श्री गुरुदेव की कृपा से अवश्यमेव पूर्ण होंगे परन्तु यदि तुम अभी अपनी सलोनी सांवरी गोपी जनो के प्राण, नन्द यशोदा के जीवन तथा सखागणो के उल्लासपूर्ण सब सौख्य, अनिन्द्य सौन्दर्य तथा अद्वितीय माधुर्यमय श्री विग्रह के दर्शन देदो तो तुम्हारा भी नाम लेगा । श्री कृष्ण बडे कोमल स्वभाव है । यह सत्य है, तभी समझ मे आएगी ।" अहा—दया ही तो है । श्री महाप्रभु चैतन्य देव ने कहा —

"दीन बन्धु रिति नाम ते स्मरन ।
यादवेन्द्र पतितस्तोऽहं मुत्सहे ॥"

(हे प्रभो ! यादवेन्द्र ! आप के दीन बन्धु नाम का विरुद स्मरण करते हुए मुझ पतित के हृदय मे भी उत्साह होता है) ।

शास्त्र तथा सन्त भगवान् की कृपा के विषय मे कहते हैं । अनेको उदाहरण मिलते हैं कि किस प्रकार श्री भगवान ने अयोग्यो के भी अनर्गल प्रलाप कितने शीघ्र सुने हैं । यहाँ भी उसी की पुनरावृत्ति समझो । प्रार्थना कहो वा लडाई झगडा अपने प्यारे मोहन से, कुछ भी कहो, ये विचार समाप्त होते ही "वहां एक विशाल वट वृक्ष के समीप मे स्वच्छ जल की विशाल एवं गंभीर धारा लहराने लगी । नील परिधान धारण किए श्री यमुना तरल तरंग युक्त सुषुमा लिए द्रुत वेग से बह रही थी । कूल पर विविध रंग के पुष्पो ने अपना सुन्दर क्रीडाङ्गण बना रखा था । इसी यमुना तट के वट वृक्ष के नीचे, जिसे वंशीवट कहते हैं । श्री कृष्ण पीताम्बर धारण किए मन्द मन्द मुसकाते बांकी दृष्टि से देखते बडे ही मृदु एवं मधुर स्वरों में वंशी बजाने लगे । कुटिल तथा काली अलकावलियो से वेष्टित श्री मुखचन्द्र और अधिक श्री विग्रह की शोभा बढा रहा

था। कुण्डल की स्वर्णिम सुकान्ति सम्पूर्ण श्री विग्रह को अलंकृत ही नही, अपितु दर्शक नेत्रो को सुदिव्य तेज प्रदान कर श्री भगवान् के अनन्त श्री सौन्दर्य का साक्षात्कार करा रही थी। अखिल भुवन मोहन—साक्षात् मन्मथ मन्मथ—कोमल किशोर कान्त श्री कृष्ण के असीम एव अलौकिक सौन्दर्य माधुर्य की बात कहाँ तक कही जाए? अहा! यही तो सत्य उक्ति है—

"हरि हेरत हिय हरि गयो,
हरि सर्वत्र लखात।"

(श्री भगवान् के दर्शनो से हृदय हरण कर लिया गया, तब सर्वत्र भगवतस्वरूप ही दृष्टिगोचर होने लगा)।

कुछ अरुणिमा युक्त सुविशाल प्रफुल्ल दल कमल लोचन शान्ति, आनन्द तथा अनुराग का आकार बना था। उसी कमनीय, वक्र एव उदार भृकुटी से इस सन्तप्त हृदय मे अविकल्प्य राग, अश्रुत पूर्व आसक्ति तथा अविनाशी आनन्द का सागर बहा रहे थे, कंवर कान्ह अपलक दृष्टि से मेरी ओर देख रहे थे। स्मित श्री मुखारविन्द से कभी कभी वशीनाद निकलता था। श्री भगवान व्रजेन्द्र नन्दन वट वृक्ष के नीचे खुली जगह (सिंहासन नही) मे पाव फैला कर बैठे थे। एक पाव लम्बा तथा दूसरा पाव एक दूसरी जँघा पर रखा था। शरीर नग्न था। केवल विविध रगो के पुष्पो की बनमाला धारण किए थे। मुकुट की तरफ मेरा ध्यान ही नही गया। श्री चरणो से ऊपर नेत्र पर्यन्त ही मैं दर्शन कर सका। नेत्राकर्षण इतना अधिक था कि उससे ऊपर दृष्टि जा ही नही सकती थी। वहाँ पर जाकर दृष्टि मानो अपना अवलोकन स्वभाव त्याग कर उसी स्नेह सरोवर की मछली बन वहीं निमग्न—बेसुध हो जाती थी। निश्चित समय तो ज्ञात नही परन्तु अधिक देर तक यह दशा रही। पश्चात् इस दशा से उत्थान हुआ और फिर वही वशीवट, वही मकान जहाँ रास हो

रहा था, वही तबला सारगी के स्वर, वही रास धारी, वही दशक व द तथा मै भी वसा ही—पूववत् हो गया। श्री भगवान् के समक्ष जो स्थिति थी, वसी पीछे नही रही। उस समय श्री कृष्ण कुछ नही बोले, तथा मैने भी उनसे कुछ नही कहा। मै तो केवल दश न मात्र स ही तुष्ट हो जाता हूँ। ये भाव श्री महाराज जी की कृपा से ही रहता है। हृदय मे बचपन से ही ऐसा विचार है कि भगवान से कोई वस्तु माग लेने पर केवल उसी वस्तु की प्राप्ति होती है। भगवान की नही। अत भगवान् से मागना अपने को ही धोखा देना है। 'माँ' चाहती है कि अपने बच्चे के लिए बहुमूल्य आभूषण बनाऊँ पर तु अबोध बालक हठ करता है कि 'माँ मुझे दो पसे का खिलौना लादे। इसी प्रकार अज्ञानी सकामी साधक, जिसे 'इष्ट' की कृपा, उदारता तथा शक्ति पर विश्वास नही है, वह अपनी क्षुद्र, वासना युक्त तथा ससीम इच्छाओ की पूर्ति के लिए 'इष्ट' से याचना करता है। अभीष्ठ प्राप्ति से स ताप क्षणिक आह्लाद (जब तक दूसरी इच्छा नही होती) होता है तथा असफलता से अविश्वास एव साध्य और साधन से अरुचि तथा अनुत्साह पदा होता है।

कहना सुनना तो अ य मे सम्भव है। पर तु जो केवल अ त करण ही मे नही, अनन्त ब्रह्माण्ड के प्रत्येक परिमाणु मे नित्य अवस्थित है। उस सवज्ञ अ तर्यामी से कुछ कहने वा सुनने की विडम्बना ही क्या ? वह अवस्था तो अपनी ही सत्य, शुद्ध तथा साध्य स्वरूप है। श्री भगवान् से किसी प्रकार की याचना करना अथवा दीन दुखी भक्त समझकर भगवान् का वरदान देना, ये दोनो बाते अपूर्णत्व की ही हैं। वहाँ तो केवल "आत्मरति, आत्मक्रीडा तथा आत्ममिथुन" ही है। यहाँ पर तो द्रष्टा तथा दृश्य के पार्थक्य का पूर्ण लोप है। साधक तथा साध्य का पूर्णैक्य है। वास्तव मे यह रहस्य अनिर्वचनीय ही है। अहा! क्या ही

अपूर्व मिलन है। भक्त भगवान हो जाता है, और भगवान् भक्त हो जाते हैं। अन्यथा जीवो के लिए यह सच्चिदान द मय सुख अगम्य तथा अप्राप्त ही रहेगा। केवल एक मात्र कृपा साध्य—सच्चिदानन्द घन निकुज रमण कारुण्य किशोर--श्री राधाकान्त के ये अपार दया तथा चिरस्मरणीय—सर्वथा अनुपमेय—अद्वितीय चित्ताकर्षिणी शोभा के दशन से जो मुझको सुख मिला, उसका अनुभव कुछ अशो मे हृदय ही कर सका। उस सुखानुभूति का वणन कदापि किसी से भी सम्भव नही है।

"गिरा अनयन नयन बिनु बानी"

(वाणी के नयन नही हैं, और नयनो के पास वाणी का अभाव है)।

यदि वाणी को दृष्टि और नेत्र को वाक शक्ति मिले तो कही इस परम मार्मिक रहस्य की यत्किञ्चित व्याख्या सम्भव है। उस समय आनन्दातिरेक से रोम रोम से यह ध्वनि निकल रही थी। पूर्ण तल्लीनता की दशा मे स्वत मुख से ये शब्द निकलते थे। सदगुरु अवतार मे श्री हैडाखान वाले बाबा ही कृष्ण है। कृष्ण ही कुरता टोपी वेष मे श्री हैडाखान विहारी बने है। ऐसा प्रतीत होता था कि सम्पूण परमाणु आज मेरे इस नाद से प्रतिध्वनित हैं —

"गुरो कृपा हि केवलम्।
नमामि कृष्ण कोमलम ॥"

((श्री सद्गुरु देव की अहैतुकी कृपा ही केवल तत्व है परम सुकोमल कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ)।

इन नामो के उच्चारण मे भी वही गम्भीर शान्ति एव परानद की स्थिति थी। जसे श्वास प्रश्वास बिना सकल्प के ही होते रहते हैं। उसी प्रकार इन मधुर नामो—महामन्त्रो के मानसिक उच्चारण अचेतावस्था में भी हो रहे थे।

रास लीला समाप्त होने पर मैं वहाँ से श्री कृष्ण तथा दया स्वरूपा अखिल जग-जननि श्री राधा को बारम्बार अनुस्मरण करता हुआ चला आया। श्री कृष्ण की दया परक कथाएँ जितनी मैंने सुनी थी, पुराण तथा भक्त माल मे वे सब बातें आज अधिक विश्वसनीय तथा सत्य प्रतीत होती थी।

श्री वृ दावन धाम की ओर भी बहुत सी घटनाएँ है। श्री निकुजबिहारी—श्री हरिदास जी के लाडले लालजी की कृपा के विषय मे मैंने जानकर ही कुछ नही लिखा है। श्री बाँके बिहारी जी महाराज की दया इस शरीर पर बहुत है। श्री धाम वृन्दाबन में अनेकों बार—एक समय एक भक्त के सामने भी श्री विग्रह से श्री बिहारी जी महाराज प्रकट हुए थे। और भी बहुत सी घटनाएँ हैं। परन्तु अभी वे बातें लिखी नही जाती है। परम रहस्यमयी घटना का उल्लेख करने मे स्वभावत सकोच हो रहा है। परन्तु यहाँ एक और घटना का उल्लेख कर ही इस प्रकरण को समाप्त करता हूँ।

यह घटना २१ ८ ५५ की है। इस वर्ष मै श्री बद्रीनारायण गया था। वहाँ एक भार प्रदेश के साधु के पास मै दस, बारह दिनो तक रहा। प्राय नित्य ही उन साधुजी से श्री महाराज जी के विषय मे चर्चा होती थी। बाल्य काल से ही वे साधु भी उनकी (प्रभु श्री हैड़ाखान वालो की) अलौकिक महती महिमा से सुपरिचित थे। वे साधु भगवद्दर्शन के लिए बडे व्यग्र थे। भगवान् के विरह मे वे प्राणान्त करना चाहते थे। श्रीमद्भागवत के गोपी गीत भ्रमर गीत आदि स्तोत्रो को वे बडे ही करुणस्वरो से पाठ करते थे। उनकी व्याकुलता देखकर मुझे भी दुःख होता था। परन्तु मैं उनका दुःख दूर कैसे कर सकता था, अत मैं उनको धैर्य देकर तथा श्री भगवान् के पतितोद्धारक स्वभाव का स्मरण कराकर वहाँ से चला आया। मेरे आते समय वे साधु

इतने व्याकुल हुए, जसे इनके हृदय से कोई प्रिय वस्तु सदा के लिए बिछुड रही हो।

श्री बद्रीनारायण से मैं सीधे हल्द्वानी होते श्री व दावन आ गया। और वे साधु वहीं पर रहे। उनका नियम श्री बद्री-नारायण मे ही छ मास तक रहने का था। एक रात वे साधु अपनी कुटिया मे ध्यानावस्थित थे। उसी अवस्था में—ध्यान ही मे उन्होने देखा कि एक जल से भरे कुण्ड मे श्री भगवान् हैडाखान वाले बाबा के चित्र पडे है। उनको अपने पूज्य चित्र को देखकर क्षोभ हुआ कि किस व्यक्ति ने ऐसा काय किया है? ध्यान ही में—शन शन प्रत्यक्षवत् होता जा रहा था, उन्होने चित्र को कुण्ड से बाहर लाने का प्रयत्न किया। चित्र को उठाते ही फिर दूसरा चित्र, पुन तीसरा चित्र, इसी क्रम से तास के पत्तो के से वे चित्र भी एक के बाद एक आने लगे। उन्होने अपनी चेतना को खूब सम्हालने की चेष्टा की, किन्तु इस विचि-त्रता ने उन्हे सज्ञा शून्य बना दिया। कुछ काल पश्चात—अर्द्ध चैतन्यावस्था ही मे बाहर आने का विचार किया उसी क्षण बाहर से गम्भीर सुस्पष्ट तथा अन्तर वेधक शब्द सुनायी दिए।

श्री हैडाखान वाले बाबा सव व्यापक हैं!
श्री हैडाखान वाले बाबा सव व्यापक हैं!!
श्री हैडाखान वाले बाबा सव व्यापक है!!!

ये दिव्य स्वर सुनते ही वे समझ गये कि ये मानवीय शब्द नही हैं। बहुत साहस कर कुटिया का दरवाजा खोला, किन्तु वहाँ पर कोई नही था। उनको इससे विशेष विस्मय नहीं हुआ। कारण कि शब्द सुनते ही उनके हृदय मे यही आया कि इस क्षेत्र के (इस क्षेत्र की महिमा के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जहा श्री नरनारायण भगवान् जैसे तपस्वी तप करते हैं।) सिद्ध देव गण मुझको आदेश तथा श्री

हैडाखान वाले बाबा का स्वरूप ज्ञान प्रदान कर रहे हैं। श्री बद्रीनाथ पुरी मे अलक न दा के उस पार यह कुटिया है। एका त तो है ही विशेषकर रात मे ठण्डी मे काटो वाली एक छोटी सी, सो भी कही उतार तो कही चढाई वाली, पगडण्डी (माग) मे अकारण कौन आएगा। चादनी की रात थी तथा दूरो तक मदान है। यद्यपि स्वहृदय का साक्ष्य (गवाह) सर्वोपरि है तथापि "ये देव वाणी है" इसके सिद्ध हेतु और भी अनेक अभ्रा त कारण—वहाँ उ हे मिले। साधुजी को परमान द हुआ। अब उनका मन बद्रीनारायण मे नही लगा। श्री व दा बन धाम मे आगये और मुझसे बहुत प्रेम करने लगे। उनके अत्यधिक आदर प्रेम से मुझे सकोच होता था, पर तु उनका बार बार यही कहना था कि "तुम्हारे ऊपर भगवान श्री हैडा खान वाले बाबा की कृपा है। तुम मुझको भगवान् के दशन करा सकते हो।" अपनी असमथता मैं बार बार सबके सामने कहता था। मे विश्वास दिलाकर कहता था कि मेरे ऊपर श्री दयालु भगवान् महा असमथ समझकर कृपा की है। मुझमे शक्ति नही कि मैं सबको दशन करा सकू। अब आप ऐसा प्रेम विश्वास —भगवान वृ दावन बिहारी श्री राधाकृष्ण भगवान सदगुरु रूपधारी श्री हैडाखान विहारी के चरणो मे करें। मैं भी श्री भगवान् से प्रेम करू ऐसा कीजिए।" उन्होने जसी अपनी धारणा बनाली थी, उसी पर दृढ से थे। श्रावण शुक्ल तृतीया को हम लोग श्री बाके बिहारी जी के दशन कर किशोरपुरा मुहल्ला में एक धमशाला की छत पर बैठे थे। रात के बारह बजे थे। आकाश स्वच्छ था। छत के ऊपर एक चारपाई पर मैं और वे साधु दोनो आमने सामने बठे थे। अधिक आदरभाव के कारण बडे सकोच से महात्मा मेरे सामने बठे थे। दो व्यक्ति वहा और उपस्थित थे। श्री भगवान् की बातें हो रही थी। अचानक

मैने ऊपर आकाश की ओर देखा। प्राण वल्लभ श्री युगल सरकार—लाडिलीलाल अपनी दिव्य शोभा छिटकाते मन्द मुस्काते — वक्र चितवन से दया वर्षाते एक दूसरे खूब सट कर खडे थे।

कुछ काल पश्चात सव प्रथम स्फुरण हृदय मे यह आया कि "इस साधु को दशन नही हुए।" बोल तो सका नही परन्तु सकेत करने के लक्ष्य से जब मैने नीचे देखा तो मेरा वक्षस्थल महादिव्य प्रकाश पुञ्ज प्रतीत हो रहा था। यह देख और अधिक स्तब्ध हो गया। मै सकेत भी न कर सका। कुछ देर बाद वह "प्रकाश" चारपाई पर हम दोनो के बीच आ गया। फिर भी जब उस साधु तथा अन्य उपस्थित भक्तो को ज्ञान नही हुआ तो मैने इन सबो को सकेत भी किया और हाथ से स्पश भी किया कि 'देखो! वह प्रकाश ज्योति कसी सुन्दर है?" प्रथम एक भक्त इस रहस्य को समझ गया पश्चात् साधुजी ने भी दर्शन किए, परन्तु इन लोगो को स्वरूप के दशन नही हुए। केवल छत से आकाश पय त अति अलौकिक अनुपमय सुदिव्य प्रकाश की मोटी लकीर दीखीं।

उस दिन भगवान की कृपा का आनन्द तो हुआ ही, परन्तु उससे अधिक आन द यह हुआ कि साधु को बडा स तोष हुआ। उन्होने कहा कि मेरे कम—भाग्य की बात है, परन्तु भगवान् है, दर्शन देते है ऐसी प्रतीति आज मुझ निश्चित रूप से हो गई है।

श्री वन्दाबन की महिमा मैं क्षुद्र क्या लिख सकता हूँ, जैसी मेरी प्राथना थी कि—हे प्रभु! वृ दाबन मे आप 'कृष्ण रूप से दर्शन दीजिए। सो परिपूण की मेरे दयामय नाथ! इस प्रेम क्षेत्र मे बहुत सी अलौकिक घटनाएँ हुई है।

एक समय कई दिनो से मन मे यह सघर्ष चल रहा था,

चित्त खिन्न था । आप ही आप कोई मन से पूछता था—"तुम क्या साधन ससार से पार होने के लिए करते हो ?" मै भी गुप्त प्रश्न का उत्तर गुप्त शब्द ही मे देता था—"कृपा केवल एक कृपा" रे मन ! निश्चय समझ । महान् महर्षियो को भी अपने गत मे मिलाने वाला ससार—जिसकी जननी माया—जिसको देखकर डर जाते है—ब्रह्मर्षि शुक-शौनकादि—शिव ब्रह्म विष्णु देवादि । उस दुरत्यया माया से एक प्रभु कृपा ही पार लगा सकती है । यद्यपि इस उत्तर से समाधान तो था, परन्तु स तोष नही । एक दिन ऐसी ही कृपालु की कृपा हुई । लोहबन ग्राम से हम चार पाँच व्यक्ति नाव से यमुना पार करके श्री मथुरा जी आने वाले थे । उनमे एक ब्रह्मण भी था जिसके पास गीता की पुस्तक थी, मै नाव मे बठ कर श्री गीता जी का पाठ करने लगा । नाव वाला भी भावुक था । वह डाड छोडकर मेरे सामने हाथ जोड कर बठ गया और विनम्र होकर बोला— "महाराज ! पेट का धधा तो करना ही है, मगर आज मै आपके मुख से गीता की कथा सुनूँगा ।" मैंने भी सोचा कि इसको स्वय ही जल्दी पडेगी, इसलिए अधिक उससे कुछ नहीं कहा, और अर्थ सहित मनोयोग से कथा कहने लगा । किस अध्याय का कौन श्लोक था, यह स्मरण नहीं है । ये घटना आज से बीस वर्ष पूर्व की होगी । श्लोक की व्याख्या जब समाप्त हुई तो मैंने कहा—"अरे ! नाव तो चलाओ । तुम तो निश्चित हो बठ गये ।" नाव मे जो दूसरा व्यक्ति बैठा था, उसने भी कहा—"जल्दी करो देर हो रही है ।" यह सुनकर तीसरा व्यक्ति कहने लगा—"अब क्या नाव चलाएगा—मथुरा घाट की सीढियो से नाव लग गयी ।" नाव कैसे सीधी हुई, बहाव पर कसे आई, और बिना खेये हीकैसे पार हो गई ? यह रहस्य कोई न समझ सके । उस समय नाव मे केवट सहित पाच छ व्यक्ति बैठ थे । परन्तु

किसी को कुछ ज्ञान नहीं, सब के सब अपनत्व खो चुके थे।

उस पार जाते ही मुझको स्पष्ट बोध हुआ कि ये कृपा मेरे शङ्काशील मन को पूर्ण समाधान करने हेतु ही हुई है। जसे नाव बिना खेये (साधन बिना) पार हो गई, उसी प्रकार यह जीवन नौका भी ससार सागर से, केवल दया—एक मात्र दया से, निर्विघ्न पार उतर ही जाएगी, मन तो जसा है वैसा है ही। पर तु भगवन्! आपकी दया भी निराली है।

"मोक्ष मूल गुरो कृपा।"

(श्री गुरुदेव की कृपा ही मोक्ष का एक मात्र कारण है)।

चित्त को पूर्णशान्ति मिली। कृपा का उचित अधिकारी तो अयोग्य ही होता है। और सब शक्तिमती "कृपा" प्राप्त कर अयोग्य भी सुयोग्य बन जाते हैं। अपना उद्धार तो कब का हो चुका उसका, उसके आश्रय से तो अ य जीव भी तर जाते हैं। श्री देवर्षि ने कहा है—

"स तरति, स तरति। स लोकान् तारयति॥"

वह स्वय पार होता है, वह स्वय पार होता है। तथा अ य सासारिक प्राणियों को ससार समुद्र से पार उतारता है।

कठघरिया धाम

यहाँ की घटना सभी स्थानो से अधिक औदार्य दया पूर्ण रही है। यहा के प्रसङ्गो का यदि सक्षेप से भी वर्णन किया जाए तो एक स्वतन्त्र महा ग्रन्थ बन जाएगा। इस महाधाम के अलौकिक अश्रुत पूर्व एव चिरस्मरणीय चरित्र सामान्य मानव की बुद्धि से सर्वथा अगम्य तथा दुर्बोध हैं।

"आश्चर्यवत पश्यति।"

(कोई इस परम तत्व को आश्चर्य के समान देखता है)। बस ! यही अक्षरश यहाँ के विषय मे सिद्ध होता है। कठघरिया हलद्वानी (जिला नैनीताल) रेल्वे स्टेशन से तीन मील पर एक गाव है। जब श्री महाराज जी की मूर्ति बनी तो स्थापना के लिये बहुत से स्थानो के विचार आए। परन्तु अन्त मे फाल्गुन शुक्ला पञ्चमी रविवार सम्वत् २०१४ को श्री महाराज जी की मूर्ति प्रतिष्ठा बडे समारोह से श्री कठघरिया धाम मे ही हुई। यह आश्रम श्री महाराज जी के मुख्य लीला स्थलो मे है, यहाँ पर श्री भगवान् तीन तीन महीनो तक बिराजे है। बडे यज्ञ हुए हैं। चबूतरे के लिए जब नीव खोदी गई तो उसके स्थान के नीचे से बहुत साफ भस्म के ढेर निकले थे। श्री महाराज जी द्वारा सम्पन्न यज्ञ—भस्म एक विलक्षण सुगन्ध से पूर्ण है। यहा पर कई एक लामा योगीतान्त्रिक महीनो तक राउटी लगाकर श्री सदाशिव सदगुरु के पावन सान्निध्य में साधना करते थे। इस आश्रम मे एक शिवालय भी है, जिसका नाम श्री प्रभु ने स्वय रखा था तथा अपने श्री कर कमलो से ही स्थापना भी की थी। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गो में हिमालय के ज्योति

लिङ्ग केदारनाथ हैं। अब श्री प्रभुजी ने इस आश्रमस्थ गत्ता शिव का नाम भी श्री केदारेश्वर भगवान् रखा। श्री महाराज जी जहाँ विराजते थे, वहाँ आप ही वट तथा पीपल के वक्ष पैदा हो गये है, अब उनके चारो तरफ चबूतरा बनवाया गया है। आश्रम का क्षेत्र विशाल है, श्री केदारेश्वर के पास मे ही एक शिखरदार मंदिर बनवाया गया, और उसी मे श्री महाराज जी विराजमान हुए। श्री मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन विराट था। दूर दूर के दर्शनार्थी वहाँ पर आए हुए थ। पुलिस तथा स्वय सेवकों की व्यवस्था बिल्कुल ही नही थी। चार पाच दिनो तक यह उत्सव क्रम रहा। परन्तु न तो किसी की कोई वस्तु की चोरी हुई और न कोई उत्तेजक वातावरण ही हो पाया, खोई हुई वस्तु, जिनमे जेवर भी थे, आप ही जिसको मिली थी, वह व्यक्ति पूछ पूछ कर उन चीजा को दे जाते थ। जिसकी जो वस्तु जहाँ पर पड़ी थी वह वही अपना सामान छोडकर उत्सव यज्ञ के दर्शन मे मग्न था। ध्वनि विस्तारक यन्त्रो द्वारा सबको सूचना देदी गई कि बिना भोजन प्रसाद पाये कोई भी स्त्री पुरुष तथा बच्चे न जाएं। अत जनता की भीड इतनी बढ़ गई कि प्रत्यक्ष सबको यह प्रतीत हो रहा था कि श्री महाराज जी स्वय प्रकट होकर सब कामो की व्यवस्था तथा पूर्ति कर रहे है। थोडे से सामान ही मे सहस्त्रो (एक लाख व्यक्ति का अनुमान है) व्यक्तियो ने तृप्त होकर भोजन किया। प्राय कोई व्यक्ति ऐसा न बचा होगा जो अपने घर वालो के लिए यथेष्ट प्रसाद न ले गया हो। और भी भौतिक पदार्थों की प्रचुरता रही। उससे भी अधिक मानसिक पवित्रता तथा सात्विक आनन्द जन-जन का हृदय अनुभव कर रहा था। तथापि हम लोगो ने इस बात को विशेष महत्व नही दिया। ऐसी बातें तो बहुत जगह होती हैं।

मझको म दिर आश्रम बनवाने की रुचि नही है । आजकल इनका सुयोग्य रीति से सचालन होना दुष्कर है । कि तु श्री भगवान् को जो लीला करनी होती है, उसमे कौन बाधा डाल सकता है । श्री भगवान की मूर्ति बन गई, स्थापना का निश्चय भी हो गया । पर तु अपने सत्सगियो से मै बार बार कहता था कि यज्ञ तो होते ही रहते है । इस यज्ञ मे भी केवल खाना पीना —हवन पाठ आदि होकर ही पूण समझ लिया जाए तो कोई विलक्षणता नही रही । इस यज्ञ मे श्री भगवान एसी कृपा करें कि सभी उपस्थित व्यक्तियो को श्री चरणों के दशन हो ।

श्री महाराज जी की दया तथा शक्ति से जो कृपापात्र जीव थोडे भी परिचित हैं, उन भाग्यवान् जीवो की दृष्टि से एसा होना कि सवसमक्ष प्रकट होकर भगवान् श्री हैडाखान वाले बाबा दशन दे, असम्भव तथा आश्चयजनक नही है । मैं श्री महाराज जी से कहता था कि "हे प्रभु ! आपके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है । हे दीन वत्सल ! जब भक्त के हाथ से तुच्छ भेंट स्वीकार कर लेते हैं, तो हे दयाणवनाथ ! आप सहस्रो नहीं सारे विश्व को एक साथ ही देव मुनि दुलभ दशनो से सनाथ कर सकते है । मेरे ऊपर आपकी बडी कृपा है । श्री चरणो के प्रभाव से यह क्षुद्र हृदय आपको कुछ समझता है, परन्तु आज अविश्वास अधिक हो गया है । भौतिक विज्ञान जसे ही प्रत्यक्ष को ही मानने के आग्रह ने मानव मस्तिष्क मे घर कर लिया है, अतएव आज केवल यही प्रार्थना है कि मुझे भले ही दशन न हों, परन्तु जो जीव इस यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिए आये हैं, उन्हे आप प्रकट होकर अवश्य दशन दे । लोगो की धारणा पुन दृढ़ हो जाएगी कि जो कुछ यज्ञ जपादि हम करते हैं, उसका प्रत्युत्तर श्रद्धा-भाव के क्रम से हमको अवश्य प्राप्त होता है । श्री भगवान् से यह प्राथना करके मैं तो भूल सा ही गया —

"यथा दरिद्र विबुध तरु जाई।
अति सम्पत्ति माँगत सकुचाई॥"

(जिस प्रकार जन्म दरिद्री पुरुष मन चिन्तित समृद्धिप्रद कल्प वृक्ष के नीचे जाकर भी उससे अधिक सम्पत्ति की याचना मे सकोच करता है)।

ऐसी ही मेरी मनोदशा है। श्री भगवान की महती कृपा तथा महदैश्वर्य का प्रत्यक्ष कई बार हो जाने पर भी चित्त स्वाभाविक सकीर्णता को त्यागने मे समय समय पर असमर्थ सिद्ध हुआ है। परन्तु श्री भगवान की लीला तो किसी की अपेक्षा नही रखती है। उसे जब जहा जिस प्रकार से अवतीर्ण होना होता है, वैसे ही वह कोई भी कारण निमित्त बना ही लेता है।

आज भी ऐसा ही हुआ, रविवार पञ्चमी के दिन ग्यारह बजे श्री विग्रह की स्थापना का मुहूर्त निश्चित हुआ। ऐसी शास्त्रीय पद्धति है कि एक रात्रि पूर्व श्री विग्रह जल मे रखा जावे। अत शनिवार की रात को श्री मूर्ति को जल मे नही रखा गया, केवल कोठरी मे श्री विग्रह अनावरण रूप से विराजमान थे। जनता की अपार भीड के कारण कोठरी बन्द थी, उसमे महाराज जी की मूर्ति, मै, दर्जी जो उस समय श्री भगवान् के लिए वस्त्र तयार कर रहा था, तथा अन्य और दो तीन व्यक्ति उपस्थित थे। हम लोग तो कोठरी के भीतर श्री प्रभु चर्चा मे निमग्न थे, और बाहर "जय जय कार" की धूम मची थी। शनिवार चतुर्थी तिथि की रात को ग्यारह बजे लगभग यह परम दयामयी—महान् औदार्य पूर्ण घटना हुई। सहस्रो व्यक्ति उस समय वहाँ उपस्थित थे। उद्भट विद्वान् तथा योग्य साधन सम्पन्न सन्त गण भी विराज रहे थे। अखण्ड-पाठ श्री रामायण का हो रहा था। यज्ञ धूम्र से वायुमण्डल मे दिव्यता सुगन्ध तथा भव्य आकर्षण प्रतीत हो रहा था। श्री भगवन्नामो की

स्थल तथा जल कुण्ड की रखवारी कर रहे थे उनके अतिरिक्त सभी जनता उस वक्ष के आसपास एकत्र हो गई। भीतर कोठरी मे हम लोगो को कुछ ज्ञान नही। कि तु बाहिर बडा शोर तुमुल निनाद जय जय कार हो रहा था। सैकडो व्यक्ति जिनमे भि न भि न धर्मावलम्बी महानुभाव थे, खुली आँखो से—इन्ही चर्म चक्षुओ से उस भागवती ज्योति के दशन कर रहे थे। उनके हृदय से निर्गलित समाधि भाषा जिनका प्रत्यक्ष मे कोई अथ नही, था, सम्पूण दिग दिग त को पवित्र कर रही थी। श्री ज्योति विग्रह एकत्रित जन समुदाय से दस हाथ की दूरी पर था, और लगभग सवा सौ हाथ की सीधी पक्ति से श्री महाराज जी ने कई बार भ्रमण किये। श्री ज्योति विग्रह पृथ्वी से दो हाथ की ऊँचाई पर था। श्री विग्रह की ज्योति मात्र के ही सव साधारण को दशन हो रहे थे। एक म त दूर एकान्त मे आम के पेड के नीचे धूनी रमाए बठे थे। उ होने पहिले ही मन्दिर (जो नया बना है) मे महा प्रकाश का दशन किया। उ होने समझा कि रात मे गम बत्ती जलाकर काम हो रहा होगा। कि तु पुन जब उस प्रकाश को चलते फिरते देखा तो वे स्तम्भित हो गये। केवल मानसिक प्रमाण कर श्री बाबा की अपार दया तथा असीम ऐश्वयशक्ति का मूक भाव से दशन करने लगे। ये महात्मा किसी से कुछ कह न सके पर तु उन देवियो को निमित्त बनाकर श्री दयामय प्रभु ने सभी जीवो के लिए ये दिव्य अवसर सुलभ कर दिए।

क्षण भर ही मे अपार भीड वहाँ उमड पडी। स्त्री, पुरुष तथा बच्चे सब की दशा विलक्षण थी। कितनी ही माताएँ बेसुध होकर गिर पडी, अश्रुपात, प्रकम्प, प्रस्वेद, प्रलाप आदि लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे। बहुत से व्यक्ति रो रहे थे, जिन्होने दशन नही किया, वे इस दृश्य को देखकर पश्चात्ताप

कर रहे थे। अहा ! मै इन दिव्य दर्शनो से वञ्चित रहा। "जय हो बाबा की" "श्री हैडाखान वाले बाबा की जय"। "श्री बाबा भगवान की जय"। इसी प्रकार के शब्द वहाँ सहस्त्रो कण्ठ से श्रद्धा पूवक निकल रहे थे। उस समय केवल दशन प्राप्त जीवो के दशन मात्र से ही यह दृढ विश्वास हो जाता था कि इ हें अवश्य ही कोई चिरवाञ्छित महादुलभ तत्व की प्राप्ति हुई है। जैसे भक्ति शास्त्र मे उल्लेख है—श्री भगवान के दशन से जीव पर जो प्रभाव पडता है, अष्ट सात्विक विकार आते है, वे सब लक्षण उन भाग्यवान प्रेमियो मे प्रकट थे। अपात्र, असाधक तथा भक्ति रस से अनभिज्ञ व्यक्ति भी उस समय श्री चरणो के प्रभाव से रागानुराग परा भक्ति का रसास्वाद कर रहे थे। स्त्री पुरुप बालक वृद्ध सब के सब निता त बाह्य ज्ञान शू य हो अपलक नेत्र से अपने जीवन धन की दिव्य का ति का अवलोकन कर रहे थे।

प्राय ऐसे अवसरो पर भीड अनियन्त्रित हो जाती है। पर तु वहाँ तो साक्षात् देवाधिदेव महाप्रशा त एव दिव्यज्योति स्वरूप से सवसमक्ष प्रकट थ, अत इसे नैसर्गिक व्यवस्था समझो कि एक भी व्यक्ति उनके समीप जाने का साहस नही कर सकता था। सब कृपा पात्र जीव निर्निमेष दृष्टि से इस 'कृपा' के दर्शन कर रहे थे। इ ही साधक दशन मण्डल से श्री मिश्रीलाल आगे को बढा, कुछ ही दूर जाने पर श्री महाराज जी कुर्ता टोपी धारण किए आम के पेडो से छिपकर खडे थ। वहाँ एक जगह पर ही तीन पेड हैं। उन्ही की ओट मे प्रथम श्री भगवान के दिव्य विग्रह की झाकी हुई। श्री दशन से वह भक्त अपने को सभाल न सका और जोर जोर से—प्रमत्त होकर चिल्लाने लगा "ये बाबा श्री हैडाखान वाले हैं।' "बाबा ये जा रहे हैं।" "बाबा ये जा रहे हैं।" अन्य लोग तो पूववत् ही खडे

रहे, कि तु मिश्रीलाल ग्राम के पास पहुच गया तो श्री भगवान् ने धमशाला (जहाँ हम वठे थे) की ओर प्रस्थान किया, मिश्री लाल भी उनके साथ-साथ बहुत दूर तक आया। श्री भगवान् और मिश्रीलाल बहुत सटकर चल रहे थे, केवल स्पश ही नही हाता था, क्योकि प्रथम जब आम के पेड़ के नीचे दशन हुए तत्पश्चात श्री विग्रह की ज्योनि मात्र के ही दशन हुए। मिश्री लाल पथ्वी पर चल रहा था, और श्री भगवान् दो हाथ ऊचे—पथ्वी से बिलकुल अधर गमन कर रहे थे। चार पाँच हाथ लम्बे थे। दो हाथ की मोटाई भी उग्र ज्योति विग्रह की होगी। दिव्यो मादक भगवद्दशन से कौन धय रख सकता है। ये पुण्य दशन तो ज मा तरो के सुकृत का सर्वोत्तम फल है, अतएव मिश्रीलाल बेसुध तो प्रथम ही हो गया, अब कुछ काल श्री भगवान् के साथ चलने से और भी अधिक भाव विह्वल हो गया, उसके मुख से बार बार यही शब्द निकलते थे—'ये रहे बाबा''। हृदय मे यह भाव था कि आओ—सब आओ शीघ्र आओ श्री हैडाखान वाले बाबा ये हैं, परन्तु विह्वलता के कारण स्पष्ट एव पूण वाक्य नही कह सकता था।

पतित पावन दयामय ने अयोध्या वासियो का ये सुख दिये थे, उनके साथ गमन किया था। प्रमाणव करुणामय कृष्ण ने यह सुख प्रदान किया था—भोले श्री ब्रज वासियो को। अहा! वही सुख-सौभाग्य आज केवल दया—एक मात्र दया से ही, प्रभु इस जीवन को भी प्रदान कर रहे है। धन्य है प्रभो! आपकी दया।

श्री महाराज जी (ज्योति विग्रह से) धर्मशाला के निकट पहुँच गये, मिश्रीलाल को एसा प्रतीत हुआ कि श्री महाराज जी "बाबा" (मेरे) के पास जा रहे है। इसलिए मैं पहले ही जल्दी सूचना कर दू कि श्री हैडाखान वाले बाबा आ रहे है। बस यह

विचार आते ही श्री भगवान् के समीप से मेरे पास आगया, और कापते हुए—बडी अधोरता पूवक उसने कहा— 'बाबा श्री हैडाखान वाले बाबा आ गये हैं।' मैं भी सुनते ही उठ भागा, और शीघ्रता से पूछा कि कहाँ है ? यह बात हम लोगो के लिए असम्भव तो मालूम हो नही होती है, अत हम सबके सब बाहर आ गये, और वही उपरि वर्णित अपूव दृश्य देखा। पढा तो था, श्रीरामायण तथा भागवत आदि ग्र थो मे, कि अयोध्या वासियो को तथा व्रज के प्रमी भक्तो को कैसे वियोग सहन करना पडा था, पर तु आज इन भाग्यवान दयामय ईश के कृपापात्र जीवो के दशन कर मुझे भी उन महाभावो के साकार दशन हुए। उन उपस्थित दशक मण्डल मे विरह के जितने लक्षण होते ह, उन लक्षणो का पूण प्राकट्य था। एक ही वस्तु का प्रभाव पात्र भेद से भिन्न भि न होता है। अत सदा के लिए सब जीव उसी दशा मे मग्न हो, ऐसा तो नही, पर तु बहुत अधिक—बलवान् प्रभाव सब जीवो पर इस अश्रुत-पूव घटना से पडा। श्री महाराज जी के विषय मे यदि कुछ शका होती भी कभी तो आज इस दयामयी प्राकट्य वार्ता ने सब सशयो को सदा के लिए नष्ट कर दिये। वहाँ पर जितने व्यक्ति उपस्थित थे, सन्त, विद्वान्, दाशनिक, पौराणिक, गणितज्ञ तथा पौर्वात्य पाश्चात्य-इतिहास वेत्ता, सभी ने इस घटना को अद्वितीय कहा।

इस प्रकाश का वर्णन तो प्राय सभी धम ग्रन्थो मे है। भगवत्स्वरूपो का जहाँ भी वणन है, वह प्रकाशमय ही है। वैदिक महामन्त्र श्री गायत्री मे जो "भग" शब्द है, इसी अभि-प्राय का सूचक है। टेस्टामेण्ट मे जो—लाइट है वह (Light) प्रकाश भी कोई भगवत् तत्वो के भिन्न नही है। बौद्ध, जैन, इस्लाम तथा अन्यान्य सभी आध्यात्मिक क्षेत्रो में इस 'ज्योति'

का समादर तथा समुल्लेख है। परन्तु ऐसे सामूहिक रूप से, यज्ञ के समय पर, इतने दीघ काल तक, सवत्र विचरते हुए तथा अपने अलौकिक प्राकट्य से अपनी श्री विग्रह प्रतिष्ठा महिमा को सर्वं विदिन करना—ऐसे सुदिव्य अवसर प्राय इतिहास मे अद्वितीय ही है। एक पाश्चात्य दाशनिक की यह अभिलाषा थी —

"I want God on the earth not in the Heaven"

(मैं ब्रह्म के पृथ्वी पर दशन करना चाहता हूँ स्वग मे नही)

आज ये अभिलाषा सहस्रो की पूण हो रही थी। सभी साधनो का जो फल है। भक्तो ने जिन दशनों मे आत्म समर्पण कर दिया है।

ब्रह्म निष्ठ जिस रस माधुरी —

"रसो व स"

(रस उसी ब्रह्म का दिव्य स्वरूप है)।

मे मग्न हो गये, वही परात्पर परमेश्वर अखिल ब्रह्माण्ड व्यापक शिव—श्रुति पुराणो से महा प्रशसित कवल्य शिव सर्व साधारण को इस अनुपम अनुग्रह से कृताथ कर रहे थे।

हम लोग प्रचार को महत्व नही देते है। सत्य तो स्वत ही सबके कल्याण के हेतु प्रकट होना है, आज ही नही—सभी युगो मे जिसका साक्षी पुराण है—ये महती कृपा होनी श्री भगवान की अति कृपा का ही फल है। उपस्थित सभी प्रेमियो ने आँसू बहाते गद् गद् हो कहा कि ये कृपा, जिनका दशन हमने किया है, वास्तव मे अति अनुपम है। परन्तु बच्चे के हाथ मे चार पसा रख दो तो वह बहुत खुश हो जाएगा, और एक हजार का नोट रखदो तो वह उसका मूल्य न समझ कर फाड देगा, उसी प्रकार जिस व्यक्ति का हृदय जितना पवित्र एव प्रबुद्ध होगा, वह व्यक्ति उतना हो अधिक इस कृपा से प्राप्त करेगा।

केवल आध्यात्मिक क्षेत्रो ही मे नही, सवत्र पात्र की योग्यता की अपेक्षा देखी गई है।

'शिष्य प्रज्ञ व कारणम''

(योग वाशिष्ठ मे लिखा है कि ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति मे मुख्य हेतु शिष्य की प्रज्ञा ही है)।

हम लोग कितने ही स्वजनो को श्मशान मे जला देते हैं, पर तु कुछ देर के पश्चात वही प्रवत्ति ? कि तु श्री बुद्ध भगवान दूर से ही एक मतक को देख कर ससार को असत्य मान कर विश्व कल्याण हेतु राजकुमार सिद्धाथ से भगवान् बुद्ध हो गये। तथापि अग्नि का अज्ञात स्पश भी जला ही देना है, उसी प्रकार जिन भाग्यशाली प्राणियो ने ये ''कपा'' प्राप्त की—श्री भगवान के दर्शन किए—उनका सस्कार निर्माण अति तीव्र गति से हो रहा है। बहुतो को जो असाध्य रोगी थे, उसी क्षण से आरोग्य लाभ होता अनुभव हुआ है। ऐसी बहुत सी घटनाएँ है, कहाँ तक लिखी जाएँ। 'कपा' की स्मति से लिखा भी नही जाता है।

अहा! हमारे पूवज महर्षियो ने श्री भगवान से प्राथना की थी कि हे प्रभु! मुझे अ धकार अज्ञान—से प्रकाश स्वरूप की ओर ले चलो, पर तु हम असमथ दुबल प्राणियो को ये ऋषि प्रार्थित दुलभ तत्व की प्राप्ति इस प्रकार आन द पूवक होना—केवल कृपा ही तो है। ''बन्धुओ! आओ आज हम पुन कहे—प्राथना करें।'

ॐ 'तमसो मा ज्योतिगमय' ॐ

क्षमा याचना

श्री भगवान् बाबा हैडाखान वाले की लीला विस्तार दिन प्रतिदिन हो रहा है। जन मानस मे यह प्रश्न स्वाभाविक हो उठता है कि ये अवतार—भगवान् का स्वरूप क्या है? यद्यपि मै स्वय ही पूण रूप से उनको समझने में असमथ हूँ, तथापि अहैतुकी करुणा द्वारा जब जसी श्री प्रभु ने कृपा की है, उस आधार पर मेरे ही नही अपितु असख्य प्राणियो के हृदय ये अनुभव करने लगे है कि श्री महाराज जी पूर्णावतार है।

अभी थोडे ही दिन हुए है, एक सज्जन ने अकेले ही बिना किसी सूचना के तीस हजार रुपये दिए ह, जिमसे श्री वृन्दावन मे श्री प्रभु जी का मदिर बना है।

साधारण जीवो पर भी इतनी अलौकिक तथा भगवदश्वर्य सूचक कृपा पूण घटना हुई हैं, जिसके वणन मे एक स्वत त्र ग्रन्थ ही बन जाएगा।

इस शरीर पर तो उनकी सदव ही कृपा रही है। सम्वत् २००६ मे तो उ होने अपना सत्य स्वरूप प्रकट करके इस तुच्छ बालक को सनाथ किया है। पर तु उसे पूव भी, जब मुझे उनकी कपा का बोध नही था, स० १९९३ मे मैं गुजरात मे रूपाल नामक ग्राम मे चातुर्मास कर रहा था। तब मै अचानक अन्धा हो गया और बुखार भी बहुत जोर का था। दो तीन दिनो के बाद श्री महाराज जी मेरे सिरहाने खडे होकर मेरे सिर पर हाथ फेर रहे थे, और उसी समय से मुझे दीखने लगा—तथा बुखार भी शान्त हो गया। मैं तो नही समझा परन्तु एक भक्त ने स्वप्न मे ऐसा दृश्य देखा था। अस्तु! भगवान् शङ्कर ने आज्ञा की है—

"गोपनीय गोपनीय गोपनीय प्रयत्नत"

(गुप्त रक्खो, गुप्त रक्खा और प्रयत्न पूवक गुप्त रक्खो)।

अतएव मैने जो ये घष्टता की है। एक मात्र जन-कल्याण एव प्रभु प्रमियो की शङ्का निवत्ति के लिए ही। सत्य समझो, इस प्रयास का और कोई ध्येय ही नही है। अतएव मैं श्री भगवान, सत तथा प्रेमी मण्डलो से पुन क्षमा याचना करता हूँ।

श्री भगवान की अनुपम कृपा उनके अनुपम अवतार की ही मूचक है। मैं असमथ—पाँवर जीव उनकी अनुपम कृपा का क्या वणन कर मकता हूँ।

"केहि विधि कृपा करी अनाथ पर, कहो कौन विधि गावो।
कोटिहु मुख यदि देहु कृपा करि, तबहु पार न पावौं॥"

(हे कृपानिधान प्रभो! मुझ अनाथ पर आपने किस प्रकार कृपा की उसका मैं कहाँ तक वणन करू। हे अशरण शरण देव! उसका वणन करने के लिये यदि आप मुझ करोडो मुख प्रदान करने की कृपा करें तब भी पार पाना असम्भव है)।

॥ ॐ शान्ति ॐ शान्ति ॐ शान्ति ॥

स्तोत्र-भजन-कीतन

"नम शिवाय"

नागेन्द्रहराय त्रिलोचनाय भस्माङगरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै 'न' काराय नम शिवाय ॥
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वर प्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्प बहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै 'म' काराय नम शिवाय ॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द सूर्याय दक्षाश्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वषध्वजाय तस्मै 'शि'काराय नम शिवाय ॥
वसिष्ठकुम्भोद्भव गौतमायमुनीन्द्र देवार्चित शेखराय ।
चन्द्राकवैश्वानरलोचनाय तस्म 'व' काराय नम शिवाय ॥
यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय मनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्म 'य' काराय नम शिवाय ॥
पचाक्षरमिद पञ्चाक्षरमिद पुण्य य पठेच्छिवसनिधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥

श्रीमत् श्रीशकराचाय

रुद्राष्टक—शिव स्तुति

नमामीशमीशान निर्वाणरूप । विभु व्यापक ब्रह्मवदस्वरूप ॥
निज निगु ण निर्विकल्प निरीह । चिदाकाशमाकाशवास भजे ह ॥१॥
निराकारमोंकारमूल तुरीयं । गिरा ग्यान गोतीतमीश गिरीश ॥
कराल महाकाल काल कृपाल । गुणागार ससारपार नतोऽह ॥२॥
तुषाराद्रि सकाश गौर गभीरं । मनोभू त कोटि प्रभाश्री शरीर ॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारुगगा । लसद्भालबालेन्दु कठे भु जगा ॥३॥
चलत्कुंडल भ्रू सुनेत्र विशाल । प्रसन्नानन नीलकठ दयालं ॥
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं । प्रिय शंकर सर्वनाथ भजामि ॥४॥

प्रचड प्रकृष्ट प्रगल्भ परेश । अखड अज भानु कोटि प्रकाश ॥
त्रय शल निमूलन शूलपाणि । भजेऽह भवानीपति भावगम्य ॥५॥
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी । सदा सज्जनान ददाता पुरारी ॥
चिदानद सदोह मोहापहारी । प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥६।
न यावद् उमानाथ पादारविन्द । भजतीह लोके परे वा नराणा ॥
न तावत्सुख शान्ति सन्तापनाश । प्रसीद प्रभो सवभूताधिवास ॥७॥
न जानामि योग जप नैव पूजा । नतोऽह सदा सवदा शभु तुभ्य ॥
जरा जन्म दुखौघ तातप्यमान । प्रभो पाहि आपन्नमामीश शभो ॥८॥

रुद्राष्टकमिद प्रोक्त विप्रेण हरतोषये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषा शम्भु प्रसीदति ॥९॥

—गोस्वामी तुलसीदास

श्री शिवषडक्षर स्तोत्रम्

ॐ कार बिन्दुसयुक्त नित्य ध्यायन्ति योगिन ।
कामद मोक्षद चैव ॐ काराय नमो नम ॥१॥
नमन्ति ऋषयो देवा नमन्त्यप्सरसा गणा ।
नरा नमन्ति देवेश नकाराय नमो नम ॥२॥
महादेव महात्मान महाध्यानपरायणम् ।
महापापहर देव मकाराय नमो नम ॥३॥
शिव शांत जगन्नाथ लोकानुग्रहकारकम ।
शिवमेकपद नित्य शिकाराय नमो नम ॥४॥
वाहन वृषभो यस्य वासुकि कठभूषणम् ।
वामे शक्तिधर देव वाकाराय नमो नम ॥५॥
यत्र यत्र स्थितो देव सवव्यापी महेश्वर ।
यो गुरु सव देवाना यकाराय नमो नम ॥६॥
षडक्षरमिद स्तोत्र य पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥७॥

इति श्रीरुद्रयामले उमामहेश्वर सवादे शिवषडक्षर स्तोत्र सपूणम् ।

श्री शिवाष्टक

हे चन्द्रचूड मदनान्तक शूलपाणे
स्थाणो गिरिश गिरिजेश महेश शम्भो
भूतेश भीत भय सूदन मामनाथ
ससार दुःख गहना जगदीश रक्ष ।१।

हे पार्वती हृदयवल्लभ चन्द्रमौल
भूताधिप प्रमथनाथ गिरिशचाप
हे वामदेव भवरुद्र पिनाकपाणे
ससार दुःख गहना जगदीश रक्ष ।२।

हे नीलकंठ वृषभध्वज पंचवक्त्र
लोकेष शेषवलय प्रमथेश शव
हे धूजटे पशुपते गिरिजापते मा
ससार दुःख गहना जगदीश रक्ष ।३।

हे विश्वनाथ शिवशंकर देवदेव
गंगाधर प्रमथनायक नन्दिकेश
बाणेश्वरान्धकरिपो हर लोकनाथ
ससार दुःख गहना जगदीश रक्ष ।४।

वाराणसीपुरपते मणिकर्णिकेश
वीरेश दक्ष मखकाल विभो गणेश
सर्वज्ञ सर्व हृदयैकनिवासनाथ
संसार दुःख गहना जगदीश रक्ष ।५।

श्री मन्महेश्वर कृपामय हे दयालो
हे व्योमकेश शितिकंठ गणाधिनाथ

भस्मांगराग नृकपाल कलापमाल
संसार दुःख गहनात् जगदीश रक्ष ।

कल्मषहर विनिवारण वधाकर हे
स प्रजय अनन्त भक्तजननिवास
नारायणप्रिय मदापह भक्तिनाथ
संसार दुःख गहनात् जगदीश रक्ष ।७।

विश्वेश विश्व भवनाशक विश्वरूप
विश्वात्मक त्रिभुवनैक गुणाभिवेश
हे विश्वबन्धु करुणामय दीनबन्धो
संसार दुःख गहनात् जगदीश रक्ष ।८

गौरीविलासभवनाय महेश्वराय
पञ्चाननाय शरणागतरक्षकाय
शर्वाय सर्व जगतामधिपाय तस्मै
दारिद्र्य दुःख दहनाय नमः शिवाय ।८।

ॐ

शिव केवलोऽहम्

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायु—
न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः ।
अनेकान्तिकत्वात्सुषुप्त्यैक सिद्ध—
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥१॥

न वर्णा न वर्णाश्रमाचार धर्मा
न मे धारणा ध्यान-योगादयोऽपि ।
अनात्माश्रयोऽहं ममाध्यासहानात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥२॥

न माता पिता वा न देवा न लोका
न वेदा यज्ञा न तीर्थं श्रुवन्ति ।
सुषुप्तो निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥३॥

न सांख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं
न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा ।
विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥४॥

न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर्न बाह्यं
न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वापरा दिक् ।
वियद्व्यापकत्वादखण्डैकरूप—
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥४॥

न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं
न कुब्जं न पीनं न ह्रस्वं न दीर्घम् ।

अरुप तथा ज्योतिराकारक त्वात
तदेकोऽवशिष्ट शिव केवलोऽहम् ॥५॥

न शास्ता न शास्त्र न शिष्यो न शिक्षा
न च त्व न चाह न वाच प्रपञ्च ।
स्वरूपाववोधो विकल्पासहिष्णु—
स्तद्रे कोऽवशिष्ट शिव केवलोऽहम् ॥७॥

न जाग्रन्न मे स्वप्न को वा सुषुप्ति—
न विश्वो न वा तैजस प्राज्ञको वा ।
अविद्यात्मकत्वात् त्रयाणा तुरीय—
स्तदेकोऽवशिष्ट शिव केवलोऽहम् ॥८॥

अपि व्यापकत्वाद् वियत्वप्रसोगात्
स्वत सिद्धभावादनन्याश्रयत्वात् ।
जगत्तच्छवमेतत्समस्त तदन्यत्
स्तदेकोऽवशिष्ट शिव केवलोऽहम् ॥९॥

न चैक तदन्यद् द्वितीय कुत स्यात्
न वा केवलत्व न चाकेवलत्वम् ।
न शून्य न चाशून्यमद्वैतत्वात्
कथ सर्व वेदान्तसिद्ध ब्रवीमि ॥१०॥

भजन

ओ द्वैडाखानवाल्ले हमको न भूल जा
जीवन बिना मैं रंगी तुम चाहे बनके आना ।।

पापी हूँ अति अधम हूँ, कामी हूँ पातकी हूँ ।
पर दास आपका हूँ, बस यह न भूल जाना ।।

मग है अतीव दुष्कर, पग पग पे व्याधियां हैं ।
अति दीन जान मुझको, शुभ मार्ग पे लगाना ।।

इस डूबती नैया के तुम ही तो हो सहारे ।
बिसरा दिया जो मुझको, मेरा कहाँ ठिकाना ।।

जिस दिन से लौ लगी है चरणों में हे दयामय ।
सुधि बुधि बिसार बैठा तेरा बना दिवाना ।।

लाखोंको तुमने तारा निज चरण शरण देके ।
उस पाद पद्म रजसे पावन हमें बनाना ।।

महिमा महान तेरी वर्णन करूं कहाँ तक ।
त्रैलोक्य तापहारी जाने सभी जमाना ।।

आंखें बिछी हुई हैं दर्शन की लालसा में ।
करके दया कभी तो अपना दरस दिखाना ।।

भगवन मेरे जीवन की बस ये ही कामना है ।
"श्री द्वारिकेश" मेरे तन-मन में समा जाना ।।

जय सदगुरु देव हरे।

जय [illegible] देव हरे।
ईश ज्ञान सुधाकर हम सब चरण पड़े। जय०।

अलख नि[illegible] [illegible]भो [illegible] वासी।
सब देव [illegible] प्रभु अविनाशी॥ जय०।

अज अमर अखिलेश्वर चेतन रूप प्रभो।
परम [illegible] शाश्वत सत्य विभो॥ जय०॥

नामी नित्य अनामी दीनन हितकारी।
सन्त सुरार्चित सविन जन मन सुखकारी॥ जय०॥

जननायक जगनायक अधिनायक सबके।
ऋद्धि सिद्धि दायक अवतार सदा शिव के॥ जय०।

कल्पतरु तुम जग के शुभ मति के दाता।
भाग्य विधाता सबके तुम्ही पिता माता॥ जय०॥

श्री [illegible] विहारी, विषधर विषनाशी।
अगम अगम्य परात्पर, मनहर मृदुभाषी॥ जय०॥

कुर्ता, टोपी शोभित अति मंजुल वेशा।
करुणा भाव सदा दीनन पर सविशेषा॥ जय०॥

श्री सद्गुरु की आरति नित सप्रेम करिये।
'द्वारिकेश' भवसागर बिन प्रयास तरिये॥ जय०॥

शिव भोला भंडारी

शिव भोला भडारी (२)
शिव भोला भडारी (५)
भस्मासुर ने करी तपश्चर्या
वरदिह्ना त्रिपुरारी,
जीसके शिर पर हाथ लगाये,
भस्म होत तन सारी—शिव भोले०
शिव भोले शिव भोले० भोले भडारी,
शिव के शिर पर हाथ धरनकी,
मनसे दुष्ट विचारी,
भागे फिरत चहु दिशी शकर,
लगा दैत्य डर भारी—शिव भोले०
शिव भोले शिव भोले शिव भोले भडारी०
गिरिजा रूप धरे हरि भोले
बात असुरसे प्यारी,
जो तु मुझको नाच दिखाये,
होउ नार तुम्हारी शिव भोले भडारी०
शिव भोले शिव भोले शिव भोले भडारी०
नाच करत भाने शिर धरकर,
भस्म भयो मति मारी,
ब्रह्मानद देत जोई मागे,
शिव भक्तन हितकारी, शिव भोले०
शिव भोले शिव भोले शिव भोले०

दर्शन दो भोलेनाथ

दशन दो भोलेनाथ,
मोरी अखिया प्यासी रे
दशन दो भोलेनाथ
मन मदिर की ज्योत जगादो,
घट घट वासी रे
दश न दो भोले नाथ
मदिर मदिर मरत तेरी,
फिर भी न दीखे सूरत तेरी,
युग बीते न आयी मिलन की,
पूरन मासी रे
दर्शन दो भोलेनाथ०
द्वार दयाका जब तू खोले,
पचम रागमे गूगा बोले,
अधा देखे लगडा चलकर पहुंचे काशी रे
दर्शन दो भोलेनाथ
पानी पीकर प्यास बुझाऊँ,
नैनन को कैसे समझाऊँ
आँख मिचौली छोड़ो अब तो मन के वासी रे,
दर्शन दो भोलेनाथ
दर्शन दो भोलेनाथ मोरी अखियाँ प्यासी रे
दर्शन दो भोले नाथ

नमस्ते नमस्ते

नमो विश्वकर्ता, नमो विश्वभर्ता
नमो विश्वमाता—पिता—विश्वदाता।
नमो विश्वरूप नमो विश्वभूप
अचिन्त्य स्वरूपा नमस्ते नमस्ते ॥१॥

नमो नन्द मूर्ति नमो नन्द कान्ति
नमो नन्दभक्ते नमो नन्द युक्ते।
नमो नन्दमायी नमो नमो नन्द शायी
सदा सौख्यदायी नमस्ते नमस्ते ॥२॥

नमः सत्यमूर्ते नमः शान्तिमूर्ते।
नमः ज्ञानमूर्ते, नमो वेदमूर्ते ॥
नमो भक्तिमूर्ते नमो मुक्तिमूर्ते।
चिदानन्दमूर्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ॥

नमो विश्वबन्धो नमो भक्तबन्धो।
नमो दीनबन्धो प्रपन्नार्तबन्धो ॥
नमो धर्मबन्धो, सुधर्मिष्ठबन्धो।
सदा सत्यबन्धो नमस्ते नमस्ते ॥४॥

नमः निर्विकारी असंख्यावतारी।
नमः सर्वव्यापी नमस्ते नमस्ते ॥
नमो निर्गुणात्मा, गुणशापनाशी।
परब्रह्म पूर्णावतारी नमस्ते नमस्ते ॥५॥

शकर जी की डमरू बोले

शकरजी का डमरू बोले (३)
ॐ नम शिवाय (५)
नारद जी की वीणा बोले, (२)
नारायण, जय नारायण (२) शकर जी०
हनुमान की वाणी बोले,
सीताराम, जय सीताराम, (२) शकर जी०
मीराबाई की एकतारी बोले, (२)
राधश्याम, जय राधश्याम, (२) शकर जी०
तुका राम की वाणी वोले (२)
विट्ठल विट्ठल जय रुकमाई (२) शकर जी०
'राणा जी की गीता' बोले
प्रभु प्रेभु मेरे हैडाखान,
गुरु नानक की वाणी बोले,
सत्य नाम जय, सत्यनाम,—शकर जी०
महेन्द्र बाबा की वाणी बोले,
हैडाखान, जय हैडाखान,
भक्तो का हो कल्यान,
शकर जी का डमरू बोले
ॐ नम शिवाय ।

गुरु बिन कौन बतावे वाट

(राग हमीर)

कौन बतावे वाट,
गुरु बिन कौन बतावे वाट ?
बडा बिकट यमधार—गुरु बिन०

भ्रांति की पहाडी नदिया बिचमो
अहंकार की लाट ॥१॥ गुरु बिन०
काम क्रोध दो पर्वत ठाडे,
लोभ चार सधान ॥२॥ गुरु बिन०
मद मत्सर का मेह बरसत,
मायापवन बहे बहे दाट ॥३॥ गुरु बिन०
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
क्यों तरना यह धाट ॥४॥ गुरु बिन०

हे जग-त्राता

(भैरवी)

हे जग-त्राता, विश्व विधाता,
हे सुख शान्तिनिकेतन हे।
प्रेम के सिन्धो, दीन के बन्धो।
दुःख दरिद्र विनाशन हे—हे जग
नित्य अखंड अनन्त अनादि,
पूरण ब्रह्म, सनातन हे।
जग आश्रय, जगपति जगवंदन,
अनुपम, अलख, निरंजन हे।
प्राणसखा, त्रिभुवन प्रतिपालक,
जीवन के अवलंबन है॥

मन मस्त हुआ तब क्यो बोलै।
हीरा पायो गाठ गटायो,
बार बार वाकी क्यो खोलै। मन
सुरत कलारी भई मतवाली
मदवा पी गई बिन तोलै। मन

हसा पायो मान सरोवर,
ताल तलैया क्यो डोलै। मन
हलकी थी तन चढी तराजू
पूरी भई तब क्यो तोलै। मन
तेरा साहब है घट माही,
गाहर नैना क्यो खोलै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो।
साहब मिल गये तिल ओले। मन

कीतन के लिये धुन

(१)

ॐ नम शिवाय, ॐ नम शिवाय ॐ नम शिवाय।
ॐ नम शिवाय, ॐ नम शिवाय। ॐ नम शिवाय ॥

(२)

हे शिवशकर, हे महेश्वर
सुखकर दुखहर, हर हर शकर
ॐ नम शिवाय, ॐ नम शिवाय ॥

(३)

अम्बा सहित शभु सदाशिव हर हर हर हर महादेवा
हर हर हर हर महादेवा शभु हर हर हर हर महादेवा

(४)

जय गौरी शकर, जय विश्वनाथ
जय पावतीपति जय भोलेनाथ ॥

(५)

ॐ नम ॐ शिव शिव हर हर शकर
परमेश्वर शिव दया करो (२)
ॐ नम शिवाय ॐ नम शिवाय

ॐ नम शिवाय ॐ नम शिवाय
जय शभु जय शभु जय शभु कैलाशपति,
जय अबे, जय अबे, जय अबे, मा पारवति
शिव महेश्वर, शिव महेश्वरा, शिव महेश्वरा, गुरुदेव
शिव महेश्वरा, शिव शकरा, शिव महादेवा, गुरुदेव
कैलासवासा महादेवा, हैडाखानवासा, सदाशिवा
त्रिभुवनपति, साम्ब सदाशिवा ।
शिव ॐ, शिव ॐ, शिव ॐ, शिव ॐ
ॐ नम शिवाय ॐ नम शिवाय ..

सदा निरतर शिव गुण गाओ
हैडाखान के शरण मे आओ
मन मंदिर मे दीप जलाओ सदा
जिवन विपन नैया पार लगाओ सदा
ॐ नम शिवाय, ॐ नम शिवाय,
ॐ नम शिवाय, ॐ नम शिवाय ।
सदा निरतर शिव गुण गाओ
प्रेम भक्ति से भजन सुनाओ ॥ सदा
ॐ नम शिवाय ॐ नम शिवाय ।
ॐ नम शिवाय ॐ नम शिवाय ।
नमामि शकर भवानीशकर
उमा महेश्वर तव शरणम
नमो नमो शिव गुरु महादेवा
ॐकारेश्वर तव शरणम् नमामि शकर
ॐ शिव ॐ शिव परात्पर शिव
ॐकारेश्वर तव शरणम् नमामि शकर